श्रीशंकरभगवत्पादप्रणिता

ब्रह्मज्ञानावलीमाला

(ग्रन्थकार श्री भगवत्पाद आदिशंकराचार्य)

हिन्दी – व्याख्याता

श्रीमज्जगद्गुरु - शंकराचार्य - स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वती

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
प्रकाशनप्रशस्ति

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

"**स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान**" - श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीका

५६वाँ पुष्प

ब्रह्मज्ञानावलीमाला

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण वि. स. २०६६ सन् २००९

१००० प्रतियाँ

सहयोगराशि

१००.०० (सौ रुपये)

卐

स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य -श्रीगोवर्द्धनमठ

पुरी-७५२००१ (उड़ीसा),भारत

दूरभाष (०६७५२) २३१०९४, २३१७१६

ब्रह्मज्ञानावलीमाला

प्रकाशकीय

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

ब्रह्मज्ञानावलीमाला

प्रकाशकीय

ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय **श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीके** १४५ वें श्रीमज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्यजीकी भावना **भगवत्पाद श्रीशिवावतार आदि शङ्कराचार्य** - महाभागके विविध ग्रन्थोंकी व्याख्या करनेकी है। इसी सन्दर्भमें उन्होंने सर्वप्रथम '**ब्रह्मज्ञानावलीमाला**' की व्याख्या की है। इस ग्रन्थमें कुल २१ श्लोक हैं। "**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः। अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदान्तडिण्डिमः।।**" इसका विश्वविश्रुत बीसवाँ श्लोक है। इस कारिकाके '**जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः**' - इतने अंशपर बहुधा घोर आपत्ति व्यक्त की जाती है। इसका कारण अष्टोत्तरशत उपनिषत् , महाभारत, विष्णुपुराण, स्कन्दपुराण, श्रीमद्भागवत तथा शुक्रनीति आदिके अध्ययन और अनुशीलनकी स्वस्थपरम्पराका विलोप है।

पूज्यपादने व्याख्याके सन्दर्भमें समारोहपूर्वक इस तथ्यका प्रकाश किया है कि प्राप्तसन्दर्भमें **भगवत्पाद श्रीशिवावतार आदि शङ्कराचार्यमहाभागके द्वारा** प्रयुक्त प्रत्येक तथ्य साक्षात् श्रुतिप्रयुक्त ही है।

प्रस्तुत विवरण मनोरम है, कारिकागत अन्तर्निहित भावोंका अभिव्यञ्जक है तथा विविध रस - रहस्योंका आकर है।

निवेदक - **स्वामी निर्विकल्पानन्दसरस्वती**

८.२.२०६६ (१७.५.२००९), पटना

श्रीशङ्करभगवत्पादप्रणीता

ब्रह्मज्ञानावलीमाला

सकृच्छ्रवणमात्रेण ब्रह्मज्ञानं यतो भवेत्।
ब्रह्मज्ञानावलीमाला सर्वेषां मोक्षसिद्धये ॥१॥

असऽङ्गोऽहमसङ्गोऽहमसङ्गोऽहं पुनः पुनः।
सच्चिदानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥२॥

नित्यशुद्धविमुक्तोऽहं निराकारोऽहमव्ययः।
भूमानन्दस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥३॥

नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकारोऽहमच्युतः।
परमानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥४॥

शुद्धचैतन्यरूपोऽहमात्मारामोऽहमेव च।
अखण्डानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥५॥

प्रत्यक्चैतन्यरूपोऽहं शान्तोऽहं प्रकृतेः परः।
शाश्वतानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥६॥

तत्त्वातीतः परात्माऽहं मध्यातीतः परः शिवः।
मायातीतः परञ्ज्योतिरहमेवाहमव्ययः ॥७॥

नानारूपव्यतीतोऽहं चिदाकारोऽहमच्युतः।
सुखरूपस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥८॥

मायातत्कार्यदेहादि मम नास्त्येव सर्वदा।
स्वप्रकाशैकरूपोऽमहमेवाहमव्ययः ॥९॥

गुणत्रयव्यतीतोऽहं ब्रह्मादीनां च साक्ष्यहम्।
अनन्तानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥१०॥

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
११ - २१ .मूलमात्रम्

अन्तर्यामिस्वरूपोऽहं कूटस्थः सर्वगोऽस्म्यहम्।
परमात्मस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥११॥
निष्कलोऽहं निष्क्रियोऽहं सर्वात्माऽऽद्यः सनातनः।
अपरोक्षस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥१२॥
द्वन्द्वादिसाक्षिरूपोऽहमचलोऽहं सनातनः।
सर्वसाक्षिस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥१३॥
प्रज्ञानघन एवाहं विज्ञानघन एव च।
अकर्त्ताऽहमभोक्ताऽहमहमेवाहमव्ययः ॥१४॥
निराधारस्वरूपोऽहं सर्वाधारोऽहमेव च।
आप्तकामस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥१५॥
तापत्रयविनिर्मुक्तो देहत्रयविलक्षणः।
अवस्थात्रयसाक्ष्यस्मि चाहमेवाहमव्ययः ॥१६॥
दृग्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्परविलक्षणौ।
दृग्ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदान्तडिण्डिमः॥१७॥
अहं साक्षीति यो विद्याद्विविच्यैवं पुनः पुनः।
स एव मुक्तः सन् विद्वानिति वेदान्तडिण्डिमः॥१८॥
घटकुड्यादिकं सर्वं मृत्तिकामात्रमेव च।
तद्वद् ब्रह्म जगत्सर्वमिति वेदान्तडिण्डिमः ॥१९॥
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदान्तडिण्डिमः॥२०॥
अन्तर्ज्योतिर्बहिर्ज्योतिः
प्रत्यग्ज्योतिः परात्परः।
ज्योतिर्ज्योतिः स्वयञ्ज्योति-
रात्मज्योतिः शिवोऽस्म्यहम् ॥ २१॥

ब्रह्मज्ञानावलीमाला सम्पूर्णा

●

श्रीहरिः

श्रीगणेशाय नमः

✡

ब्रह्मज्ञानावलीमाला

विषयानुक्रमणी

क्रम	विषय	पृष्ठ
•	प्रकाशनप्रशस्ति	२
•	प्रकाशकीय	३
•	मूलमात्रम्	४
•	विषयानुक्रमणी	६

क्रम	कारिका	विषय	पृष्ठ
१.	सकृच्छ्रवणमात्रेण	मुमुक्षुओंको मोक्ष सुलभ करानेकी भावनासे ग्रन्थसंरचनाकी प्रतिज्ञा	११
२.	असऽङ्गोऽहम्	असङ्ग, अव्यय, सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माका स्वानुभवानुरूप प्रतिपादन	२६
३.	नित्यशुद्धविमुक्तोऽहम्	आत्माकी नित्य शुद्ध - बुद्ध - मुक्तस्वरूपता और निराकार-अव्यय - भूमानन्दरूपताका निरूपण	२८
४.	नित्योऽहम्	नित्य, निरवद्य, निराकार, अच्युत और परमानन्द - स्वरूप अव्यय आत्माका निरूपण	३३

ब्रह्मज्ञानावलीमाला

विषयानुक्रमणी

५.शुद्धचैतन्यरूपोऽहम्	आत्माकी शुद्ध चैतन्यानन्दरूपता और अनात्मरमणनिरपेक्षताका प्रतिपादन	३५
६.प्रत्यक्चैतन्यरूपोऽहम्	आत्माकी प्रत्यक् - चैतन्यरूपता, शान्तस्वरूपता, प्रकृतिपरता और शाश्वत आनन्दरूपताका प्रतिपादन	३८
७.तत्त्वातीत:	आत्माकी तत्त्वातीतता, मध्यातीतता, मायातीतता, परात्मरूपता, परम शिवरूपता और परम ज्योति: स्वरूपताका प्रतिपादन	४२
८.नानारूपव्यतीतोऽहम्	आत्मदेवकी विविधरूपोंसे परता, चिदाकारता, अच्युतरूपता और सुखस्वरूपताका निरूपण	४७
९.मायातत्कार्यदेहादि	आत्माकी माया और उसके कार्य देहादिसे सर्वदा रहितता तथा स्वप्रकाश अव्ययरूपताका निरूपण	४८
१०.गुणत्रयव्यतीतोऽहम्	आत्माकी गुणत्रयसे अतीतता, सर्वसाक्षिस्वरूपता और अनन्तानन्दरूपताका प्रतिपादन	४९
११.अन्तर्यामिस्वरूपोऽहम्	आत्माकी अन्तर्यामिस्वरूपता, कूटस्थरूपता, सर्वव्यापकता और परमात्मस्वरूपताका प्रतिपादन	५२
१२. निष्कलोऽहम्	आत्मदेवकी निष्कलता, निष्क्रियता, सर्वात्मरूपता, आद्यरूपता, सनातनता और अपरोक्षस्वरूपताका प्रतीादन	५४

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
विषयानुक्रमणी

१३.द्वन्द्वादिसाक्षिरूपोऽहम्	आत्माकी द्वन्द्वादिसाक्षिरूपता, अचल, सनातन सर्वसाक्षि - स्वरूपताका प्रतिपादन	५६
१४.प्रज्ञानघन एवाहम्	प्रज्ञानघन, विज्ञानघन, अकर्त्ता, अभोक्ता और अव्यय आत्माका प्रतिपादन	५७
१५.निराधारस्वरूपोऽहम्	आत्माकी निराधारस्वरूपता, सर्वाधाररूपता, आप्तकामस्वरूपता और अव्ययरूपताका प्रतिपादन	५९
१६. तापत्रयविनिर्मुक्त:	तापत्रय - विनिर्मुक्त, देहत्रय - विलक्षण, अवस्थात्रय - साक्षी अव्ययात्माका प्रतिपादन	६१
१७.दृग्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ	द्रष्टाकी ब्रह्मरूपता और दृश्यकी मायिकताका निरूपण	११७
१८.अहं साक्षीति यो विद्याद्	आत्माकी साक्षिरूपताका सारार्थरूपसे विवेचन	१२३
१९.घटकुड्यादिकं सर्वम्	घट - कुड्यादिकी मृत्तिकारूपताके सदृश सर्व जगत्की ब्रह्मरूताका प्रतिपादपन	१४१
२०.ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या	मायायोगसे अधिष्ठानकी अध्यस्तरूपसे अभिव्यक्ति तथा स्फूर्तिके कारण नाम - रूपात्मक जगत्के मिथ्यात्वका तथा मायाकृत औपाधिक भेदके कारण जीवकी ब्रह्मरूपताका प्रतिपादन	१४५

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
विषयानुक्रमणी

२१.अन्तर्ज्योतिर्बहिर्ज्योतिः आत्माकी स्वप्रकाश शिवरूपताका तथा आत्मज्योतिसे उद्भासित अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूतात्मक जगत् की ज्योतिर्मयताका प्रतिपादन १८९

प्रार्थना १९३

प्रकाशन १९४-१९६

•

२०.परिभाषाप्रकाश १६७ -१८६

•

१.ब्रह्म	(श्लोक १, २०)	१६८
२.मोक्ष	(श्लोक १, २)	१६९
३.सच्चिदानन्दरूपः	(श्लोक २)	१७१
४.प्रकृतिः	(श्लोक ६)	१७१
५.माया	(श्लोक ७,९,१७)	१७१
६.आत्मा	(श्लोक ७,१२)	१७३
७.अन्तर्यामी	(श्लोक ११)	१७३
८.अनन्तः	(श्लोक १०)	१७४
९.परमात्मा	(श्लोक ११)	१७४
१०.साक्षी	(श्लोक १३,१८)	१७४
११.जगत्	(श्लोक १९,२०)	१७४
१२.जीवः	(श्लोक २०)	१७५
प्रबोधप्रकाश		१८८

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
श्लोक : १

श्रीशङ्करभगवत्पादप्रणीता

ब्रह्मज्ञानावलीमाला

"स्वाज्ञानासुरराड्ग्रासस्वज्ञाननरकेसरी ।
प्रतियोगिविनिर्मुक्तं ब्रह्ममात्रं करोतु माम्।।"
(अव्यक्तोपनिषत्)

श्रीशिवावतार - भगवत्पाद शङ्कराचार्य - महाभागविरचित '**ब्रह्मज्ञानावलीमाला**' में कुल इक्कीस श्लोक हैं। इनमें सरल और सरस श्रुतिसम्मत शब्दोंमें वेदान्तसार सन्निहित है । यद्यपि इनकी सरलता और सुस्पष्टताको देखते हुए इन श्लोकोंकी व्याख्या अपेक्षित नहीं है, तथापि अन्तर्निहित भावोंकी गम्भीरता और सर्वसुलभ असहिष्णुताकी दृष्टिसे श्लोकोंकी व्याख्या नितान्त अपेक्षित ही है। मैं स्वान्तः सुखाय सर्वभूतहिताय अगाथ आस्थापूर्वक इन श्लोकोंका सरलार्थ तथा सुगम निहितार्थ श्रीहरिगुरुकरुणाके अमोघप्रभावसे व्यक्त कर रहा हूँ।

ब्रह्माभ्यासरूप निदिध्यासनकी प्रधानतासे ग्रन्थसंरचनाके कारण ग्रन्थमें प्रयुक्त शब्दगत और भावगत पुनरुक्ति शोभा है। यह तात्पर्यनिर्धारणकी अमोघविधा है। '**अहमेव**' और '**अहम् अव्ययः**' का अभ्यास इनके निहितार्थकी महत्ताको

द्योतित करता है । '**अहमेव**' का निहितार्थ यह है कि ' वस्तुतः मैं अद्वितीय ब्रह्म ही हूँ, मुझसे अन्य पर या अपर कुछ भी नहीं है' तथा '**अहम् अव्ययः**' का निहितार्थ यह है कि 'मैं अनादि होता हुआ निर्गुण तथा देशकृत, कालकृत, वस्तुकृत - त्रिविध - परिच्छेद - शून्य अनन्त अतएव अबाध्य हूँ ' ।

सन्दर्भ - मुमुक्षुओंके हृदयमें मोक्षप्रदायिनी ब्रह्मज्ञानावलीमालाके लोकोत्तर महत्त्वकी स्फूर्ति हो, इस भावनासे प्रथम श्लोकमें मान्य ग्रन्थकारमहाभागने ग्रन्थसंरचनाकी प्रतिज्ञा की गयी है -

श्लोकः - सकृच्छ्रवणमात्रेण ब्रह्मज्ञानं यतो भवेत्।
ब्रह्मज्ञानावलीमाला सर्वेषां मोक्षसिद्धये ।।१।।

सरलार्थः - जिसके एक वारके श्रवणमात्रसे ब्रह्मज्ञान होता है, अतः वह '**ब्रह्मज्ञानावलीमाला**' सब मुमुक्षुओंके मोक्षकी सिद्धिके लिए आरम्भ की जाती है ।''

सारार्थः - स्ववर्णाश्रमोचित धर्मका निष्कामभावसे भगवदर्थ अनुष्ठान करनेपर श्रीहरिगुरुकरुणाके अमोघ प्रभावसे आरुरुक्षुको विवेक, वैराग्य और शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान संज्ञक षट्क सम्पत्ति तथा मुमुक्षा -रूप साधनचतुष्टयकी संसिद्धि होती है। -

''स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा गुरुतोषणात्।
साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम्।।''
''नित्यानित्यविवेकश्च इहामुत्रविरागता।
शमादिषट्कसम्पत्तिर्मुमुक्षा तां समभ्यसेत्।।''
(वराहोपनिषत् २. २,३)
''स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात्।
साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम्।।''
(अपरोक्षानुभूति ३)

ब्रह्मात्मतत्त्वको नित्य और उसमें अध्यस्त अनात्मप्रपञ्चको अनित्य समझना **विवेक** है। अनात्मवस्तुओंमें अनासक्ति **वैराग्य** है। अन्तःकरणका संयम **शम** है । ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका निग्रह **दम** है । अन्तःकरणसहित

श्लोक : १

ज्ञानेन्द्रियोंमें शब्दादि विषयोंके प्रति तथा कर्मेन्द्रियोंमें कर्मोंके प्रति प्रीति और प्रवृत्तिका निग्रह **उपरति** है। शीत - उष्ण, भूख - प्यास, मान - अपमान, सुख - दुःखादि द्वन्द्वोंमें समचित्तता **तितिक्षा** है । तितिक्षाका पर्यवसान भोग तथा रोगमें न हो , यह ध्यान रखना आवश्यक है । ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्व बोधके प्रतिपादक वेदान्त और सत्पुरुषोंके वचनोंमें अगाध आस्था **श्रद्धा** है। ब्रह्मात्मतत्त्वमें मनः स्थैर्य **समाधान** है। अनात्मवस्तुओंके अधिष्ठानभूत ब्रह्मात्मतत्त्वके अधिगमकी तीव्र उत्कण्ठा **मुमुक्षा** है। उक्त विवेक, वैराग्य, षट्कसम्पत्ति - सम्पन्नताके अनन्तर मुमुक्षा साधनपथमें वेदान्तकी अपूर्वता है। वैशेषिक, न्याय, साङ्ख्य और योग - प्रस्थानमें विवेक, वैराग्य, षट्कसम्पत्ति - सम्पन्नता ही कृतार्थता है। विवेक, वैराग्य, षट्कसम्पत्ति - सम्पन्नकी सिद्ध संज्ञा है। विवेकादि पूर्व - पूर्व साधन वैराग्यादि उत्तर - उत्तर साधनके पोषक हैं। साधन चतुष्टयसम्पन्नताके अनन्तर श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके श्रीमुखसे विधिवत् उपनिषदादि वेदान्तग्रन्थोंका तथा तत्त्वमस्यादि महावाक्योंके श्रवण, मनन और निदिध्यासनका प्रशस्त अधिकार सुलभ होता है।

''**परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।। तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय। येनाक्षरं पुरुषो वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्।।**'' **(मुण्डकोपनिषत् १.२.१२,१३)** - इस श्रुतिके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध होता है कि कर्मफलात्मक लोक और परलोककी नश्वरताका प्रामाणिकरीतिसे निरीक्षण, परीक्षण, अनुदर्शन और अनुशीलनकर लोक और परलोकका वरण न कर , उनके साधक कर्मोंका निष्कामभावसे अनुष्ठानकर लोक - परलोकसे विरक्त श्रद्धालु, संयतेन्द्रिय और तत्पर सत्यसहिष्णु ब्रह्मजिज्ञासु समुचित उपहारसहित आस्थापूर्वक चरम वर्णमें समुत्पन्न श्रुतिके अध्ययन और अनुशीलनसे सम्पन्न ब्रह्मनिष्ठ महानुभावके प्रति उपसन्न हो। उस प्रशान्तचित्त शमादिसम्पन्न मुमुक्षुको ज्ञानी तत्त्वदर्शी आचार्य ब्रह्मविद्याका रस - रहस्यसहित उपदेश करें।

ध्यान रहे; शम, विचार, सन्तोष और साधुसङ्गम मोक्षके चार द्वारपाल

हैं। इनमें किसी एकको साध लेनेपर शेष तीनकी सिद्धि अवश्य होती है। तप, दम, वेदान्तशास्त्र और सज्जनसम्पर्कसे प्रज्ञा विशद होती है। विशद प्रज्ञा ही भवबन्धकी निवृत्तिमें अमोघ हेतु है। साधक अकृतार्थभूमिमें स्वयंको कृतार्थ न माने। वेदान्तशास्त्र, सद्गुरु और स्वानुभूतिकी एकरूपताको ही प्रमाण और पूर्णता समझे। विशद प्रज्ञासे संकल्पाशाको शान्त करनेका प्रतिक्षण प्रयत्न करे। ध्यान रहे, निःसङ्कल्पताकी स्थिति पावन मनोनाशरूप अचित्तता है। चित्तमें निस्सङ्कल्पतारूप अकर्तृत्वकी स्फूर्ति **समाधान** है। वही केवलीभावरूपा मुक्ति अर्थात् निर्वृति है। प्रवृत्तिका पर्यवसान निवृत्तिमें और निवृत्तिका पर्यवसान निर्वृति (मुक्ति) में होनेपर ही कृतार्थता सम्भव है। बोधसे पूर्व शम, उपरति और समाधानादिकी श्रवणादिके अविरुद्ध और अनुरूप प्रतिष्ठा अपेक्षित है तथा बोधोत्तर पूर्ण प्रतिष्ठा स्वभावसिद्ध और जीवन्मुक्तिके विलक्षण आनन्दका अभिव्यञ्जक संस्थान है । -

''मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तिताः।
शमो विचारः सन्तोषश्चतुर्थः साधुसङ्गमः ।।
एकं वा सर्वयत्नेन सर्वमुत्सृज्य संश्रयेत् ।
एकस्मिन् वशगे यान्ति चत्वारोऽपि वशं गताः ।।
शास्त्रैः सज्जनसम्पर्कपूर्वकैश्च तपोदमैः ।
आदौ संसारमुक्त्यर्थं प्रज्ञामेवाभिवर्धयेत् ।।
स्वानुभूतेश्च शास्त्रस्य गुरोश्चैवैकवाक्यता ।
यस्याभ्यासेन तेनात्मा सततं चावलोक्यते।।
सङ्कल्पाशानुसन्धानवर्जनं चेत्प्रतिक्षणम्।
करोषि तदचित्तत्वं प्राप्त एवासि पावनम्।।
चेतसो यदकर्तृत्वं तत्समाधानमीरितम्।
तदेव केवलीभावं सा शुभा निर्वृतिः परा ।।
(महोपनिषत् ४.२ - ७)

ध्यान रहे, कालकवलित फलकी भावनासे कर्मानुष्ठानमें आरुरुक्षु मुमुक्षुओंकी प्रीति - प्रवृत्ति परिलक्षित नहीं होती। वे कर्मासक्ति, फलासक्ति

और अहङ्कृतिको शिथिलकर धृत्युत्साहपूर्वक भगवदर्थ स्वकर्मानुष्ठानके अमोघ प्रभावसे समस्त कर्मोंसे उपरत होकर मुक्तिलाभ करते हैं। -

''स्मृत्वाकालपरीमाणं प्रवृत्तिं ये समास्थिता:।
दोष: कालपरीमाणे महानेष क्रियावताम् ।।''
(महाभारत - शान्तिपर्व ३४०.१३)

''निर्वाणं सर्वधर्माणां निवृत्ति: परमा स्मृता।
तस्मान्निवृत्तिमापन्नश्चरेत् सर्वाङ्गनिर्वृत:।।''
(महाभारत - शान्तिपर्व ३३९.६७)

''जो नियत कालतक प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि फलोंको लक्ष्य करके प्रवृत्तिमार्गका आश्रय लेते हैं, उन कर्मपरायण पुरुषोंके लिये यही सबसे बड़ा दोष है कि वे कालकी सीमामें आबद्ध रहकर ही कर्मका फल भोगते हैं।।''

''समस्त कर्मोंसे उपरत हो जाना ही निवृत्ति है; अत: जो निवृत्तिको प्राप्त हो गया है, वह सर्वतोभावेन सुखी होकर विचरण करे।।''

जब तक वासनाक्षय, मनोनाश और अज्ञानध्वंस न हो , तबतक गुरु और वेदान्तशास्त्रके अनुसार अभ्यास करते रहना चाहिये। -

''अव्युत्पन्नमना यावद्भवानज्ञाततत्पद:।
गुरुशास्त्रप्रमाणैस्तु निर्णीतं तावदाचर।।''
(मुक्तिकोपनिषत् २.३०)

साधनचतुष्टयसम्पन्नताके अनन्तर श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुके प्रति विधिवत् उपसन्न होकर उनके श्रीमुखसे विधिवत् उपनिषदादि वेदान्तग्रन्थोंका अर्थानुसन्धानपूर्वक अध्ययन तथा उनमें सन्निहित **'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऐतरेयोपनिषत् ५. ३) , 'अहं ब्रह्मास्मि' (बृहदारण्यकोपनिषत् १.४.१०) , 'तत्त्वमसि' (छान्दोग्योपनिपनिषत् ६.८.७),' अयमात्मा ब्रह्म' (माण्डूक्योपनिषत् २, नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषत् ४.२)** - संज्ञक महावावाक्योंका श्रीशुकरहस्योपनिषत् की शैलीमें श्रवण, मनन और अनुशीलन करना चाहिये। **'प्रज्ञानं ब्रह्म '** - ऋग्वेदसे सम्बद्ध ऐतरेयोपनिषद् - गत महावाक्य है । **'अहं ब्रह्मास्मि'** यजुर्वेदसे सम्बद्ध बृहदारण्यकोपनिषद् - गत

महावाक्य है। **'तत्त्वमसि'** सामवेदसे सम्बद्ध छान्दोग्योपनिषद् - गत महावाक्य है। **' अयमात्मा ब्रह्म'** अथर्ववेदसे सम्बद्ध माण्डूक्योपनिषद् - गत महावाक्य है। इनमें **' प्रज्ञानम्'**, **'अहम्'**, **'तत्'**, तथा **'अयम् आत्मा '** - जीवके वास्तव निरुपाधिक स्वरूप प्रज्ञानसंज्ञक शोधित अहमर्थ, त्वं - पदार्थ, साक्षात् अपरोक्ष आत्माके प्रतिपादक पद हैं और **'ब्रह्म'** तथा **' तत्'** - सर्वेश्वरके निरुपाधिक स्वरूपके प्रतिपादक शब्द हैं। **'अहं ब्रह्मास्मि'** में **'अस्मि'** - 'हूँ ' गुरूपदिष्ट आत्माकी ब्रह्मरूपताका शिष्यद्वारा स्वीकारोक्ति और अनुभूति परक शब्द है । **'तत्त्वमसि'** में **'असि'** - **' हो '** - गुरूपदिष्ट आत्माकी ब्रह्मरूपताका द्योतक पद है। **'प्रज्ञानं ब्रह्म '** में **'अस्मि'** और **' अयमात्मा ब्रह्म '** में **'अस्ति'** - **'है'** - ऐक्यप्रतिपादक शब्दोंका अध्याहार कर्त्तव्य है।

पैङ्गलोपनिषत् ३ के अनुसार "**त्वं तदसि**" - "तुम वह हो ", "**त्वं ब्रह्मासि**" - "तुम ब्रह्म हो ", "**अहं ब्रह्मास्मि**" - "मैं ब्रह्म हूँ " इन महावाक्योंका ब्रह्मजिज्ञासुको अनुसन्धान करना चाहिये। ऋग्वेदसे सबद्ध **बह्वृचोपनिषत्**के अनुसार इनके अतिरिक्त "**ब्रह्मैवाहमस्मि**" - "मैं ब्रह्म ही हूँ ","**योऽहमस्मि**" -"वह जो ब्रह्म है, मैं हूँ ", "**सोऽहमस्मि**" - "वह मैं हूँ " महावाक्य हैं।

" **प्रज्ञानं ब्रह्म** " - इस महावाक्यमें श्रवण, दर्शन, आघ्राण, रसास्वादन, कथन, गमन, विसर्जन तथा मननादि ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और अन्तःकरणसे सम्पादित व्यवहारका विज्ञान जिससे सम्पादित होता है, वह **प्रज्ञान** है। ब्रह्मादि देवशिरोमणियोंसे लेकर गौ, पिपीलिकादि जङ्गम प्राणियोंमें प्रत्यगात्मरूपसे स्फुरित विभु चिद्धातु **ब्रह्म** है।

हंसोपनिषत् के अनुसार "**हंसः**" और "**रुद्रहृदयोपनिषत्** "तथा "**अद्वैतभावनोपनिषत् १** "के अनुसार "**शिवोऽहम्** " की महावाक्यता सिद्ध है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्१६० के अनुसार "**अहमेव परं ब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः**" यह दोहरा महावाक्य सुलभ है। श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकमुख - समुपदिष्ट दोहरा महावाक्य इस प्रकार सुलभ है - " **अहं ब्रह्म**

परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्'' (१२.५.११)। दोहरे महावाक्यसे ब्रह्म और आत्मामें ब्रह्मकी प्रधानता और आत्माकी गौणताका विभ्रम नहीं रहता, दोनोंकी सर्वतोभावेन सर्वथा एकरूपताका ही परिज्ञान होता है।

''**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः**'' (**बृहदारण्यकोपनिषत् २.४.५**) इस श्रुतिके अनुसार निस्सन्देह आत्मतत्त्व श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने योग्य है। आत्मदर्शनरूप पूर्ण बोधका क्रमिक साधन श्रवण, मनन और निदिध्यासन ही है। -

''**श्रवणं तु गुरोः पूर्वं मननं तदनन्तरम्।**
निदिध्यासनमित्येतत्पूर्णबोधस्य कारणम्।।''
(**शुकरहस्योपनिषत् १३**)

''**तत्त्वमसि**''-''वह तुम हो'' , ''**त्वं तदसि**'- ''तुम वह हो'', ''**त्वं ब्रह्मासि**''- ''तुम ब्रह्म हो'',''**अहं ब्रह्मास्मि**''- ''मैं ब्रह्म हूँ'' - इस प्रकार अनुसन्धान करे। श्रोता, स्प्रष्टा, द्रष्टा, रसयिता, घ्राता; वक्ता, दाता,गन्तादि संज्ञासम्प्राप्त चिद्धातु **प्रज्ञान** है। ब्रह्मादि देवशिरोमणियोंसे लेकर, पिपीलिकादिपर्यन्त व्याप्त चिद्धातु **ब्रह्म** है। अभिप्राय यह है कि विभु प्रज्ञानकी ब्रह्म और साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्मकी प्रत्यगात्मा - संज्ञा है। इस प्रकार प्रज्ञानकी ब्रह्मरूपता और ब्रह्मकी प्रज्ञानरूपता सिद्ध है। परिपूर्ण परमात्मा ही इस देहमें देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणके साक्षीरूपसे स्फुरित है। स्वतः पूर्ण परात्मा **ब्रह्म** - शब्दसे कहा गया है। **अस्मि** - पदसे दोनोंका ऐक्य दर्शाया गया है। मायोपहित सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वज्ञ , सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, जगत्कारण शबल ब्रह्म **तत्पदवाच्य** है। सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही अन्तःकरणविशिष्ट होकर अस्मत् प्रत्यय त्वंपदवाच्य होता है। अथवा सच्चिदान्दस्वरूप ब्रह्म ही मलिनसत्त्वात्मिका प्रकृतिरूपा अविद्याके योगसे त्वं - पदवाच्य अहमर्थ जीव होता है। इस प्रकार परमेश्वरकी उपाधि माया और जीवकी उपाधि अन्तःकरण अथवा अविद्याका अपलाप कर देनेपर तत् और त्वं - पद - लक्ष्य प्रत्यगात्मासे अभिन्न ब्रह्म सिद्ध होता है। नामरूपसे विरहित एकमात्र अद्वितीय सत् सृष्टिके पूर्व महाप्रलयकी दशामें विद्यमान था। सृष्टिदशामें भी वह घटादि कार्योंमें अनुगत

मत्तिकाके तुल्य अथवा रज्जुसर्पमें अनुगत रज्जुके सदृश विद्यमान है। वही तत्त्वमसि महावाक्यमें तत् पदका लक्ष्यार्थ है। श्रोताके देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणसे अतीत सत् त्वं - पद लक्ष्यार्थ है। असि पदसे तदर्थ और त्वमर्थकी एकता दर्शायी गयी है। '**अयमात्मा ब्रह्म**' इस महावाक्यमें स्वप्रकाश और अपरोक्ष शोधित अहमर्थ **अयम्** पद - लक्ष्यार्थ है। अहङ्कार, मन, प्राण और इन्द्रियसे स्थूलदेहपर्यन्त अनात्मवस्तुओंमें तादात्म्यापन्न चिद्धातु वाच्यार्थ कोटिका **आत्मा** कहा जाता है। सर्व दृश्यप्रपञ्चका विवर्तोपादानरूप स्वप्रकाश अधिष्ठान ब्रह्म कहा जाता है। इस प्रकार साक्षादपरोक्ष आत्माकी ब्रह्मरूपता सिद्ध है।

ध्यान रहे, तत्त्वमस्यादिमहावाक्योंमें "**सोऽयं देवदत्तः**" की विधासे भागत्यागलक्षणा श्रुतिसिद्ध है, न कि काल्पनिक -

वाच्यं लक्ष्यमिति द्विधार्थसरणीवाच्यस्य हि त्वंपदे
वाच्यं भौतिकमिन्द्रियादिरपि यल्लक्ष्यं त्वमर्थश्च सः।
वाच्यं तत्पदमीशताकृतमतिर्लक्ष्यं तु सच्चित्सुखा-
नन्दब्रह्म तदर्थ एष च तयोरैक्यं त्वसीदं पदम् ।।
त्वमिति तदिति कार्ये कारणे सत्युपाधौ
द्वितयमितरथैकं सच्चिदानन्दरूपम्।
उभयवचनहेतू देशकालौ च हित्वा
जगति भवति सोऽयं देवदत्तो यथैकः।।
कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपधिरीश्वरः।
कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोवशिष्यते।।
(शुकरहस्योपनिषत् १० - १२)

"महावाक्यके अर्थको समझनेके लिये वाच्य और लक्ष्य - इन दोनों ही अर्थोंकी प्रणालीका अनुसरण करना चाहिये। वाच्यसरणीके अनुसार भौतिक इन्द्रियादि भी '**त्वं** ' पदके वाच्य होते हैं ; किन्तु लक्ष्यार्थ वही है,जो इन्द्रियादिसे अतीत विशुद्ध चेतन है। इसी प्रकार, '**तत्** ' पदका वाच्यार्थ तो ईश्वरत्त्व, सर्वज्ञत्वादि गुणोंसे विशिष्ट परमात्मा है ; किन्तु लक्ष्यार्थ केवल सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म है। अतः इस स्थलपर भागत्याग - लक्षणासे '**असि**'

पदके द्वारा उक्त दोनों पदोंके लक्ष्यार्थको ही स्वीकार कर जीवेश्वरकी एकता बतायी गयी है। '**त्वं** ' तथा '**तत्** ' - पदार्थ कार्यात्मक लिङ्गशरीर और कारणात्मिका त्रिगुणमयी माया - रूप उपाधिके द्वारा ही दो हैं। उपाधि - विरहित त्वं और तत्पदार्थ अखण्ड सच्चिदानन्दस्वरूप ही सिद्ध हैं। जगत् (लोक - व्यवहार) में भी 'यह वही (अमुक देश, अमुक काल तथा अमुक वेषमें दृष्टिगोचर) देवदत्त है ' -इस वाक्यमें ' यह ' और ' वह ' - इन दोनों वचनोंमें हेतुभूत देश और काल तद्वत् वेषका अन्तर त्याग देनेर देवदत्त एक ही निश्चित होता है। यह जीव कार्यकी उपाधिसे युक्त है और ईश्वर कारणरूप उपाधिसे सम्पन्न है। कार्य तथा कारणरूप उपाधिका परित्याग कर देनेपर अद्वय बोधात्मक ब्रह्मात्मतत्त्व ही शेष रहता है।।"

श्रीगुरुमुखसे श्रवण, तदनन्तर निगमागमसम्मत युक्तियोंसे मनन और निदिध्यासन तथा समाधि ब्रह्मात्मबोधनिष्ठारूपा पूर्ण कृतार्थतामें हेतु है। । -

"**तत्त्वमसीत्यहं ब्रह्मास्मीति वाक्यार्थविचारः श्रवणं भवति। एकान्तेन श्रवणार्थानुन्धानं मननं भवति। श्रवणमनननिर्विचिकित्सेऽर्थे वस्तुन्येकतानवत्तया चेतःस्थापनं निदिध्यासनं भवति। ध्यातृध्याने विहाय निवातस्थितदीपवद्ध्येयैकगोचरं चित्तं समाधिर्भवति।" (पैङ्गलोपनिषत् ३)**

"तत्त्वमसि, अहम् ब्रह्मास्मि - आदि महावाक्यार्थविचार **श्रवण** होता है। श्रवणार्थका पूर्णरूपसे विचार **मनन** होता है। श्रवण और मननसे सुनिश्चित तत्त्वमें चित्तका एकतान संस्थान **निदिध्यासन** होता है। धाता और ध्यानसे अतीत ध्येयमात्रको विषय करनेवाली निवातस्थित दीपके तुल्य चित्तवृत्ति **समाधि** होती है।।"

**"इत्थं वाक्यैस्तदर्थानामनुसन्धानं श्रवणं भवेत्।
युक्त्या सम्भावितत्त्वानुसन्धानं मननं तु तत्।।
ताभ्यां निर्विचिकित्सेऽर्थे चेतसः स्थापितस्य यत्।
एकतानत्वमेतद्धि निदिध्यासनमुच्यते।।**

श्लोक : १

ध्यातृध्याने परित्यज्य क्रमाद्ध्येयैकगोचरम्।
निवातदीपवच्चित्तं समाधिरभिधीयते।।"
(अध्यात्मोपनिषत् ३३ - ३५)

"इस प्रकार महावाक्योंद्वारा उनके अर्थका "**उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम्। अर्थवादोपपत्ती च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये।।**" के अनुसार उपक्रम (प्रतिपाद्य विषयका आरम्भ) तथा उपसंहार (प्रतिपाद्य विषयका समापन), अभ्यास (तथ्यका पुनः - पुनः प्रकाशन), अपूर्वता (प्रमाणान्तरसे अनधिगतता और अबाधितता), फल (अभीष्टकी समुपलब्धिका प्रकाश), अर्थवाद (अभिमतकी प्रशंसा और अनभिमतकी निन्दा) तथा उपपत्ति (आगमिक युक्ति) -रूप षड्विध लिङ्गोंके द्वारा ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्वविज्ञानमें तात्पर्यनिर्धारणरूप अनुसन्धान **श्रवण** होता है। युक्तिसे सम्भावित तत्त्वानुसन्धान **मनन** कहा जाता है। श्रवण और मननसे सुनिश्चित तत्त्वमें चित्तका एकतान संस्थान **निदिध्यासन** माना जाता है। धाता और ध्यानसे अतीत ध्येयमात्रको विषय करनेवाली निवातस्थित दीपके तुल्य चित्तवृत्ति **समाधि** कही जाती है।।"

"एतावानेव मनुजैर्योगनैपुण्यबुद्धिभिः।
स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम्।।"
(श्रीमद्भागवत ६.१६.६३)

"जो योगमार्गका तत्त्व समझनेमें निपुण हैं, उनको भलीभाँति समझ लेना चाहिये कि जीवका सबसे श्रेष्ठ स्वार्थ और परमार्थ केवल इतना ही है कि वह ब्रह्म और आत्माके एकत्वका अनुभव कर ले।।"

वेदान्तवेद्य ब्रह्म जगत्का उपादान और निमित्त उभयविध कारण है। जगत् उसकी अभिव्यक्ति और उसका अभिव्यञ्जकसंस्थान है। अतः दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और निदिध्यासितव्य आत्माके श्रवण, मनन (मति - सम्पादन), निदिध्यासन (विज्ञानसम्पादन) - सुलभ आत्मविज्ञाननिष्ठासे सर्वविज्ञान सम्भव है। कारण यह है कि ब्रह्मात्मतत्त्व ही प्रकृतिसहित प्राकृत जगत् का अधिष्ठानात्मक उपादान है। -

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
श्लोक : १

"आत्मा वा अरे द्रष्टय: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य:।" (बृहदारण्यकोपनिषत् १. ४. ५), "आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ।।" (बृहदारण्यकोपनिषत् १. ४. ५)

जगत् मायाके द्वारसे सृष्ट और मनोरूप चित्तके योगसे स्फुरित होनेके कारण माया और मनोमय है - "विद्धि मायामनोमयम्" (श्रीमद्भागवत ११.७. ७)। अत: चित्तमूल इस विकल्पका निरोध प्रत्यगात्मस्वरूप परात्मामें चित्तके सन्निहित होनेसे सम्भव है। -

"चित्तमूलो विकल्पोऽयं चित्ताभावे न कश्चन।
अतश्चित्तं समाधेहि प्रत्यग्रूपे परात्मनि।।"
(अध्यात्मोपनिषत् २६)

जगत्की नश्वरता, अचिद्रूपता और दु:खप्रदताके अनुशीलनसे अनात्मवस्तुओंमें अनासक्तिरूप वैराग्य सम्भव है। वैराग्योत्तर श्रवण, मनन और निदिध्यासनके योगसे अध्यस्त जगत्के अधिष्ठानस्वरूप ब्रह्मकी अद्वितीय आत्मरूपताका बोध सम्भव है। बोधोत्तर वृत्तिकी ब्रह्मात्मतत्त्वमें विलीनतारूपा उपरति सम्भव है। वैराग्य, बोध, उपरति और शान्तिमें ब्रह्मविद्याका विनियोग है।-

"वैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्योपरति: फलम्।
स्वानन्दानुभवाच्छान्तिरेषैवोपरते: फलम्।।"
यद्युत्तरोत्तराभावे पूर्वरूपं तु निष्फलम्।
निवृत्ति: परमा तृप्तिरानन्दोऽनुपम: स्वत:।।"
(अध्यात्मोपनिषत् २८, २९)

"**वैराग्य**का फल स्वरूपविज्ञानरूप **बोध** है। बोधका फल स्वानन्दानुभवरूपा **उपरति** है। स्वानन्दानुभवसे सम्प्राप्त **शान्ति** ही उपरतिका फल है। यदि पूर्व - पूर्वका पर्यवसान उत्तर - उत्तरमें न हो, तो पूर्व - पूर्वकी निरर्थकता मान्य है। अभिप्राय यह है कि वैराग्यसे बोध प्राप्त होनेपर ही वैराग्यकी सार्थकता है। बोधसे उपरति प्राप्त होनेपर ही उपरतिकी सार्थकता है तथा उपरतिसे शान्ति सुलभ होनेपर ही उपरतिकी सार्थकता है। स्वत:सिद्ध अनुपम आनन्दकी स्फूर्तिसे परमा तृप्तिकी अनुभूति निवृत्ति है।।"

अभिप्राय यह है कि वैराग्योत्तर बोधके लिए तथा बोधोत्तर उपरतिके लिए और उपरतिके अनन्तर शान्तिके लिए अपेक्षित उद्यम करना ही चाहिये। ब्रह्मात्मबोधके अनन्तर उपरति और समाधानादिमें पूर्णता है। ब्रह्मात्मबोधके पूर्व और विवेकके अनन्तर उपरति तथा समाधानादिमें श्रवण, मनन और निदिध्यासनकी अविरुद्धता और अनुरूपताके कारण पूर्वरूपता है। भोग्य वस्तुओंमें वासनाका अनुदय वैराग्यकी अवधि है। अहम्भावके उदयका अभाव बोधकी परमावधि है। लीनवृत्तिकी अनुत्पत्ति उपरतिकी सीमा है। -

''वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य तदावधिः।
अहम्भावोदयाभावो बोधस्य परमावधिः।।
लीनवृत्तेरनुत्पत्तिर्मर्यादोपरतेस्तु सा।
स्थितप्रज्ञो यतिरयं यः सदानन्दमश्नुते।।
ब्रह्मण्येव विलीनात्मा निर्विकारो विनिष्क्रियः।
ब्रह्मात्मनोः शोधितयोरेकभावावगाहिनि।।
निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते।
सा सर्वदा भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते।।
देहेन्द्रियेष्वहम्भाव इदम्भावस्तदन्यके।
यस्य नो भवतः क्वापि स जीवन्मुक्त इष्यते।।
न प्रत्यग्ब्रह्मणोर्भेदं कदापि ब्रह्मसर्गयोः।
प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्त इष्यते।।''

(अध्यात्मोपनिषत् ४१ - ४६)

''जब भोग्य वस्तुओंमें वासनाका उदय न हो, तब वैराग्यकी अवधि मान्य है। अहम्भावके उदयका अभाव बोधकी परमावधि है। लीनवृत्तिकी अनुत्पत्ति उपरतिकी मर्यादा है। यह यति स्थितप्रज्ञ है, जो सदानन्दका सेवन करता है और जो ब्रह्ममें ही विलीन, निर्विकार और सर्वथा निष्क्रिय है। शोधित ब्रह्म और आत्माके एकत्वका अवगाहन करानेवाली निर्विकल्पा और चिन्मात्रा वृत्ति प्रज्ञा कही जाती है, वह जिसे सर्वदा सुलभ रहती है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है।''

देहेन्द्रियादि अध्यात्मसंज्ञक स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरमें अहम्भाव

और देहबाह्य स्त्री, पुत्र, ग्रह, नक्षत्रादि वस्तुओंमें इदम्भाव जिसे कभी नहीं होता, वी जीवन्मुक्त कहा जाता है।। जो प्रत्यगात्मा और ब्रह्ममें तथा ब्रह्म और सर्ग (सृष्टि, जगत्) में विमल प्रज्ञाके अमोघ प्रभावसे विभेद नहीं जानता, वह जीवन्मुक्त होता है।।"

पृथिव्यादि पञ्च भूत और पाञ्च भौतिक वस्तुओंके योगसे दृश्याकार इदम् की और अन्नमयादि पञ्चकोशोंके योगसे अहमर्थ अहम् की स्फूर्ति जीवत्व है। भूत - भौतिक संसर्ग - निरपेक्ष **इदम्** ब्रह्म है तथा पञ्चकोशसंसर्ग - रहित अहम् शोधित अहमर्थरूप **अहम्भाव** प्रत्यगात्मा है।

"अहंशब्दो ह्यहम्भावो नात्मभावे शुभव्रते।
न वर्तन्ते परेऽचिन्त्ये वाचः सगुणलक्षणः।।
मृण्मये हि घटे भावस्तादृग्भाव इहेष्यते।
अयम्भावः परेऽचिन्त्ये ह्यात्मभावो यथा च तत्।।"
(महाभारत - शानितपर्व २२०. दाक्षिणात्यपाठ)

"शुभव्रते ! अहम् शब्दका आत्मभावमें प्रयोग नहीं होता; किन्तु अहम्भाव ही आत्मभावमें प्रयुक्त होता है। कारण यह है कि सगुण पदार्थके बोधक वचन अचिन्त्य परब्रह्म परमात्मतत्त्वके बोधक नहीं हो सकते।।"

"जैसे मृद्घटमें मृत्तिकाभाव होता है, वैसे परमात्मासे समुत्पन्न प्रत्येक पदार्थमें परमात्मभाव अभीष्ट है। अतएव अचिन्त्य परब्रह्म परमात्मामें अहम्भाव ही आत्मभाव है और वही यथार्थ है।।"

वैराग्यसे वासनाक्षय, तत्त्वज्ञानसे अज्ञानक्षय और उपरतिसे मनोनाश सम्भव है। वैराग्य, बोध और उपरतिकी सहस्थिति जीवन्मुक्ति है।

आत्माकी सच्चिदानन्दरूपता और जगत् की असच्चिदानन्दरूपताके दृढ़बोधसे और व्यवहारमें असङ्गता, पुनर्भवकी अभावना और शरीरकी नश्वरताके अनुदर्शनसे वासनाक्षय सम्भव है। वासनाके क्षयसे मनोनाश सम्भव है । -

"सम्यगालोचनात्सत्याद्वासना प्रविलीयते।
वासनाविलये चेतः शममायाति दीपवत्।।"
(मुक्तिकोपनिषत् २.१६)

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
श्लोक : १

''असङ्गव्यवहारत्वाद्   भवभावनवर्जनात्।
शरीरनाशदर्शित्वाद् वासना न प्रवर्तते।
वासनासम्परित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम्।।''
(मुक्तिकोपनिषत् २.२८)

जब साधक सर्व कार्य प्रपञ्चको आत्मामें ही देखता है और सर्वभूतोंमें आत्माको देखता है, तब ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। जब परमात्मस्वरूपसे एकीभूत समाधिस्थ योगी द्वैतप्रपञ्चरूप सर्व भूतोंको नहीं देखता है, तब विशुद्ध अद्वयभावरूप केवल होता है। जब सम्पूर्ण जगत् को मायामात्र समझनेवाला परमार्थदृष्टिसम्पन्न योगी आत्माको अद्वय ज्ञानस्वरूप देखता है, तब निर्वृतिलाभ करता है। -

''यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येव हि पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।
यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति।
एकीभूतः परेणाऽसौ तदा भवति केवलः।।
यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः।
मायामात्रं जगत्कृत्स्नं तदा भवति निर्वृतिः।।''
(श्रीजाबालदर्शनोपनिषत् १०.१० - १२)

गुरुदेव आरम्भमें शिष्यको शम, दमादिसम्पन्नताका उपदेश कर विशुद्ध करते हैं और बादमें **''तुम शुद्ध और सर्वात्मा हो''**, ऐसा उपदेश कर मुक्त करते हैं।-

''आदौ शमदमप्रायैर्गुणैः शिष्यं विशोधयेत्।
पश्चात्सर्वमिदं ब्रह्म शुद्धस्त्वमिति बोधयेत्।।''
(महोपनिषत् ५. १०४)

भगवदर्थ निष्काम कर्मयोगसे भगवद्भक्ति, भक्तियोगसे ज्ञान और ज्ञानसे कैवल्य मुक्तिकी समुपलब्धि - शास्त्रोंका सिद्धान्त है।-

''कर्मणा जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते।
ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः।।''
(शिवपुराण उमा० ५१.१०)

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
श्लोक : १

"धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।।"

(रामचरितमानस ३.१५.१)

ध्यान रहे, अज्ञानकी प्रबलतासे विचारका अभाव होता है। सनातन वेदादि धर्मशास्त्रोंके विधिवत् अध्ययन और अनुशीलनके अनन्तर कर्मासक्ति, फलासक्ति, अहङ्कृतिको शिथिलकर धृत्युत्साहपूर्वक भगवदर्थ स्ववर्णाश्रमोचित सामान्य और विशेष धर्मोंका निष्कामभावसे अनुष्ठान करनेपर सकल दुरितक्षय और अनात्मप्रपञ्चसे वैराग्य प्राप्त होता है। तदनन्तर सद्गुरुसान्निध्यके अमोघ प्रभावसे सगुण - निर्गुण सर्वेश्वरकके श्रवणादिका सुयोग सधता है। श्रवणादिके अमोघ प्रभावसे भगवत्स्वरूपमें प्रीति - प्रवृत्तिका उदय होता है। तदनन्तर अभ्यन्तरमलका विनाश भक्तिरसका आविर्भाव, भजनीय सर्वेश्वरका दर्शन सुलभ होता है। सद्गुरु - कृपालब्ध भगवतत्त्वके श्रवणादिसे पक्वविज्ञानके अनन्तर भवबन्धका विलोप और जीवन्मुक्तिका विलक्षण आनन्द सुलभ होता है। -

"कथं बन्धः, विचाराभावात्। तत्कथमिति, अज्ञानप्राबल्यात्। अतः संसारतरणोपायकथमिति। देशिकः तमेव कथयति। सकलवेदशास्त्रसिद्धान्तरहस्यजन्माभ्यस्तात्यन्तोत्कृष्टसुकृतपरिपाकवशात्सद्भिः सङ्गो जायते। तस्माद्विधिनिषेधविवेको भवति। ततः सदाचारप्रवृत्तिर्जायते। सदाचारादखिलदुरितक्षयो भवति। तस्मादन्तःकरणमतिविमलं भवति। ततः सद्गुरुकृपाकटाक्ष - मन्तःकरणमाकाङ्क्षति। यदा सद्गुरुकटाक्षो भवति तदा भगवत्कथाश्रवणध्यानादौ श्रद्धा जायते। तस्माद्धृदयस्थितानादि - दुर्वासनाग्रन्थिविनाशो भवति। ततो हृदयस्थिताः कामाः सर्वे विनश्यन्ति। तस्माद्धृदयपुण्डरीककर्णिकायां परमात्माविर्भावो भवति। ततो दृढतरा वैष्णवी भक्तिर्जायते। ततो वैराग्यमुदेति। वैराग्याद्बुद्धिर्विज्ञानाविर्भावो भवति। अभ्यासात्तज्ज्ञानं क्रमेण परिपक्वं भवति। परिपक्वविज्ञानाज्जीवन्मुक्तो भवति। ततः शुभाशुभकर्माणि सर्वाणि सवासनानि नश्यन्ति।।" (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ५)

श्लोक : २

सन्दर्भ: - सर्वप्रथम असङ्ग, अव्यय, सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माका स्वानुभवानुरूप प्रतिपादन -

श्लोक: - असऽङ्गोऽहमसङ्गोऽहमसङ्गोऽहं पुनः पुनः।
सच्चिदानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ।। २ ।।

सरलार्थ: - मैं असङ्ग हूँ; मैं असङ्ग हूँ; मैं असङ्ग हूँ; पुनः - पुनः इस तथ्यकी अनुभूतिजन्य आह्लाद व्यक्त करता हूँ। मैं सच्चिदानन्दस्वरूप ही हूँ; मैं अव्यय ही हूँ। अभिप्राय यह है कि वेदान्तोंमें जिस ब्रह्मात्मतत्त्वका सच्चिदानन्दस्वरूप असङ्ग और अव्ययरूपसे वर्णन है, वही मैं हूँ।।

सारार्थः - **"असङ्गो न हि सज्जते" (बृहदारण्यकोपनिषत् ३. .९.२६, ४.५.१५, ४.४.२२, ४.२.४), "असङ्गो ह्ययं पुरुषः" (बृहदारण्यकोपनिषत्(४.३.१५,१६), "स्वप्रकाशोऽसङ्गः" (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ५), "असङ्गो ह्ययमात्मा" (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ९), "सदाऽसङ्गस्वरूपोऽस्मि निर्विकारोऽहमव्ययः" (तेजोबिन्दूपनिषत् ३.६), "असङ्गोऽहमनङ्गोऽमलिङ्गोऽहम् " (अध्यात्मोनिषत् ६८), "पुरुषो ह्यव्ययात्मा" (मुण्डकोपनिषत् १. २. ११), "अखण्डैकरसोऽव्ययः" (तेजोबिन्दूपनिषत् २ . ८)** आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव असङ्ग और अव्यय सिद्ध होता है। **"सच्चिदानन्दपूर्णात्मानं परं ब्रह्म सम्भाव्य" (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ४), "सच्चिदानन्दमात्रमेकरसम्" (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ५), "सद्घनोऽयं चिद्घन आनन्दघन एवैकरसः" (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ८), "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तैत्तिरीयोपनिषत् २ .१), "आनन्दो ब्रह्म" (तैत्तिरीयोपनिषत् ३ . ६),**

श्लोक : २

"**सर्वपूर्णस्वरूपोऽस्मि सच्चिदानन्दलक्षण:**" (**मैत्रेय्युपनिषत्** ३.१२) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे ब्रह्मात्मतत्त्व सच्चिदानन्दस्वरूप सिद्ध होता है।

रहस्यार्थ: - आत्मदेव अबाध्य होता हुआ अपरोक्ष होनेके कारण **सत्** है, अवेद्य होता हुआ अपरोक्ष होनेके कारण **चित्** है, अभोग्य होता हुआ अपरोक्ष होनेके कारण **आनन्द** है, सर्वाधिष्ठान होता हुआ अपरोक्ष होनेके कारण **असङ्ग** है। अनादि होता हुआ अनन्त और निर्गुण होनेके कारण **अव्यय** है।

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
श्लोक : ३
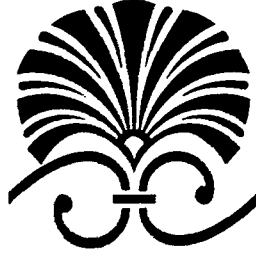
सन्दर्भ: - आत्माकी नित्य शुद्ध - बुद्ध - मुक्तस्वरूपता और निराकार-अव्यय - भूमानन्दरूपताका निरूपण -

श्लोक: - नित्यशुद्धविमुक्तोऽहं निराकारोऽहमव्यय:।
भूमानन्दस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्यय: ।।३।।

सरलार्थ:- मैं नित्य शुद्ध और विमुक्त हूँ; निराकार और अव्यय हूँ; भूमानन्दस्वरूप निर्विकार मैं ही तो हूँ।।

सारार्थ:- "**नित्य: शुद्धो बुद्ध: सत्यो मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वयानन्द:**" (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ९), "**शुद्धं बुद्धं सदामुक्तमनामकमरूकम्, सच्चिदानन्दरूपोऽहम्**" (तेजोबिन्दूपनिषत् ६ .७०), "**अहं शुद्धोऽस्मि बुद्धोऽस्मि नित्योऽस्मि प्रभुरस्म्यहम्** " (तेजोबिन्दूपनिषत् ३ .४२), "**यो वै भूमा तत्सुखम्**" (छान्दोग्योपनिषत् ७ . २३), " **परमानन्दैकभूमरूपोऽहम्**" आत्मप्रबोधोपनिषत् ८) , " **भूमानन्दमयोऽस्म्यहम्**" (तेजोबिन्दूपनिषत् ३ .३८) आदि श्रुतियोंके योगसे आत्मदेव नित्य शुद्ध - बुद्ध - मुक्त - निराकार और भूमानन्दस्वरूप सिद्ध होता है।

आत्मदेव अज स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप निर्गुण - निराकार है। अत: उसकी नित्यता, शुद्धता और मुक्तता स्वत:सिद्ध है। अज और स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूपका नित्य तथा शुद्ध होना स्वाभाविक है। निर्गुण और निराकारका मुक्त होना निसर्गसिद्ध है। आत्मस्वरूपमें अध्यस्त अविद्याकृत आवरण और विक्षेपरूप बन्ध आत्मसापेक्ष होनेके कारण आरोपित है। रज्जु (रस्सी) आदि किसी भी वस्तुका अज्ञान और ज्ञान उस वस्तुकी अपेक्षासे होनेके कारण तात्त्विक नहीं होता। आत्मदेव चित्स्वरूप है; अत: वह अपने भास्य चिदाभासका

भास्य (प्रकाश्य) उसी प्रकार नहीं हो सकता, जिस प्रकार नभोमण्डलमें विद्यमान आदित्य दर्पणमें प्रतिफलित दर्पणादित्यका भास्य नहीं हो सकता। तथापि तत्त्वमस्यादि महावाक्यजन्य आत्माकारा वृत्तिका उपयोग और विनियोग अज्ञान और तत्कृत आवरणके विध्वंसमें हो ही सकता है। इस प्रकार निरावरण आत्माका नाम **मोक्ष** है। अभिप्राय यह है कि अनात्मवस्तुओंके अनुरूप आत्ममान्यताका त्यागकर वास्तव -अद्वयात्मरूपसे स्थिति **मुक्ति** है -"**मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थिति:**" (**श्रीमद्भागवत २. १०. ६**)। आत्मदेव वृत्तिव्याप्य होनेपर भी चिदाभासरूप फलका व्याप्य नहीं है, जबकि घटादि जडवस्तुओंके आवरणभङ्गके लिये उन्हें वृत्तिव्याप्य और स्फुरणके लिये फलव्याप्य होनेकी आवश्यकता है। -

"**ब्रह्मण्यज्ञाननाशाय वृत्तिव्याप्तिरपेक्षिता।**
स्वयं स्फुरणरूपत्वान्नाभास उपयुज्यते।।"
(पञ्चदशी ७ . ९५)

श्रुति स्वयं ही आत्माको वृत्तिव्याप्य सिद्ध करती है तथा उसके फलव्याप्यत्वका निराकरण करती है। यथा -

"**ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थिति:।**
ध्यानशब्देन विख्यात: परमानन्ददायक:।।
निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुन:।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते।।"
(तेजोबिन्दूपनिषत् १.३६,३७)

". 'मैं ब्रह्म ही हूँ' - इस सद्वृत्तिसे निरालम्बरूपसे स्थिति ध्यान - शब्दसे विख्यात है। ऐसा ध्यान परमानन्द - प्रदायक है।।"

"निर्विकार प्रत्यगात्माकार तथा विभु और अव्यय प्रत्यगात्मस्वरूप ब्रह्माकार - वृत्तिकी त्रिपुटीरहित स्थितिरूपा विस्मृति समाधि कही जाती है।।"

उक्त वचनोंके अनुशीलनसे ब्रह्मात्मतत्त्वका वृत्ति व्याप्यत्व सिद्ध है।

"**तदानीमात्मगोचरा वृत्तय: समुत्थिता अज्ञाता भवन्ति। ता: स्मरणादनुमीयन्ते।।**" (**पैङ्गलोपनिषत् ३.१**)

श्लोक : ३

वृत्तयस्तु तदानीमप्यज्ञाता आत्मगोचराः।
स्मणादनुमीयन्ते व्युत्थितस्य समुत्थिताः।।
(अध्यात्मोपनिषत् ३६)

''समाधिदशामें अज्ञात होनेपर भी आत्माकारवृत्तिकी विद्यमानता होती है। समाधिसे व्युत्थानदशामें सम्यक् उत्थानको प्राप्त उन वृत्तियोंका स्मरणके बलपर अनुमान होता है। '**एतावन्तं कालं समाहितोऽभूवम्**' - 'इतने समयतक मैं समाहित रहा' यह स्मरणका स्वरूप है। ''**यद्यत्स्मर्यते तत्तदनुभूतम्**' 'जो - जो स्मरण किया जाता है, वह - वह अनुभूत होता है ' इस व्याप्तिके अनुसार समाधिकालिक आत्माकार वृत्तियोंका स्मरणानुरूप अनुमान होता है।

''संवेद्यवर्जितमनुत्तममाद्यमेकं
सम्वित्पदं विकलनं कलयन् महात्मन्।
हृद्येव तिष्ठ कलनारहितः क्रियां तु
कुर्वन्नकर्त्तृपदमेत्य शमोदितश्रीः।।''
(अन्नपूर्णोपनिषत् ४.११)

''महात्मन् ! स्वप्रकाश संवित् संवैद्यरहित आद्य सर्वोत्तम एक निष्कल पद है। इस तथ्यको हृदयङ्गम करते हुए तुम कलनारहित निष्क्रियभावसे हृद्देशमें ही स्थित रहो। कर्मेन्द्रियोंसे कर्मका तथा ज्ञानेन्द्रियोंसे ज्ञानात्मक भोगका सम्पादन करते हुए भी अविक्रिय ब्रह्मात्मविज्ञानके अमोघ प्रभावसे कूटस्थ निर्विकार शमसमन्वित स्थित रहो।।''

महाभारतमें भी इस तथ्यका मनोरमरीतिसे वर्णन है। यथा -

''तद्ब्रह्म परमं शुद्धमनौपम्यं न शक्यसे।
न दृश्यते तथा तच्च दृश्यते च मतिर्मम।।''
(महाभारत - शान्तिपर्व २२० दाक्षि.)

''वह ब्रह्म परम शुद्ध और उपमारहित है; अतः वाणीद्वारा उसका वर्णन असम्भव है। वह अज्ञानचक्षुका अविषय तथा ज्ञानचक्षुका विषय है। **फलव्याप्यरूप स्वभास्य - भास्यरूपसे अर्थात्** चिदाभासका भास्यरूपसे उसका दर्शन नहीं किया जा सकता तथा वृत्तिव्याप्यरूपसे उसका दर्शन किया जा

सकता है। ऐसा मेरा मत है।।"

ध्यान रहे, अविद्या कोई पारमार्थिक वस्तु नहीं है। वह अविचारित रमणीय अपारमार्थिक वस्तु है। अतएव उससे आत्माका स्पर्श नहीं होता। इसी लिए श्रीवार्तिककारने कहा है । -

"अविद्यास्येत्यविद्यायामेवासित्वा प्रकल्प्यते।
ब्रह्मद्वारा त्वविद्येयं न कथञ्चन युज्यते।।"

"अविद्यामें स्थित होकर ही अविद्याके अस्तित्वकी कल्पना की जा सकती है, ब्रह्मदृष्टिसे वह कथमपि उपपन्न नहीं होती।।"

अभिप्राय यह है कि उलूकानुभवसिद्ध अन्धकारका आश्रय जैसे प्रकाशपुञ्ज सूर्य होता है, वैसे ही अज्ञानुभवसिद्ध अविद्याका आश्रय ब्रह्म होता है।-

"उलूकस्य यथा भानुरन्धकारः प्रतीयते।
स्वप्रकाशे परानन्दे तमो मूढस्य जायते।।"
(आत्मप्रबोधोपनिषत् २५)

"यद्यपि सूर्य प्रकाशात्मक है, परन्तु उल्लूको वह अन्धकारमय ही परिलक्षित होता है। तद्वत् परमानन्दस्वरूप आत्मदेव स्वप्रकाश है, तथापि मूढकी उसमें तमसाच्छन्नबुद्धि उत्पन्न होती है।।"

"प्रत्यगात्मा परञ्ज्योतिर्माया सा तु महत्तमः।।
तथा सति कथं माया सम्भवः प्रत्यगात्मनि।
तस्मात्तर्कप्रमाणाभ्यां स्वानुभूत्या च चिद्घने।।
स्वप्रकाशैकसंसिद्धे नास्ति माया परात्मनि।
व्यावहारिकदृष्ट्येयं विद्याऽविद्या न चान्यथा।।
तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम्।
(पाशुपतब्रह्मोपनिषत् १६ - १८.१/२)

"प्रत्यगात्मा परम ज्योतिःस्वरूप है और वह माया महा तमोरूपा है, ऐसी स्थितिमें प्रत्यगात्मामें सचमुचमें माया कैसे सम्भव है ? अतः तर्क, प्रमाण और स्वानुभूतिके बलपर चिद्घन स्वप्रकाश अद्वितीय परमात्मस्वरूप प्रत्यगात्मामें माया असिद्ध ही है। मायासंज्ञक अविद्याके बिना विद्या भी वस्तुतः कैसे सम्भव

है ? अतः व्यावहारिक दृष्टिसे ही विद्या और अविद्या है, न कि वस्तुतः।।"

"सर्वाधिष्ठानः सन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवेति तस्मादेवमेवेममात्मानं परं ब्रह्मानुसन्दध्यात्।।"

(नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत् २)

"सर्वाधिष्ठान, सन्मात्र मैं आत्मदेव अविद्यारूप तामसप्रत्ययजन्य विपर्ययात्मक मोहसे सर्वथा विरहित ही हूँ, अतः ऐसा निश्चय कर इस आत्माकी ब्रह्मरूपताका अनुसन्धान करना चाहिये।।"

**"नावृतिर्ब्रह्मणः काचिदन्याभावादनावृतम्।
अस्तीति प्रत्ययो यश्च यश्च नास्तीति वस्तुनि।।
बुद्धेरेव गुणावेतौ न तु नित्यस्य वस्तुनः।
अतस्तौ मायया क्लृप्तौ बन्धमोक्षौ न चात्मनि।।
निष्कले निष्क्रिये शान्ते निरवद्ये निरञ्जने।
अद्वितीये परे तत्त्वे व्योमत्कल्पना कुतः।।"**

(आत्मोपनिषत् २८ - ३०)

"ब्रह्म निष्कल, निष्क्रिय, निर्दोष, निर्मल, निर्द्वैत, नित्य और सम है। अस्ति, नास्ति, बन्ध, मोक्षकी कल्पना अनित्य बुद्धिकृत है। ब्रह्म अद्वय होनेसे वस्तुतः निरावरण है। वह सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन है। उसके अन्दर या बाहर माया तथा मायिक जगत्की संस्थिति सर्वथा असम्भव है। अवकाशप्रद आकाशमें वायु, तेज, जल और पृथ्वीरूप भूत चतुष्टयकी कल्पना सम्भव है, परन्तु सद्घन, चिद्घन और आनन्दघन आत्मामें अविद्या और आविद्यक प्रपञ्चरूप द्वैतकी वास्तव स्थिति असम्भव ही है।।"

रज्जुघनके अन्दर या बाहर सर्पादिकी स्थिति और प्रतीति सर्वथा असम्भव ही है, तथापि अज्ञानयोगसे उसकी सर्पादिरूपसे अनिर्वचनीया समुत्पत्ति और प्रतीति सम्भव है। तद्वत् सच्चिदानन्दघन सर्वेश्वरके अन्दर या बाहर भूत - भौतिक प्रपञ्चकी स्फूर्ति सर्वथा असम्भव ही है, तथापि मायायोगसे उसकी सर्वरूपोंमें स्फूर्ति सम्भव है।

श्लोक : ४
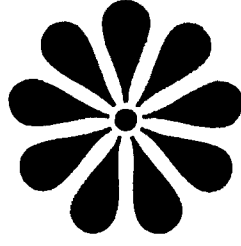
सङ्गति: - नित्य, निरवद्य, निराकार, अच्युत और परमानन्द स्वरूप अव्यय आत्माका निरूपण -

श्लोक: - नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकारोऽहमच्युत:।
परमानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्यय:।। ४ ।।

सरलार्थ: - मैं नित्य हूँ ; निर्दोष हूँ ; निराकार और अच्युत हूँ ; परमानन्दस्वरूप मैं ही तो हूँ । मैं अपरिणामी अव्यय हूँ ।।

सारार्थ: - **'नित्योऽस्मि' (मैत्रेय्युपनिषत् ३ . २)** , **'नित्योऽहं निरवद्योऽहम्' (ब्रह्मविद्योपनिषत् ९७)**, **''निश्चलं निर्विकल्पं च निराकारं निराश्रयम्'' (तेजोबिन्दूपनिषत् १.६)**, **''परमात्माहमच्युत:'' (महोपनिषत् ५.८९)**,**''परमानन्दैकभूमरूपोऽहम्'' (आत्मप्रबोधोपनिषत् ८)** **''अखण्डैकरसोऽव्यय:'' (तेजोविन्दूपनिषत् २.८)** के अनुशीलनसे आत्मदेव नित्य, निरवद्य, निराकार, अच्युत,परमानन्दस्वरूप और अव्यय सिद्ध होता है।

''अनादित्वादनन्तत्वात्तदनन्तमथाव्ययम्'' (महाभारत - शान्तिपर्व २०६ . १९) के अनुशीलनसे अनादि और अनन्तकी अव्यय संज्ञा है। **'निर्दोषं हि समं ब्रह्म'(श्रीमद्भगवद्गीता ५.१९)** के अनुशीलनसे ब्रह्मात्मतत्त्व निर्दोष और सम सिद्ध होता है।

यद्यपि वायु और आकाश भी नीरूप होनेके कारण निराकार हैं ; परन्तु प्राप्त सन्दर्भमें आरोपितका नाम आकार और अनारोपितका नाम निराकार है। **'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि' (श्रीमद्भगवद्गीता १३ . १९)**, **'अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्यय:' (श्रीमद्भगवद्गीता १३ . ३१)**

के अनुशीलनसे त्रिगुणात्मिका प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि सिद्ध होते हैं ; परन्तु अनादि होता हुआ निर्गुण होनेके कारण आत्मदेव अव्यय अर्थात् अबाध्य सिद्ध होता है। जब कि अनादि होनेपर भी गुणात्मिका होनेके कारण प्रकृतिका ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्वविज्ञानसे बाधात्मक (मिथ्यात्वनिश्चयरूप) नाश सुनिश्चित है।।

श्लोक : ५
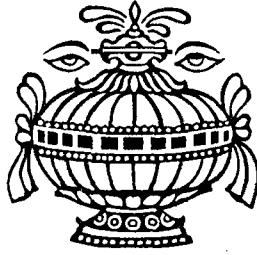
सङ्गतिः - आत्माकी शुद्ध चैतन्यानन्दरूपता और अनात्मरमण-निरपेक्षताका प्रतिपादन -

श्लोकः - शुद्धचैतन्यरूपोऽहमात्मारामोऽहमेव च।
अखण्डानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ।।५।।

सरलार्थः - मैं त्रिपुटीसे अतीत शुद्ध चित्स्वरूप हूँ और अनात्मरमणसे उपरत आत्माराम मैं ही हूँ। मैं ही अखण्डानन्दस्वरूप हूँ। मैं ही कार्यकारणातीत अव्यय हूँ।।

सारार्थः -''**शुद्धचैतन्यरूपात्मा**'' (**तेजोबिन्दूपनिषत् ४.६**), ''**शुद्धचैतन्यमस्म्यहम्**'' (**तेजोबिन्दूपनिषत् ४.२**), ''**शुद्धबोध-स्वरूपोऽहम्**'' (**अध्यात्मोपनिषत् ६९**), ''**कूटस्थचेतनोऽहम्**'' (**आत्मप्रबोधोपनिषत् ५**), ''**शुद्धोऽहमान्तरोऽहं शाश्वतविज्ञान-समरसात्माहम्। शोधितपरतत्त्वोऽहं बोधानन्दैकमूर्तिरेवाहम्।।**'' (**आत्मप्रबोधोपनिषत् १०**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव शुद्धचैतन्यस्वरूप सिद्ध होता है।

''**आत्मारामा महात्मानस्ते महत्पदमागताः।। जीवन्मुक्ता न मज्जन्ति सुखदुःखरसस्थिते। प्रकृतेनाथ कार्येण किञ्चित्कुर्वन्ति वा न वा।।**'' (**महोपनिषत् ५.३६,३७**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे सुख -दुःखादि द्वन्द्वोंमें समचित्त आत्माराम जीवन्मुक्त सिद्ध होते हैं।

''**किं हेयं किमुपादेयं किमन्यत्किं विलक्षणम्। अखण्डानन्द-पीयूषपूर्णब्रह्ममहार्णवे।।**'' (**अध्यात्मोपनिषत् ६६**) आदि उपनिषदोंके अनुशीलनसे आत्मदेव अखण्डानन्द सिद्ध होता है।

आत्मदेव दृश्य और द्रष्टासे निरपेक्ष दृश्य और द्रष्टाके मध्यवर्ती

दर्शनरूप होनेसे विशुद्ध चैतन्यस्वरूप है। वह ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूप त्रिपुटीसे अतीत अखण्ड बोधस्वरूप है। त्रिपुटीके मध्यवर्ती ज्ञानका ज्ञाता आश्रय और ज्ञेय विषय होता है, अत: मध्यवर्ती ज्ञान द्वैतात्मक और परिच्छिन्न होता है। त्रिपुटीगत तीनों सामग्री अन्योन्यसापेक्ष हैं, अत: एकके अभावमें शेष दोकी स्थिति असम्भव है। निरपेक्ष ज्ञानका नाम तत्त्व है। त्रिपुटी उसका अभिव्यञ्जक-संस्थान और अभिव्यक्तरूप है। -

''आत्मनो जगतश्चान्तर्द्रष्टृदृश्यदशान्तरे।।
दर्शनाख्यं स्वमात्मानं सर्वदा भावयन्भव।''
''नित्योदितो निराभासो द्रष्टा साक्षी चिदात्मक:।।''
''चैत्यनिर्मुक्तचिद्रूपं पूर्णज्योति: स्वरूपकम्।
संशान्तसर्वसंवेद्यं संविन्मात्रमहं महत्।।''
(महोपनिषत् ६. ३५, ३५.१/२, ८०,८१)

''आत्माको द्रष्टा, दर्शन और दृश्यरूप त्रिपुटीके मध्यवर्ती दर्शनस्वरूप जानकर सर्वदा उसकी भावना करो अर्थात् स्वयंको द्रष्टारूप आश्रय और दृश्यरूप विषयसे अतीत या निरपेक्ष दर्शनात्मक समझो।।''

''मैं दृश्यसे असंस्पृष्ट चित् संज्ञक पूर्णज्योति:स्वरूप, सर्ववेद्यविनिर्मुक्त महान् संवित् - मात्र हूँ।।''

''शुद्धचेतन एवाहं कलाकलनवर्जित:।
चैत्यवर्जितचिन्मात्रमहमेषोऽवभासक: ।।''
(सन्यासोपनिषत् २०)

''मैं कला तथा कलनासे रहित, सर्वावभासक दृश्यरहित चिद्रूप अतएव शुद्ध चेतनमात्र ही हूँ।।''

''तत: शुद्धश्चिदेवाहं व्योमवन्निरुपाधिक:।
जीवेश्वरादिरूपेण चेतनाचेतनात्मकम्।। ''
(वराहोपनिषत् २ . ५३)

''उपाधिदशामें मलिन सत्त्वगुणप्रधाना प्रकृतिरूपा अविद्याके योगसे जीवरूपसे, विशुद्ध सत्त्वगुणप्रधाना प्रकृतिरूपा मायाके योगसे जगदीश्वररूपसे

और तमःप्रधाना प्रकृतिके योगसे जगत् - संज्ञक अचेतनरूपसे परिलक्षित होता हुआ भी वस्तुतः अन्तःकरण, अविद्या और माया - संज्ञक उपाधियोंसे तथा तत्कृत जीव, जगदीश्वर और जगत् - संज्ञक चेतनाचेतनरूप द्वैत - प्रपञ्चसे सर्वथा अतिक्रान्त घट और मठ - विरहित आकाशसदृश होनेके कारण मैं शुद्ध चिद्धातु ही हूँ।। "

आत्मामें पराकाष्ठाकी प्रीति आत्मदेवको परम प्रमास्पद सिद्ध करती है। परम प्रेमास्पद होनेके कारण आत्मा परमानन्दरूप है। प्रकृति और प्राकृत प्रपञ्चका अधिष्ठान होनेके कारण अद्वितीय है। अद्वितीय होता हुआ परमानन्दस्वरूप होनेके कारण अखण्डानन्दस्वरूप है। शुद्ध सत्त्वके योगसे अभिव्यक्त निजानन्दका आस्वानदक्ष तथा अनात्मरमणनिरपेक्ष होनेके कारण आत्माराम है।

श्लोक : ६

सङ्गतिः - आत्माकी प्रत्यक् - चैतन्यरूपता, शान्तस्वरूपता, प्रकृतिपरता और शाश्वत आनन्दरूपताका प्रतिपादन -

श्लोकः - प्रत्यक्चैतन्यरूपोऽहं शान्तोऽहं प्रकृतेः परः।
शाश्वतानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ।।६।।

सरलार्थः - मैं प्रत्यक् चैतन्य स्वरूप हूँ, शान्त हूँ, प्रकृतिसे पर हूँ, अनश्वर आनन्दस्वरूप मैं ही तो हूँ। निस्सन्देह मैं अव्ययहूँ।।

सारार्थः- **"प्रत्यगात्मेति गीयते" (शुकरहस्योपनिषत् ७), "चिच्चैतन्यस्वरूपोऽहम्"(तेजोबिन्दूपनिषत् ३.३३), "शान्तोऽस्मि" (मैत्रेय्युपनिषत् ३.२४), "अव्यक्तात्पुरुषः परः" (कठोपनिषत् १.३.११), "अव्यक्तात्तु परः पुरुषः" (कठोपनिषत् २. २. ८), "अक्षरात्परतः परः"(मुण्डकोपनिषत् २. १. २), "शाश्वतोऽस्म्यहम्" (तेजोबिन्दूपनिषत् ३.२),"शाश्वतो ह्यजः" (तेजोबिन्दूपनिषत् ३.४८), "शाश्वतानन्दविग्रहः"(तेजोबिन्दूपनिषत् ३.३७)** आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव प्रत्यक्, चैतन्यस्वरूप, शान्त, अक्षर और अव्यक्त - संज्ञक प्रकृतिसे पर तथा शाश्वतानन्दस्वरूप सिद्ध होता है।

देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणसे अतीत तथा प्रतीप (विसदृश) एक, असंहत, अभौतिक, असङ्ग, विभु, निर्गुण, अन्तरात्मा **प्रत्यगात्मा** है।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं च परानन्दं परं ध्रुवम्।
प्रत्यगित्यवगन्तव्यं वेदान्तश्रवणं बुधाः।।"
(श्रीजाबालदर्शनोपनिषत् २.९)

"सत्य, ज्ञान, अनन्त, परमानन्दस्वरूप परम ध्रुव तत्त्वको प्रत्यगात्मा समझना चाहिये। प्रत्यगात्माके इस स्वरूपका निर्धारण ही वेदज्ञ मनीषियोंको वेदान्तसिद्धान्तका श्रवण मान्य है।।"

श्लोक : ६

भास्य - संसर्ग - विमुक्त स्वयं भानस्वरूप आत्मा **चैतन्य** है। द्वैतप्रपञ्चका अधिष्ठानभूत आत्मा **शान्त** है। विभु, एक और अगुण आत्मा **प्रकृतिसे** अतीत है।

प्रकृतिका भी लयस्थल आत्मा प्रकृतिसे भी अतीत है। महाप्रलयमें प्रकृति भी आत्मस्वरूप परमात्मतत्त्वमें लयावस्थाको प्राप्त होती है। अत: वह काष्ठा और परा गति नहीं हो सकती। यह तथ्य अधोलिखित भगवद्वचनोंके अनुशीलनसे सिद्ध है। -

''जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे पृथिव्यप्सु प्रलीयते।
ज्योतिष्यापः प्रलीयन्ते ज्योतिर्वायौ प्रलीयते।।
खे वायुः प्रलयं याति मनस्याकाशमेव च।
मनो हि परमं भूतं तदव्यक्ते प्रलीयते।।
अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मन् निष्क्रिये सम्प्रलीयते।
नास्ति तस्मात्परतरः पुरुषाद् वै सनातनात्।।''

(महाभारत - शान्तिपर्व ३३९. २९ - ३१)

''देवर्षे! जगत् की प्रतिष्ठा पृथिवी है। महाप्रलयकी दशा प्राप्त होनेपर वह जलमें विलीन हो जाती है। जलका तेजमें और तेजका वायुमें विलय होता है।।''

''वायुका आकाशमें लय होता है। आकाश परम भूत अर्थात् भूतादि मनमें विलीन होता है अर्थात् मनके भी उद्गमस्थान अहम् में और अहम् महत् में विलीन होता है तथा महत् अव्यक्तसंज्ञक मूलप्रकृतिमें विलीन होता है।।''

''ब्रह्मन्! अव्यक्तका निष्क्रिय पुरुषमें लय होता है। उस सनातन तत्त्वसे परतर (उत्कृष्ट) अन्य कोई नहीं है।।''

''तदव्यक्तं परं ब्रह्म तच्छाश्वतमनुत्तमम्।
एवं सर्वाणि भूतानि ब्रह्मैव प्रतिसञ्चरः।।''

(महाभारत - शान्तिपर्व २३३. ३७)

''वह पुरुष परब्रह्म, अव्यक्त, सनातन और सर्वोत्तम है। इस प्रकार सब भूत - संज्ञक तत्त्वोंका लय होता है और सबका लयस्थान परब्रह्म परमात्मा ही है।।''

श्लोक : ६

"यत् तत् सूक्ष्मविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम्।
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्वभूतैश्च वर्जितम्।।
स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चेति कथ्यते।
त्रिगुणव्यतिरिक्तो वै पुरुषश्चेति कल्पितः।।
तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तम।
अव्यक्ता व्यक्तभावस्था या सा प्रकृतिरव्यया।।"

(महाभारत - शान्तिपर्व ३३४.२९ - ३१)

"जो सूक्ष्म, अज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है, जो इन्द्रियों, विषयों और सम्पूर्ण भूतोंसे परे है; वही सर्व प्राणियोंका अन्तरात्मा है। अतः क्षेत्रज्ञ नामसे कहा जाता है। वही त्रिगुणातीत तथा पुरुष कहलाता है। उसीसे त्रिगुणमय अव्यक्तकी उत्पत्ति हुई है। द्विजश्रेष्ठ ! उसीको व्यक्तभावमें स्थित , अविनाशिनी प्रकृति कहा गया है।।"

"अचेतना चैव मता प्रकृतिश्चापि पार्थिव।
एतेनाधिष्ठिता चैव सृजते संहरत्यपि।।"

(महाभारत - शान्तिपर्व ३१४. १२)

"राजन्! प्रकृति आत्मचैतन्यसे अधिष्ठित होने कारण चेतन - सरीखी परिलक्षित होनेपर भी स्वरूपतः अचेतन भी मानी गयी है। इस परम तत्त्वद्वारा अधिष्ठित होकर ही वह सृष्टि तथा संहार करती है।।"

"आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः।।"

(श्रीमहाभारत शान्तिपर्व १८७.२३)

"आत्मदेव जब प्राकृत गुणोंसे युक्त होता है, तब उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं और जब उन्हीं गुणोंसे मुक्त हो जाता है, तब परमात्मा कहलाता है।।"

"आत्मानं तं विजानीहि सर्वलोकहितात्मकम्।
तस्मिन् यः संश्रितो देहे ह्यब्बिन्दुरिव पुष्करे।। "

(श्रीमहाभारत शान्तिपर्व १८७.२४)

श्लोक : ६

''तुम उस क्षेत्रज्ञको आत्मा ही समझो। वह **सर्वलोकहितस्वरूप** है। इस शरीरमें रहकर भी वह कमलपत्रपर पड़े हुए जलबिन्दुकी तरह वास्तवमें इससे असङ्ग ही है।।"

''क्षेत्रज्ञं तं विजानीहि नित्यं लोकहितात्मकम्।
तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि जीवगुणानिमान्।।"

(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व १८७.२५)

''तुम उस क्षेत्रज्ञको आत्मा ही समझो। वह सदा **सर्वलोकहितस्वरूप** है। तमस्, रजस् और सत्त्व -संज्ञक प्राकृत गुणोंमें संसर्गवश ही वह त्रिगुणात्मक परिलक्षित है।।"

''न जीवनाशोऽस्ति हि देहभेदे मिथ्यैतदाहुर्मृत इत्यबुद्धाः।
जीवस्तु देहान्तरितः प्रयाति दशार्द्धतैवास्य शरीरभेदः।।''

(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व १८७.२७)

''देहका नाश होनेपर भी जीवका नाश नहीं होता। जो जीवकी मृत्यु बताते हैं, उन अज्ञोंका कथन मिथ्या है। अविद्या, काम और कर्मके योगसे जीव देहान्तरको प्राप्त करता है, अतः देहभेदसे जीवका नाश और भेद असिद्ध ही है। वस्तुतः पञ्चत्वको प्राप्त होना ही देहका भी नाश है, तत्त्वतः तो उसका नाश भी असङ्गत ही है। कारणभावापन्नतारूप नाश वस्तुतः अनाश ही है ।।''

श्लोक : ७
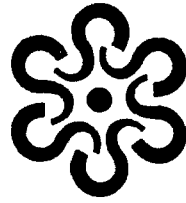
सङ्गति: - आत्माकी तत्त्वातीतता, मध्यातीतता, मायातीतता, परात्मरूपता, परम शिवरूपता और परम ज्योति:स्वरूपताका प्रतिपादन -

श्लोक : -तत्त्वातीत: परात्माऽहं मध्यातीत: पर: शिव:।
मायातीत: परञ्ज्योतिरहमेवाहमव्यय:।।७।।

सरलार्थ: - मैं तत्त्वातीत परात्मा हूँ, मध्यातीत परशिव हूँ, मायासे अतीत , आधिभौतिक - आध्यात्मिक और आधिदैविक ज्यातियोंसे विलक्षण तमस् से सर्वथा सुदूर परम ज्योति: स्वरूप मैं ही हूँ, मैं सर्वथा देशकृत, कालकृत और वस्तुकृत परिच्छेद - शून्य अनश्वर ही हूँ।।

सारार्थ: - "**तत्त्वजातानां वैलक्षण्यमनामयम्**" (**वराहोपनिषत् १.१५**), "**शोधितपरतत्त्वोऽहम्**" (**आत्मप्रबोधोपनिपषत् १०**) के अनुशीलनसे आत्मदेव तत्त्वातीत शोधित परतत्त्व सिद्ध होता है। "**पुरुष: परमात्माऽहम्**" (**ब्रह्मविद्योपनिषत् ९९**), "**परात्माऽहम्**" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ४.१**) के अनुशीलनसे आत्मदेव परात्मा सिद्ध होता है। "**आदिमध्यान्तहीनोऽस्मि**" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ३.१०**), "**आदिमध्यान्तहीनोऽहम्**" (**ब्रह्मविद्योपनिषत् ९१**) के अनुशीलनसे आत्मदेव आदि, मध्य और अन्तहीन अतएव मध्यातीत सिद्ध होता है। "**अहमेव सदाशिव:**" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ६.६४**), "**शिवोऽस्म्यहम्**" (**ब्रह्मविद्योपनिषत् १०४**), "**निर्गुणोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम्**" (**मैत्रेय्युपनिषत् ३.४**), "**परमात्मास्म्यहं शिव:**" (**मैत्रेय्युपनिषत् १२**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव पर शिवस्वरूप सिद्ध होता है। "**तमस: परस्तात्**" (**कैवल्योपनिषत् ७**), "**प्रकृते: साक्षिरूपक:**" (**सर्वसारोपनिषत् ३**), "**न मे माया**" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ४.८**), "**न माया प्रकृतिर्जडा**" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ६.२०**), "**अमायोऽनुभवात्माहमनन्योऽविषयोऽस्म्यहम्**"

(**ब्रह्मविद्योपनिषत् ८७**), "**मायातीतोऽहमद्वयः**" (**आत्मप्रबोधोपनिषत् ११**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव मायातीत सिद्ध होता है। "**आत्मज्योती रसोऽस्म्यहम्**" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ३. १०**), "**स्वयञ्ज्योतिः सर्वाधिपतिरस्म्यहम्**" (**ब्रह्मविद्योपनिषत् १०६**), "**भारूपोऽहम्**" (**ब्रह्मविद्योपनिषत् १०२**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव स्वयज्योतिःस्वरूप सिद्ध होता है।

वाक्, कर, चरण, पायु, उपस्थ - ये पञ्च कर्मेन्द्रिय हैं। श्रोत्र, त्वक, नेत्र, रसन, नासिका - ये पञ्च ज्ञानेन्द्रिय हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान -ये पञ्च प्राण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध - ये पञ्च तन्मात्रा और पञ्च विषय हैं। मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त - ये अन्तःकरणचतुष्टय हैं। उक्त रीतिसे **चौबीस तत्त्व** हैं। इनके अतिरिक्त आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी - ये पञ्चीकृत स्थूल **पञ्चभूत** हैं। स्थूल, सूक्ष्म और कारण - **तीन शरीर** हैं। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति - **तीन अवस्था** हैं। अस्ति, जायते, वर्धते, परिणाम, क्षय, नाश - ये **षड्भावविकृति** हैं। अशना (भूख), पिपासा (प्यास), शोक, मोह, जन्म और मृत्यु - ये **षडूर्मि** हैं। स्थूल शरीर षाट्कौशिक (छह काशों वाला) है। त्वक्, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि - ये **षट् कोश** हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य - ये **षड् - ऋपु** हैं। विश्व, तैजस और प्राज्ञ - ये **जीवत्रय** हैं। सत्त्व, रजस् और तमस् - ये **त्रिगुण** हैं। प्रारब्ध, आगामि और अर्जित (सञ्चित) - ये **कर्मत्रय** हैं। वचन, आदान, गमन, आनन्द और विसर्ग - ये कर्मेन्द्रियोंसे निष्पन्न **पञ्च क्रिया** हैं। सङ्कल्प, अध्यवसाय (निश्चय), अभिमान और अवधारणा - ये अन्तःकरण चतुष्टयसे निष्पन्न **प्रत्ययचतुष्टय** हैं। मुदिता, करुणा, मैत्री और उपेक्षा - ये **भावचतुष्टय** हैं। दिक्, वात, अर्क (सूर्य), प्रचेता (वरुण), अश्विनीकुमार (नासत्य, दस्र), वह्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मृत्यु, चन्द्र, ब्रह्मा, रुद्र, क्षेत्रज्ञरूप ईश्वर- ये क्रमशः ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन, बुद्धि, अहङ्कार, चित्त तथा ज्ञातृत्व- संज्ञक अन्तःकरण चतुष्टयके **चौदह अधिदैव** हैं।

श्लोक : ७

त्वमर्थ और तदर्थका (जीवेश्वरका) शोधितार्थ उक्त ९६ तत्त्वोंसे अतीत है। -

"आहत्य तत्त्वजातानां षण्णवत्यस्तु कीर्तिता:।
पूर्वोक्त तत्त्वजातानां वैलक्षण्यमनामयम्।।
वराहरूपिणं मां ये भजन्ति मयि भक्तित:।
विमुक्ताज्ञानतत्कार्यां जीवन्मुक्ता भवन्ति ते।।
ये षण्णवतितत्त्वज्ञा यत्र कुत्राश्रमे रता:।
जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशय:।।"

(वराहोपनिषत् १.१५ - १७)

"निगमागमसम्मत पूर्वोक्त छियानबे तत्त्व विभागपूर्वक परिगणित हैं। इनमें सोपाधिक भूमिमें क्षेत्रज्ञ और ईश्वररूपसे तथा निरुपाधिक भूमिमें सर्वाधिष्ठान सच्चिदान्दस्वरूप ब्रह्मरूपसे जो मुझ वराहरूप सर्वेश्वरका भक्तिसहित भजन करते हैं, वे अज्ञान और उसके कार्योसे विमुक्त होकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं। निस्सन्देह जो इन ९६ तत्त्वोंको यथावत् जानते हैं, वे जिस किसी आश्रममें सन्निहित हों, जटी, मुण्डी अथवा शिखी ही क्यों न हों, अवश्य ही मुक्त होते हैं।।"

आत्मदेव ब्रह्म, परमात्मा , भगवान्, क्षेत्रज्ञ, तुरीयादि नामोंसे प्रसिद्ध है। वह अद्वय ज्ञानस्वरूप होनेसे तत्त्व है। वह साङ्ख्यसम्मत कार्य, करण और कर्तृत्वरूप अचित् चौबीस तथा पुरुषसंज्ञक पचीसवें तत्त्वसे भी सर्वक्षा विलक्षण है। कारण यह है कि वह सर्वथा अगुण, निष्परिणाम,आगन्तुक तथा अनागन्तुक संयोग और वियोगसे रहित, एक और अद्वय विज्ञानस्वरूप सर्वाधिष्ठान सर्वातीत है। आत्मदेव योगसम्मत पुरुषविशेषसे भी अतीत है। कारण यह है कि वह जगत् का अभिन्न निमित्तोपादानकारण सर्वाधिष्ठान साक्षात् अपरोक्ष सर्वस्वरूप सर्वात्मा है। आत्मदेव वैशेषिक और न्यासम्मत पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, दिक्, काल, आत्मा और मनोरूप नौ द्रव्योंसे, इच्छादि गुणोंसे, सर्वविध कर्मोंसे ,तद्वत् सामान्य, विशेष और चतुर्विध अभावोंसे सर्वथा विलक्षण है। कारण यह है कि वह नित्य, निर्गुण, निष्क्रिय, विभु, एक, सर्वाधिष्ठान, निष्परिणाम,

श्लोक : ७

निरवद्य,निर्विकल्प, सर्वोपादान, स्वप्रकाश, निर्भेद, निष्कल, देशकृत - कालकृत - वस्तुकृत त्रिविध परिच्छेद - शून्य और परम भावरूप सनातन अव्यक्त है। वह सत्तासामान्यके योगसे सत् नहीं, अपितु स्वतः सत् है। ज्ञाननामक गुणके योगसे चित् नहीं, अपितु स्वतः चित् है। वह सुखनामक गुणविशेषके योगसे सुख नहीं, अपितु स्वतः आनन्द है। -

"नित्योऽहं निरवद्योऽहं निष्क्रियोऽस्मि निरञ्जनः।
निर्मलो निर्विकल्पोऽहं निराख्यातोऽस्मि निश्चलः।।
निर्विकारो नित्यपूतो निर्गुणो निस्स्पृहोऽस्म्यहम्।
निरिन्द्रियो नियन्ताहं निरपेक्षोऽस्मि निष्कलः।।
पुरुषः परमात्माऽहं पुराणः परमोऽस्म्यहम्।
परावरोऽस्म्यहं प्राज्ञः प्रपञ्चोपशमोऽस्म्यहम्।।"

(ब्रह्मविद्योपनिषत् ९७ - ९९)

"सच्चिदानन्दमात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्घनः।
सत्त्वस्वरूपसन्मात्रसिद्धसर्वात्मकोऽस्म्यहम् ।।"

(ब्रह्मविद्योपनिषत् १०९)

उक्तरीतिसे आत्मदेव नित्य, निरवद्य, निष्क्रिय, निरञ्जन, निर्मल, निर्विकल्प, निर्गुण, निःस्पृह, निरिन्द्रिय, नियन्ता, निरपेक्ष, निष्कल, पुरुष, परमात्मा, पुराण, परम, परावर (कार्यकारणातीत, कार्यकारणात्मक), प्राज्ञ और प्रपञ्चोपशम (अनात्मप्रञ्चसे अतीत), सच्चिदानन्दघन होनेके कारण ही चार्वाक, बौद्ध, जैन, वैशेषिक, न्याय, साङ्ख्य, योग, मीमांसा और शैवादिसम्मत सर्व तत्त्वोंसे विलक्षण और अतीत है। वह नित्य, सर्वगत और सर्वात्मा होनेके कारण कालकृत, देशकृत तथा वस्तुकृत परिच्छेद (सीमा, सङ्कीर्णता) से शून्य है। -

"कालभेदं वस्तुभेदं देशभेदं स्वभेदकम्।।
किञ्चिद्भेदं न तस्यास्ति किञ्चिद्वापि न विद्यते।"

(तेजोबिन्दूपनिषत् ४. ४१, ४१.१/२)

श्लोक : ७

आत्मा आदि, मध्य, अन्तसे रहित अनादि, अमध्य और अनन्त है। सोपाधिक भूमिमें प्रमाता, प्रमाण और प्रमेयरूपा त्रिपुटीके मध्यवर्ती प्रमाणसे अतीत प्रमाता है। प्रमाता प्रमाणसे प्रमेयको परिच्छिन्न करता है, अतः अप्रमेय होता है।

उक्त रीतिसे आत्मदेव तत्त्वातीत, परात्मा, अनादि, अमध्य, अनन्त, परम शिवस्वरूप, परम ज्योतिः स्वरूप मायातीत और अव्यय है।

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
श्लोक : ८
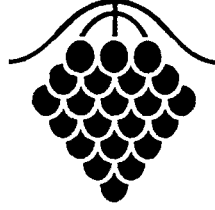
सङ्गति: - आत्मदेवकी विविधरूपोंसे परता, चिदाकारता, अच्युतरूपता और सुखस्वरूपताका निरूपण -

श्लोक: -**नानारूपव्यतीतोऽहं चिदाकारोऽहमच्युत**: ।
सुखरूपस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्यय: ।।८।।

सरलार्थ: -मैं घट, पट, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्रादि विविध रूपोंसे अतीत, चिदाकार, अच्युत हूँ। सुखस्वरूप और अव्ययरूप मैं ही हूँ।।

सारार्थ: - "**रूपातीतस्वरूपोऽस्मि**" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ३.१२**), "**अरूपोऽस्म्यहमव्यय**:" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ३.२८**), "**चिदाकार-स्वरूपोऽस्मि**" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ३.४३**), "**परमात्माहमच्युत**:" (**महोपनिषत् ५.८९**),"**अहमेव सुखात्मक**:" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ३.३४**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव विविध रूपोंसे अतीत, चिदाकार, अच्युत, सुखरूप और अव्ययस्वरूप सिद्ध होता है।

आत्मा नील, पीतादि - रूपोंसे सर्वथा अतीत अर्थात् नीरूप है। वह शब्दसंवेद्य घट, पट, पृथिव्यादि रूप - संज्ञक वस्तुओंसे भी सर्वथा अतीत है। क्यों न हो, वह दृश्यातीत सद्रूप, चित्स्वरूप है। अतएव स्वरूपवैभवसे अप्रच्युत स्वप्रकाश सुखरूप और अव्यय है।

अभिप्राय यह है कि नश्वर रूपोंसे अतीत आत्मतत्त्व सत् है। भास्यवर्गसे अतीत आत्मा चित्स्वरूप है। आभासमात्र अनात्मप्रपञ्चसे अतीत आत्मा दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंसे अतीत सुखरूप है। आत्मस्वरूपमें अध्यस्त असच्चिदानन्दात्मक जगत् से अतीत आत्मा अव्यय है।

ब्रह्मकी साक्षात् अपरोक्षता आत्मरूपसे ही सम्भव है। आत्माकी साक्षात् विभुता ब्रह्मरूपसे ही सम्भव है। ब्रह्मात्मतत्त्वकी अद्वितीय अव्ययरूपता माया और मायिक प्रपञ्चकी उसमें अध्यस्ततासे ही सम्भव है।

श्लोक : १

सङ्गति: - आत्माकी माया और उसके कार्य देहादिसे सर्वदा रहितता तथा स्वप्रकाश अव्ययरूपताका निरूपण -

श्लोक: - मायातत्कार्यदेहादि मम नास्त्येव सर्वदा।
स्वप्रकाशैकरूपोऽमहमेवाहमव्यय: ।।१।।

सरलार्थ: - माया और उसके महत्, अहम्, शब्दादि - तन्मात्रपञ्चक , आकाशादि पञ्चभूत, मन, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्चप्राण और स्थूलदेहरूप कार्य सर्वदा मेरे नहीं हैं। मैं इनसे सर्वथा अतीत, असङ्ग, अद्वय स्वप्रकाशस्वरूप हूँ। मैं ही अव्यय ब्रह्मस्वरूप हूँ।।

सारार्थ: - **"न मे माया"** (तेजोबिन्दूपनिषत् ४.८) **"न मे किञ्चित्क्वचिज्जगत्"** (तेजोबिन्दूपनिषत् ४. ९),**"मायाकार्यादिकं नास्ति माया नास्ति भयं नहि।"** (तेजोबिन्दूपनिषत् ५.३३), **"न देहादित्रयोऽस्म्यहम्"** (तेजोबिन्दूपनिषत् ३.४५), **"स्वयञ्ज्योति: सर्वाधिपतिरस्म्यहम्"** (ब्रह्मविद्योपनिषत् १०६), **"भारूपोऽहम्"** (ब्रह्मविद्योपनिषत् १०२), **"स्वप्रकाशोऽसङ्ग:"** (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ५), **"अमायोऽनुभवात्माहम्"** (ब्रह्मविद्योपनिषत् ८७) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव माया और उसके कार्य देहादि अनात्मप्रपञ्चसे अतीत, असङ्ग और स्वप्रकाश सिद्ध होता है।

जो किसी अन्यसे प्रकाशित न हो, स्वयं भी स्वयंसे प्रकाशित न हो,स्वेतर सबका अवभासक हो, अवभासनक्रियाका कर्तृत्व भी जिसमें '**सविता प्रकाशते**' के तुल्य उपचरित हो, वह स्वप्रकाश है। अभिप्राय यह है कि जो अवेद्य होता हुआ अपरोक्ष हो, स्वर्ग और अपूर्वादिके तुल्य तादृक् (वैसा) और घट - पटादिके तुल्य ईदृक् (ऐसा) - इन्द्रियजन्य ज्ञानका विषय न हो, वह साक्षात् - अपरोक्ष स्वप्रकाश है। वह स्वत: वेत्ता और अन्त:करणादिसंश्लिष्ट विशिष्टरूपसे वेद्य भी अमान्य है। आत्मदेव स्वप्रकाश होनेके कारण अनुभाव्य (अनुभवका विषय) नहीं है ; परन्तु वह बन्ध्यापुत्रके सदृश असत् भी नहीं है।

श्लोक : १०

सङ्गति: - आत्माकी गुणत्रयसे अतीतता, सर्वसाक्षिस्वरूपता और अनन्तानन्दरूपताका प्रतिपादन -

श्लोक: - गुणत्रयव्यतीतोऽहं ब्रह्मादीनां च साक्ष्यहम्।
अनन्तानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्यय: ॥१०॥

सरलार्थ: - मैं गुणत्रयसे सर्वथा अतीत हूँ। मैं ब्रह्मादिका साक्षी हूँ। अनन्तानन्दरूप मैं हूँ। मैं अव्यय हूँ।।

सारार्थ: -**''निर्गुणोऽस्मि'' (मैत्रेय्युपनिषत् ३.४),''अहमेव गुणातीत अहमेव परात्पर:'' (तेजोबिन्दूपनिषत् ६. ४४)** आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव त्रिगुणातीत निर्गुण सिद्ध होता है।

''चक्षुषो द्रष्टा, श्रोत्रस्य द्रष्टा, वाचो द्रष्टा, मनसो द्रष्टा, बुद्धेर्द्रष्टा, प्राणस्य द्रष्टा, तमसो द्रष्टा, सर्वस्य द्रष्टा, तत: सर्वस्मादन्यो विलक्षणश्चक्षुष: साक्षी, श्रोत्रस्य साक्षी, वाच: साक्षी, मनस: साक्षी, बुद्धे: साक्षी, प्राणस्य साक्षी, तमस: साक्षी , सर्वस्य साक्षी'' (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् २), ''प्रकृते: साक्षिरूपक:'' (सर्वसारोपनिषत् ३) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव ब्रह्मादि देवशिरोमणियों और प्रकृति तथा महदादि तत्त्वोंका साक्षी सिद्ध होता है।

''सद्घनोऽयं चिद्घन आनन्दघन एवैकरस:'' (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ९), ''सर्वप्रेमास्पदं सच्चिदानन्दमात्रमेकरसम्'' (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ५), ''नित्यानन्दं सदेकरसम् '' (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् २), ''सर्वस्मात्प्रियतम आनन्दघनम्'' (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् २) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव अनन्त आनन्दस्वरूप सिद्ध होता है ।

श्लोक : १०

त्रिगुण अचित् हैं। आत्मा चित् है,अतः त्रिगुणातीत है। वह पार्थिव पुष्पादिसे त्रिगुणपर्यन्त सर्व अनात्म - प्रपञ्चका असङ्ग साक्षी है। वह सर्वाधिक और एकमात्र परमप्रेमास्पद है, अतः परमानन्दस्वरूप है। उसके विज्ञानसे सकल भास्यवर्गका रज्जुविज्ञानसे सर्पादिके बाधतुल्य बाध सुनिश्चित है। अतः वह अद्वय अव्ययात्मा है।

"लोहयुक्तं यथा हेम विपक्वं न विराजते।
तथापक्वकषायाख्यं विज्ञानं न प्रकाशते।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २१२.६)

"जैसे लोहयुक्त सुवर्ण आगमें पकाकर शुद्ध किये बिना अपने स्वरूपसे प्रकाशित नहीं होता, वैसे ही चित्तके रागादिदोषोंका नाश हुए बिना उसमें ज्ञानस्वरूप आत्मा प्रकाशित नहीं होता।।"

"चित्तस्य हि प्रसादेन हित्वा कर्म शुभाशुभम्।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमानन्त्यमश्नुते।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व १८७.३०)

"चित्त शुद्ध होनेपर वह शुभाशुभ कर्मोंसे अपना सम्बन्ध हटा कर प्रसन्नचित्त हो, आत्मस्वरूपमें स्थित हो जाता है अर्थात् अनात्मवस्तुओंसे विविक्त आत्ममात्र होकर अवशिष्ट रहता है और परमानन्दस्वरूप होता हुआ अनन्त आनन्दका अनुभव करता है।।"

"शरीरपक्तिः कर्माणि ज्ञानं तु परमा गतिः।
कषाये कर्मभिः पक्वे रसज्ञाने च तिष्ठति।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २७०.३८)

"कर्म स्थूल और सूक्ष्म शरीरकी शुद्धि करनेवाले हैं, परन्तु ज्ञान परम गतिरूप है। जब कर्मोंद्वारा चित्तके रागादि दोष पककर दग्ध होने योग्य हो जाते हैं, तब योगी रसरूप ज्ञानमें स्थित हो जाता है।।"

"ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः।
यथादर्शतले प्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि।।
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २०४.८)

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
श्लोक : १०

"पाप कर्मोंका क्षय होनेसे ही, अर्थात् दुरितमूलक मल और विक्षपके निवृत्त होनेपर ही मनुष्योंके अन्तःकरणमें ज्ञानका उदय होता है। जैसे निर्मल और निश्चल दर्पणमें ही व्यक्ति अपने मुखचन्द्रका स्फुट दर्शन कर पाता है, वैसे ही शुद्ध और समाहित चित्तपर ही साधक ज्ञानदृष्टिसे अनात्मवस्तुओंसे विविक्त आत्मतत्त्वका अधिगम कर पाता है।।"

"बीजान्यग्न्युपदग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा सम्पद्यते पुनः।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २११.१७)

"जैसे आगसे भूने हुए बीज नहीं उगते, वैसे ही ज्ञानाग्निसे अविद्यादि सर्वक्लेशोंके दग्ध हो जानेपर जीवात्मा पुनर्जन्म नहीं प्राप्त करता।।"

श्लोक : ११
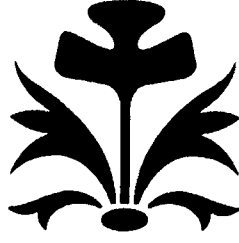
सङ्गति: - आत्माकी अन्तर्यामिस्वरूपता, कूटस्थरूपता, सर्वव्यापकता और परमात्मस्वरूपताका प्रतिपादन -

श्लोक: -अन्तर्यामिस्वरूपोऽहं कूटस्थ: सर्वगोऽस्म्यहम्।
परमात्मस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्यय: ।।११।।

सरलार्थ:: - मैं अन्तर्यामिस्वरूप हूँ। मैं कूटस्थ और सर्वव्यापक हूँ। परमानन्दस्वरूप मैं ही हूँ। मैं अव्यय हूँ।।

सारार्थ: -"एष त आत्मान्तर्याम्यमृत:" (बृहदारण्यकोपनिषत् ३.७.३), "सर्वान्तर्यामिरूपात्मा" (तेजोबिन्दूपनिषत् ४.६३), "सर्वान्तर्यामिरूपोऽहम् " (तेजोबिन्दूपनिषत् ६. ६६), "अन्तर्याम्यहम्" (ब्रह्मविद्योपनिषत् ८४), "अन्तरान्तररूपोऽहमवाङ्मनसगोचर:' (तेजोबिन्दूपनिषत् ३.८), " कूटस्थचैतन्योऽहम्" (आत्मप्रबोधोपनिषत् ५),"विभुरहमनवद्योऽहं निरवधिनि:-सीमतत्त्वमात्रोऽहम्" (आत्मप्रबोधोपनिषत् ७), "सर्वग:" (महोपनिषत् ५.९९), "सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगत: स्मृत:" (श्वेताश्वतरोपनिषत् ३.११), "परमात्मास्म्यहं शिव: " (मैत्रेय्युपनिषत् ३.१२) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव सर्वान्तर्यामी, कूटस्थचैतन्य, निरवधि नि:सीम विभु और परमात्मस्वरूप सिद्ध होता है।

"तयोर्व्यष्टिसमष्टिता" (पञ्चदशी १. २४) की दृष्टिसे पिण्ड और ब्रह्माण्ड तथा व्यष्टि तथा समष्टिकी एकरूपता है। अत: विश्व और वैश्वानरकी, तैजस और हिरण्यगर्भकी, प्राज्ञ और अन्तर्यामीकी तथा तुरीयसंज्ञक कूटस्थ और ब्रह्मकी एकरूपता है। कारण और सूक्ष्म - भावापन्न व्यष्टि स्थूलोपाधिक चिद्धातु विश्व एवम् समष्टि - स्थूलोपाधिक चिद्धातु

वैश्वानर है। कारण - भावापन्न व्यष्टि सूक्ष्मोपाधिक चिद्धातु तैजस एवम् समष्टि - सूक्ष्मोपाधिक चिद्धातु हिरण्यगर्भ है। व्यष्टि कारण - भावापन्न चिद्धातु प्राज्ञ एवम् समष्टि कारणोपाधिक चिद्धातु सर्वेश्वररूप अन्तर्यामी है। विश्व, तैजस और प्राज्ञ - साक्षी तुरीय तथा वैश्वानर, हिरण्यगर्भ और सर्वान्तर्यामिरूप - साक्षी ब्रह्म है। अभिप्राय यह है कि सर्वविवर्तोपादानरूप सर्वाधिष्ठान सर्वातीत निरुपाधिक चिद्धातु तुरीयरूप कूटस्थ ब्रह्म है। अथवा सूर्य और चुम्बकतुल्य आत्मदेवके सान्निध्यमात्रसे प्रकृति आदिका नियमन और प्रकाशन सम्भव होनेके कारण आत्मा सर्वान्तर्यामी है।

श्लोक : १२
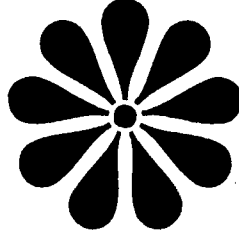
सङ्गति:- आत्मदेवकी निष्कलता, निष्क्रियता, सर्वात्मरूपता, आद्यरूपता, सनातनता और अपरोक्षस्वरूपताका प्रतिादन -

श्लोक: -निष्कलोऽहं निष्क्रियोऽहं सर्वात्माऽऽद्य: सनातन: ।
अपरोक्षस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्यय: ।।१२।।

सरलार्थ:- मैं कार्य और करणरूप कलाविहीन निष्कल अर्थात् निरवयव हूँ। मैं निष्क्रिय हूँ। मैं सर्वात्मा, सर्वकारणात्मक अजस्वरूप आद्य तथा सनातन हूँ। मैं अपरोक्षस्वरूप हूँ। मैं अव्यय ही हूँ।।

सारार्थ: - **''निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् '' (श्वेताश्वतरोपनिषत् ६.१९),''निष्कलं निर्मलं शान्तं तद् ब्रह्माहमितिस्मृतम् '' (ब्रह्मबिन्दूपनिषत् २१), ''निरपेक्षोऽस्मि निष्कल:'' (ब्रह्मविद्योपनिषत् ९८), ''निष्क्रियोऽस्म्यविकारोऽस्मि निष्कलोऽस्मि निराकृति: ।।'' (कुण्डिकोपनिषत् २५),''यत्सत्यं विज्ञानमानन्दं निष्क्रियं निरञ्जनं सर्वगतं सुसूक्ष्मं सर्वतोमुखमनिर्देश्यममृतमस्ति तादिदं निष्कलं रूपम् ।'' (शाण्डिल्योपनिषत् ३.१),''निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम्'' (योगशिखोपनिषत् १.५),''निर्गुणं निष्क्रियं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम्'' (अध्यात्मोपनिषत् ६२)** आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव निष्कल और निष्क्रिय सिद्ध होता है। **''सर्वात्मकोऽहं सर्वोऽहं सर्वातीतोऽहमद्वय: ।'' (कुण्डिकोपनिषत् २६)** आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव सर्वात्मा और सर्वरूप सिद्ध होता है। **''संवेद्यवर्जितमनुत्तममाद्यमेकं संवित्पदम् ..'' (अन्नपूर्णोपनिषत्**

४.९१), "**ईड्यो महेशो भगवानादिदेवः**" (**शरभोपनिषत् १९**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे शिवात्मतत्त्वका आद्यत्व सिद्ध होता है। "**सनातनमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म**" (**पैङ्गलोपनिषत् १**) के अनुशीलनसे आत्मदेव सनातन सिद्ध होता है। "**यदेव साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म**" (**बृहदारण्यकोपनिषत् ३. ५**) के अनुशीलनसे आत्मदेव साक्षात् - अपरोक्ष ब्रह्म सिद्ध होता है। जीव और ब्रह्मकी एकरूपता है। सर्वविवर्तोपादानरूप सर्वाधिष्ठान सर्वातीत निरुपाधिक चिद्धातु तुरीयरूप कूटस्थ ब्रह्म है।

आत्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्दस्वरूप कार्यकारणातीत सर्वकारण साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है। वह निरंश, निरवयव, अपरिच्छिन्न अखण्ड विज्ञानस्वरूप सर्वरूप, सर्वातीत सर्वात्मा है।

श्लोक : १३
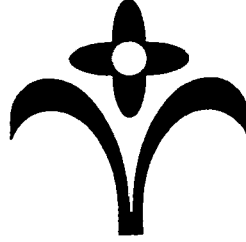
सङ्गति: - आत्माकी द्वन्द्वादिसाक्षिरूपता, अचल, सनातन सर्वसाक्षिस्वरूपताका प्रतिपादन -

श्लोक: - द्वन्द्वादिसाक्षिरूपोऽहमचलोऽहं सनातनः।
सर्वसाक्षिस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥१३॥

सरलार्थ: - शीत - उष्ण, भूख - प्यास, हानि - लाभ, मान - अपमान — आदि द्वन्द्वोंका मैं साक्षिरूप हूँ। मैं अचल और सनातन सत्य हूँ। अचित् , परार्थ, भास्यरूप सर्व अनात्मप्रपञ्चका अलिप्त अधिष्ठानभूत साक्षी अव्ययात्मा मैं ही हूँ।।

सारार्थ: - "**समस्तसाक्षी सर्वात्मा**" (**ब्रह्मविद्योपनिषत् १०७**), "**कूटस्थमचलं ध्रुवम्**" (**त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ७**), "**अहमस्मि सनातनः**" (**ब्रह्मविद्योपनिषत् १०५**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव सर्वसाक्षी, अचल और सनातन सिद्ध होता है।

सर्वसाक्षी, अचल और सनातन आत्मा विभु , अज, निर्विशेष, निर्गुण, निरवयव, विज्ञानस्वरूप होनेसे सर्वतोभावेन अव्यय है। उसकी असङ्गता और अद्वयरूपता सदा अकुण्ठित है। अविद्या, काम और कर्मकी भी उसमें गति नहीं है। कारण यह है कि वह अखण्ड विज्ञानघन, आनन्दघन और निर्विकार तथा निष्क्रिय है। अखण्ड विज्ञानानन्द निर्विकार तथा निष्क्रिय होनेके कारण आत्मदेव **अव्यय** है।

आत्माकी अव्ययरूपता, सनातनता और सर्वसाक्षिस्वरूपताका पुनः -पुनः प्रतिपादन अभ्यासरूप होनेके कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है। ग्रन्थकारका तात्पर्य आत्माकी नित्यता, निर्विकारता, नीरूपता, सर्वातीत सर्वरूपता, असङ्गता और विज्ञानघनताके प्रतिपादनमें सन्निहित है।

आत्मतत्त्वके निदिध्यासनसे असम्भावना, संशय और विपर्ययरहित आत्मनिष्ठा सम्भव है। आत्मनिष्ठासे जीवन्मुक्ति सम्भव है। कृत कर्त्तव्य, प्राप्त प्राप्तव्य और ज्ञात ज्ञातव्य जीवन्मुक्तके लोकोत्तर आह्लादकी स्फूर्ति ब्रह्मज्ञानावलीमालाके माध्यमसे ध्यातव्य है। ❋

सङ्गति: - प्रज्ञानघन, विज्ञानघन, अकर्त्ता, अभोक्ता और अव्यय आत्माका प्रतिपादन -

श्लोक : - प्रज्ञानघन एवाहं विज्ञानघन एव च।
अकर्त्ताऽहमभोक्ताऽहमहमेवाहमव्यय:।।१४।।

सरलार्थ: - मैं प्रज्ञानघन ही हूँ और विज्ञानघन मैं ही हूँ। मैं अकर्ता और अभोक्ता हूँ। मैं ही अव्यय हूँ।।

सारार्थ: - ''प्रज्ञानघनमानन्दं ब्रह्मास्मीति विभावयेत्'' (अक्ष्युपनिषत् ४९), ''प्रज्ञानघनमानन्दं य: पश्यति स पश्यति'' (जाबालदर्शनोपनिषत् ४.६०), ''प्रज्ञानं ब्रह्म'' (ऐतरेयोपनिषत् ३.५.३), ''अनन्तमपारं विज्ञानघन एव'' (बृहदारण्यकोपनिषत् २.४.१२), ''विज्ञानघन एवास्मि'' (स्कन्दोपनिषत् १), ''विज्ञानघनस्वरूपमनन्तचिदादित्यसमष्ट्याकारं शिवाद्वैतोपासका भजन्ते'' (सिद्धान्तसारोपनिषत् ६.१), ''सद्घनोऽयं चिद्घन आनन्दघन एवैकरस:'' (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ८), ''अकर्त्ताहमभोक्ताहमविकारोऽहमव्यय:'' (अध्यात्मोपनिषत् ६९) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव प्रज्ञानघन, विज्ञानघन और अकर्ता तथा अभोक्ता सिद्ध होता है।

अविक्रिय विज्ञानघन और आनन्दघन आत्मामें कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व असम्भव है। स्वयंकी अद्वितीय आनन्दरूपताके बोधसे सुखोपलधिके निमित्त भी कर्मोंमें प्रीति तथा प्रवृत्ति असम्भव है।

माण्डूक्यादि उपनिषदोंमें प्राज्ञकी प्रज्ञानघनतारूप घनप्रज्ञताका भी उल्लेख है। अत: सोपाधिक भूमिमें घनीभूता प्रज्ञाकी उपाधिसे आत्मा प्रज्ञानघन

है । परन्तु निरुपाधिक भूमिमें स्वरूपवैभवके कारण ही आत्मा स्वतः प्रज्ञानघन है।

सत्त्वगुणके उत्कर्षसे शान्ता नामकी मनोवृत्ति आत्माकी चिद्रूपता और आनन्दरूपताको अभिव्यक्त करती है। सत्त्वात्मिका वृत्ति स्वतः चित्स्वरूप और सुखरूप नहीं होती।

अभिव्यङ्ग्यकी अभिव्यक्ति अभिव्यञ्जकके अधीन होती है। अभिव्यञ्जकके तारतम्यसे अभिव्यङ्ग्यकी अभिव्यक्तिमें तारतम्य होता है। परन्तु अभिव्यञ्जक ही अभिव्यङ्ग्य नहीं होता।
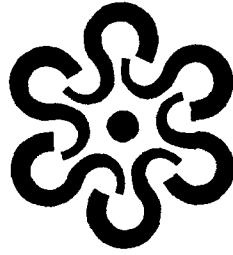
सङ्गतिः - आत्माकी निराधारस्वरूपता, सर्वाधाररूपता, आप्तकामस्वरूपता और अव्ययरूपताका प्रतिपादन -

श्लोकः - निराधारस्वरूपोऽहं सर्वाधारोहमेव च।
आप्तकामस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः।।१५।।

सरलार्थः -मैं निराधारस्वरूप हूँ और मैं ही सर्वाधार हूँ । मैं आप्तकामस्वरूप हूँ । मैं ही अव्यय हूँ ।।

सारार्थः - ''**निरवयवं निराधारं निर्विकारं निरञ्जनमनन्तं ....निर्मलं निरवद्यं निराश्रयम्**'' (**त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ७**), ''**आधारं सर्वभूतानामनाधारमनामयम्। अप्रमाणमनिर्देश्यमप्रमेय-मतीन्द्रियम्।।**'' (**योगशिखोपनिषत् ३.१८**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मदेव निराधार और सर्वाधार सिद्ध होता है। ''**सोऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवलीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति**'' (**नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ५**) के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध होता है कि आत्मज्ञ आत्मनिष्ठ आप्तकाम, परम निष्काम होते हैं। देहपातके अनन्तर उनके प्राणादि पुर्यष्टकका उत्क्रमण या पुनर्भव नहीं होता, वे चिदाकाशस्वरूप होकर ही अवशिष्ट रहते हैं।

आत्मा सर्वाधिष्ठान होनेके कारण परमाश्रय और सर्वाश्रय है। माया और मायिक जगत् उसके समाश्रित ही है, न कि समाश्रय। अतएव वह निराधार है। सर्वकारणका कारण, परम मूलका मूल सर्वथा असम्भव ही है। ''**मूले मूलाभावादमूलं मूलम्** '' (**साङ्ख्यसूत्र १.६७**) -''मूलका मूल असम्भव है, अतः परम मूल मूलरहित है।'' अनित्योंका अन्तिम मूल कोई नित्य ही हो सकता है। अचेतनोंका चरम मूल कोई चेतन ही हो सकता है। दुःखका परमाश्रय कोई सुखसिन्धु ही हो सकता है। अनित्य, अचित् और

दुःखप्रद अर्थात् असच्चिदानन्दरूप जगत् का परमाधार सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मदेव ही हो सकता है। अन्यथा आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रक और अनवस्थादोष अनिवार्य है। यदि दो विकल्पों में अभेद सिद्ध हो और एकको दूसरेके समाश्रित माना जाय, तब **आत्माश्रयदोष**की प्राप्ति होती है। दोनोंको पृथक् मानकर एकको दूसरेके समाश्रित माना जाय, तब **अन्योन्याश्रयदोष**की प्राप्ति होती है। तीन विकल्पोंमें पहला विकल्प दूसरेके और दूसरा जिस तीसरेके समाश्रित हो वह प्रथमसे अभिन्न हो तब **चक्रकदोष**की प्राप्ति होती है। यदि चार या चारसे अधिक विविध विकल्पोंमें प्रथम द्वितीयके, द्वितीय तृतीयके, तृतीय चतुर्थके समाश्रित हों, परन्तु परस्पर सर्वथा भिन्न हों, अर्थात् जब विकल्पोंमें भेदघटित विरामरहित क्रमिक आश्रय- परम्परा मान्य हो, तब **अनवस्थादोष**की प्राप्ति होती है।

अनात्मप्रपञ्चसे विरक्त आत्मजिज्ञासु **आत्मकाम** (आत्माके वास्तवस्वरूपको चाहनेवाला) कहा जाता है। आत्माको अनात्मवस्तुओंके अधिष्ठानभूत मृत्यु, मूर्खता और दुःखबीज अज्ञानसे अतिक्रान्त जानकर परमतृप्त **आप्तकाम** कहा जाता है।

तीनों अवस्थाओंमें तथा तीनों कालोंमें एकरस विद्यमान तथा स्वप्रकाश अभास्य होनेके कारण प्रलयाग्नि तथा ज्ञानाग्निसे भी अदाह्य सर्वतोभावेन अबाध्य आत्मा **अव्यय** है। सुषुप्तिमें अज्ञान और सुखकी अनुभूति उत्थानदशामें "**न किञ्चिदवेदिषम्, सुखमहमस्वाप्सम्**" - "मैंने कुछ नहीं जाना, मैं सुखपूर्वक सोया" - इस स्मृतिके बलपर सिद्ध है। अतः सौषुप्त अज्ञान और सुख दोनोंकी भास्यरूपता सिद्ध है। अतः जागर और स्वप्नके तुल्य सुषुप्तिमें भी इनकी विद्यमानता सिद्ध होनेपर भी इनकी आत्मरूपता असिद्ध है। अहङ्ग्रह - निरपेक्ष जिस साक्षीसे ये उद्भासित हैं, वही आत्मा सिद्ध है।

श्लोक : १६
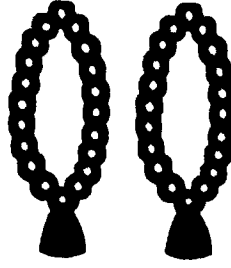
सङ्गति: - तापत्रय - विनिर्मुक्त, देहत्रय - विलक्षण, अवस्थात्रय - साक्षी अव्ययात्माका प्रतिपादन -

श्लोक: - तापत्रयविनिर्मुक्तो देहत्रयविलक्षण:।
अवस्थात्रयसाक्ष्यस्मि चाहमेवाहमव्यय:।।१६।।

सरलार्थ: - आध्यात्मिक (दैहिक), आधिदैविक (दैविक) और आधिभौतिक (भौतिक) - त्रिविध तापोंसे मैं विनिर्मुक्त हूँ। स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप - त्रिविध शरीरोंसे विलक्षण हूँ और जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्तिरूप - अवस्थात्रयका मैं साक्षी हूँ। निःसन्देह मैं अव्यय हूँ।।

सारार्थ: - **''न तापत्रयरूपोऽहम्" (तेजोबिन्दूपनिषत् ३.४६), ''न बुद्धिर्न विकल्पोऽहं न देहादित्रयोऽस्म्यहम्। न जाग्रत्स्वप्नरूपोऽहं न सुषुप्तिस्वरूपवान्।।" (तेजोबिन्दूपनिषत् ३.४५)** के अनुशीलनसे आत्मदेव तापत्रय - विनिर्मुक्त, देहत्रय - विलक्षण, अवस्थात्रय - साक्षी सिद्ध होता है।

• तापत्रयविनिर्मुक्त

स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीरका और सूक्ष्म शरीर कारण शरीरका अभिव्यञ्जक संस्थान है। कारण शरीर जीवका और जीव शिवस्वरूप सर्वेश्वरका अभिव्यञ्जक संस्थान है। अतएव आत्मदेवके अभिव्यञ्जक त्रिविध शरीरका नाम अध्यात्म है। कारण शरीर अविद्यात्मक और अविद्याग्रस्त है। सूक्ष्मशरीर काम और कर्मात्मक है तथा काम, क्रोध, लोभ, चिन्तादि आधिग्रस्त है। स्थूल शरीर आघात और वात, पित्त तथा कफके असन्तुलनसे समुत्पन्न विविध व्याधिग्रस्त है। अविद्या, आधि और व्याधिका नाम **आध्यात्मिक ताप**

है। अतिवृष्टि, अवृष्टि, भूकम्प, आँधी - आदि तथा यमयातना, क्रूरग्रह - मूलक दैवी प्रकोप **आधिदैविक ताप** है। शत्रु, सर्प, बिच्छू, कुत्ता, चूहा आदि प्राणिवर्ग तथा पाषाणादि भौतिकांश - निमित्तक वेदना **आधिभौतिक ताप** है। तापकी व्याप्ति जीवको त्रिविध शरीरोंके योगसे होती है।

आत्मा पञ्चभूतों, यमादिदेवों और शनि आदि ग्रहों एवम् स्थूलादि देहोंसे अत्यन्त अतीत है। वह त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे भी सर्वथा अतीत इनका अलिप्त साक्षी है। अतएव त्रिविध तापोंसे अतिक्रान्त है। वह भूताकाश, भावाकाश, चित्ताकाश और गुणाकाशसे भी सर्वथा अतीत है। सुषुप्तिमें ही जब त्रिविध तापोंकी अनुभूति नहीं होती, तब कैमुतिकन्यायसे आत्माकी क्लेशाक्रान्तता डण्केकी चोटसे असिद्ध है।

अवरोहक्रमसे कारण, सूक्ष्म और स्थूल तथा आरोहक्रमसे स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीन शरीर हैं। मलिन सत्त्वगुणप्रधाना प्रकृति **कारण शरीर** है। कर्मेन्द्रिय पञ्चक, ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक, प्राणपञ्चक और अन्तःकरण पञ्चक अथवा अन्तःकरण चतुष्टय **सूक्ष्मशरीर** है। सूक्ष्मशरीर करणात्मक होनेके कारण प्रयोक्ता जीवका अनुमापक है। अतएव इसे **लिङ्गशरीर** भी कहते हैं। कार्य करणका, करण कर्त्ताका तथा करणनिरपेक्ष कर्त्ता शुद्धात्माका अनुमापक होता है। करणाभिव्यञ्जक इन्द्रियगोचर सप्तधातुमय भोगायतन, कर्मायतन और ज्ञानायतन **स्थूलशरीर** है।

• देहत्रयविलक्षण

आरोहक्रमसे मनुष्यादि प्राणियोंका स्थूल शरीर पञ्चभूतसमवायरूप होता है। यह शब्दादि पञ्चविषयका तथा पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च प्राण और अन्तःकरणचतुष्टयात्मक लिङ्गसंज्ञक सूक्ष्मशरीरका अभिव्यञ्जक तथा सूक्ष्मदेहसे सञ्चालित संस्थान है। यह स्थूलप्रकृतिरूप है। यह **अन्नमयकोश** है। सूक्ष्म शरीरान्तर्गत कर्मेन्द्रियसहित प्राणोंको **प्राणमयकोश** कहा जाता है तथा ज्ञानेन्द्रियोंके सहित मनको **मनोमयकोश** कहा जाता है एवम् ज्ञानेन्द्रियोंके सहित बुद्धिको **विज्ञानमयकोश** कहा जाता है। कोशप्रक्रममें

मनमें चित्त या अहम् का तथा बुद्धिमें अहम् या चित्तका अन्तर्भाव कर लिया जाता है। मलिन सत्त्वगुणप्रधाना अविद्यारूप कारणशरीर है। कारण शरीरके अन्तर्गत **आनन्दमयकोश** है। प्रिय, मोद और प्रमोदरूप फलात्मक और बिम्बभूत बीजात्मक आनन्दसहित मलिनसत्त्वगुणप्रधाना अविद्याको **कारणशरीर** कहते हैं। -

"मनुष्यादीनां पञ्चभूतसमवायः शरीरम्। ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्ज्ञानविषयैः प्राणादिपञ्चवायुमनोबुद्धिचित्ताहङ्कारैः स्थूलकल्पितैः सोऽपि स्थूलप्रकृतिरित्युच्यते। ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्ज्ञानविषयैः प्राणादिपञ्चवायु-मनोबुद्धिभिश्च सूक्ष्मस्थोऽपि लिङ्गमेवेत्युच्यते। गुणत्रययुक्तं कारणम्। सर्वेषामेवं त्रीणि शरीराणि वर्तन्ते।" (योगचूडामण्युपनिषत् ७२)

सूक्ष्मदेहके अन्तर्गत प्राणस्पन्दनसहित कर्मेन्द्रियोंसे कर्मसम्पादन होता है, प्राणस्पन्दनसहित ज्ञानेन्द्रियोंसे ज्ञानसम्पादन होता है तथा प्राणस्पन्दनसहित मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्काररूप अन्तःकरणसे कर्म और ज्ञान दोनोंका सम्पादन होता है। अभिप्राय यह है कि अन्तःकरण कर्मज्ञान उभयात्मक है। कर्मज्ञानकी सहस्थिति भोग है।

जङ्गमप्राणियोंके स्थूलशरीरके बाह्यभागमें कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके तथा अभ्यन्तरभागमें प्राण और अन्तःकरणके अभिव्यञ्जक संस्थानरूप गोलक हैं। **शारीरकोपनिषत् १** के अनुसार मनका अभिव्यञ्जक संस्थान कण्ठ, बुद्धिका मुख, अहङ्कारका हृदय और चित्तका नाभि है। -" **मनःस्थानं गलान्तं बुद्धेर्वदनमहङ्कारस्य हृदयं चित्तस्य नाभिरिति।।"**

प्राणका मुख्य स्थान हृदय है। **अपान**का मुख्य स्थान गुदा है। **समान**का मुख्य स्थान नाभि है। **उदान**का मुख्य स्थान **कण्ठ** है। **व्यान** सर्व शरीर व्यापक है।-

"प्राण आद्यो हृदि स्थाने अपानस्तु पुनर्गुदे।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमाश्रितः।।
व्यानः सर्वेषु चाङ्गेषु व्याप्य तिष्ठति सर्वदा।"
(अमृतनादोपनिषत् ३५,३५.१/२)

मुखनासिकाके मध्य तथा कण्ठ, हृदय, नाभिमण्डल और पादाङ्गुष्ठ

प्राणसंस्थान हैं। गुद, मेढ्र, उरु, जानु, उदर, वृषण (अण्डकोष), कटि, जङ्घा, नाभि, गुदा तथा अग्निस्थान - ये **अपानके स्थान** हैं। सम्पूर्ण शरीर **समानका स्थान** है। कर, चरण और सर्व सन्धियोंमें **उदानकी स्थिति** है। श्रोत्र, नेत्र, गुल्फ, स्कन्ध, ककुद और गलेमें **व्यानकी स्थिति** है।

प्राण मस्तक तथा जठराग्नि दोनोंमें स्थित होकर शरीरको संचेष्ट रखता है। प्राणसंयुक्त आत्मा **जीव** है। आत्मचैतन्यसे अधिष्ठित प्राण अपानके रूपमें परिणत होकर शरीरका सञ्चालन करता है। **अपान** जठरानल, मूत्राशय और गुदाका आश्रय लेकर मल और मूत्रको निकालता हुआ ऊपरसे नीचेकी ओर घूमता है। प्रयत्न, कर्म और बलमें प्रवृत्त पवन **उदान** है। शरीरस्थ सन्धियोंमें संव्याप्त वायु **व्यान** है। शरीरस्थ समस्त धातुओंमें संव्याप्त अग्निका उद्दीपक पवन **समान** है। यह देहगत कफ आदि दोषों, इन्द्रियों और रसोंका सञ्चालन करता है।

निःश्वास,उच्छ्वास,कास और तुन्दस्थ अन्न, जल, रसादिका समीकरण **प्राणकर्म** हैं। मलमूत्रादिविसर्जन **अपानकर्म** हैं। शरीरपोषणादि **समानकर्म** हैं। ऊर्ध्वगमन, देहोन्नयन, देहस्थ अन्नादिका उज्जीरणादि **उदानकर्म** हैं। हानोपानादि चेष्टा, विवाद, उद्गार और प्राणापानादि चेष्टा **व्यानकर्म** हैं।

त्वक्, अस्थि आदिमें नागादि उपप्राणोंकी स्थिति है। उद्गारादि **नागकर्म** हैं। निमीलनादि **कूर्मकर्म** हैं। क्षुत्करण (भूखलगाना) **कृकरकर्म** हैं। निद्रा, तन्द्रा, विजृम्भणादि **देवदत्तकर्म** हैं। श्लेष्मा, शोभा और मृत देहको फुलाना आदि **धनञ्जयके कर्म** हैं। -

"उद्गारे नाग आख्यातः कूर्म उन्मीलने तथा।
कृकरः क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे।।
न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जयः।"
(योगचूडामण्युपनिषत् २५, २५.१/२)

मुखसे पायुपर्यन्त संव्याप्त प्राणप्रवाहसंस्थानसे प्रवाहित आध्यात्मिक पवन पायुसंस्थानतक पहुँचकर प्रतिहत होकर पुनः ऊर्ध्वमुख होते समय

समीपवर्ती अग्निको भी उद्दीप्त करता है। नाभिमण्डलके योगसे अभिव्यक्त प्राण जठरानलको उद्दीप्त करता हुआ नाभिसे नीचे स्थित पक्वाशय और ऊपर अमाशयादिका परिचालन करता है। दशविध प्राणपरिचालित नाड़ियोंद्वारा अन्न-रसका वहन होता है।

महाभारतशान्तिपर्व अध्याय ३२८के अनुसार समानका पुत्र (कार्य) उदान है। उदानका कार्य व्यान है। व्यानका कार्य अपान है। अपानका कार्य प्राण है। अथवा त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्सम्मतसम्पादित पूर्व सारणीके अनुसार आकाशीय **समान**का कार्य वायव्य **व्यान** है। वायव्य व्यानका कार्य तैजस **उदान** है। तैजस उदानका कार्य वारुण **अपान** है। वारुण अपानका कार्य पार्थिव **प्राण** है। भगवान् विष्णुके नि:श्वासभूत वायुके उक्त पञ्च प्रभेदके अतिरिक्त पृथिवी और अन्तरिक्षमें वायुके सात मार्ग हैं। मार्गभेदसे वायुके **प्रवह, आवह, उद्वह, सम्वह, विवह, परिवह, परावह** - नामक सात प्रभेद हैं। मेघके योगसे वेणुनादके तुल्य निनाद करनेवाला **नद** सम्वहका अवान्तर भेद है। विवहके योगसे प्रलयकालिक मेघकी **बलाहक** संज्ञा होती है। अत: विवहका बलाहक अवान्तर भेद है। आध्यात्मिक चतुर्दश पवनमें प्राणादिके अतिरिक्त शेष नौके बाह्यप्रभेद प्रवहादि मान्य हैं। आद्यक्षरसाम्यके कारण प्राण और प्रवहका, अपान और आवहका, उदान और उद्वहका, समान और सम्वहका तथा व्यान तथा विवह का साम्य है।

दितिगर्भगत एक पिण्डको देवराज इन्द्रने सर्वप्रथम सात प्रभेद किया, अतएव वायुके प्रवहादि सात प्रभेदको महाभारतने दितिपुत्र माना है।

सम्पूर्ण प्राणियोंकी पृथक् - पृथक् चेष्टाका सम्पादन करनेवाला तथा प्राणियोंको अनुप्राणित रखनेवाला पवन **प्राण** है -

"प्राणिनां सर्वतो वायुश्चेष्टां वर्तयते पृथक्।
प्राणनाच्चैव भूतानां प्राण इत्यभिधीयते।।"
(महाभारतशान्तिपर्व ३२८.३५)

धूम और उष्णतासे उत्पन्न मेघमण्डल और ओलोंको प्रेरित करनेवाला पवन **प्रवह** है। आकाशमें स्नेह और विद्युत् का उत्पादक ओजस्वी और तेजस्वी

पवन **आवह** है। सोम, सूर्यादि ग्रहोंका उदय करनेवाला तथा उदधिगत जलको कर्षित करनेके अनन्तर जीमूत नामक मेघसे संयुक्त कर उन्हें पर्जन्यको सौंपनेवाला पवन **उद्वह** है। देहगत उदान संज्ञक वायु बाह्य जगत् में उद्वह कहा जाता है। मेघमण्डलको विदीर्ण और घनीभूत करनेवाला, बादलोंके योगसे वर्षा करनेवाला तथा नभोमार्गसे गमन करनेवाले देवविमानोंका वहन करनेवाला वायु **सम्वह** है। प्रचण्डवेगसे वृक्षादिका विध्वंसक तथा प्रलयकालिक मेघका उद्वाहक पवन **विवह** है। आकाशगङ्गाके दिव्य जलका धारक, दिव्यामृतनिधि चन्द्रद्रवका पोषक, सूर्यरश्मियोंका एकाकारसम्पादक पवन **परिवह** है। योगियोंकी पुर्यष्टकसहित जीवकलाको अनावृत्तिरूप अमृतत्व प्रदान करनेवाला और प्रयाणकालमें पुर्यष्टकसहित जीवकलाको शरीरसे कर्षित कर मृत्यु और वैवस्वत यमको सौंपनेवाला पवन **परावह** है।

"**वायु**" आयु है। "**वायु**" बल है। "**वायु**" शरीरधारियोंका धाता है। सम्पूर्ण विश्व वायुरूप ही है। वायुको ही प्रभु कहा जाता है -

"वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम्।
वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्च कीर्तित:।।"
(चरकसंहिता चि.स्था. २८.३)

मुमुक्षुओंके लिए शरीरकी निरुक्ति भी हृदयङ्गम करने योग्य है। -

"शरीरं श्रयणाद् भवति मूर्तिमत् षोडशात्मकम्।
तमाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मणा।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २३२.१२)

"पञ्च स्थूल महाभूत, दश इन्द्रियाँ और मन नामक सोलह तत्त्वोंसे शरीरका निर्माण हुआ है। इन सबका आश्रय होनेके कारण ही अर्थात् इनका **अभिव्यञ्जक संस्थान होनेके कारण ही देहको शरीर कहा जाता है**। शरीरके समुत्पन्न होनेपर उसमें जीवोंके भोगावशिष्ट कर्मोंके साथ सूक्ष्म महाभूत प्रवेश करते हैं।।"

अथवा अग्निका आश्रयसंस्थान होनेसे देहका नाम **शरीर** है।-
"शरीरमिति कस्मात् ? साक्षादग्नयो ह्यत्र श्रियन्ते।"(गर्भोपनिषत् ५)

" इस देहको शरीर क्यों कहा जाता है ? साक्षात् अग्नियाँ इसमें निवास करती हैं, इसलिए।"

योगशिखोपनिषत् के अनुसार अधोभाग पातालमें **जो कालाग्नि** प्रतिष्ठित है, वह शरीरमें मूलाग्निरूप है, उससे नादकी उत्पत्ति होती है। समुद्रगत वडवाग्नि शरीरगत अस्थिमें सन्निहित है। तद्वत् काष्ठपाषाणगत अग्नि भी शरीरगत अस्थिमें सन्निहित है। काष्ठपाषाणसमुद्भूत पार्थिव अग्नि देहगत आँतोंमें सन्निहित है। अन्तरिक्षगत वैद्युताग्नि अन्तरात्मरूप है। नभस्थ सूर्योऽग्नि देहगत नाभिमण्डलमें स्थित है। अथवा **प्राणाग्निहोत्रोपनिषत्**के अनुसार सूर्यमण्डलाकृति सूर्योऽग्नि एकर्षि नामसे मूर्धामें स्थित है। चतुराकृति दर्शनाग्नि आहवनीयरूपसे मुखमें सन्निहित है। शारीरोऽग्निरूप ज्ञानाग्नि अर्धचन्द्राकृति दक्षिणाग्निरूपसे हृदयमें स्थित है। यह शुभाशुभ कर्मोंका ज्ञापक है। लेह्य, चोष्य, भक्ष्य, भोज्य और पेयरूप पञ्चविध अन्नको पचानेमें समर्थ कोष्ठाग्नि गार्हपत्याग्नि होकर नाभिमें स्थित है। प्रायश्चित्तीय प्रजननकर्ममें विनियुक्त है।

सत्कार्यवादके अनुसार क्रमशः अस्ति, जन्म, वृद्धि, परिणाम, क्षय और नाश - देहादि कार्यप्रपञ्चगत षड्विध भावविकार हैं। –

"षड्भावविकृतिश्चास्ति जायते वर्द्धतेऽपि च परिणामं क्षयं नाशं षड्भावविकृतिं विदुः।।" (वराहोपनिषत् १.८)

वैशेषिकादिप्रस्थानके अनुसार श्रीयास्कमुनिने पूर्वाचार्योंके मतानुसार "**जायते**" को प्रथम तथा "**अस्ति**" को द्वितीय , विपरिणामको तृतीय, वृद्धिको चतुर्थ, अपक्षयको पञ्चम और विनाशको षष्ठ भावविकार माना है। यथा - "**षड्भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः। जायतेऽस्ति विपरिणमते विवर्धतेऽपक्षीयते विनश्यतीति।।" (निरुक्तम् १.१.२)**, देहादिनिष्ठ उत्पत्ति, अस्तित्व, परिवर्तन, वृद्धि, ह्रास और नाशकी क्रमिक समुपलब्धि परिलक्षित है। जिसका अस्तित्व पूर्वसिद्ध है, उसीकी विशेष स्फूर्ति उत्पत्तिके अनन्तर स्थूलदर्शियोंको होती है। अतः उत्पत्तिके अनन्तर अस्ति वस्तुकी स्थितिका द्योतक है। वृद्धिके लिए परिवर्तन और वृद्धिके बाद परिवर्तन दोनों ही सावयव वस्तुमें चरितार्थ है। अतः "**अस्ति जायते वर्द्धते विपरिणमते-**

ऽपक्षीयते विनश्यति" (**वराहोपनिषत् १.८**) का प्रक्रम भी सर्वथा सुसङ्गत ही है। विवक्षावशात् दोनों क्रममें सामञ्जस्य साधनेकी आवश्यकता है।

"जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः।
फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना।।"
(श्रीमद्भागवत ७.७.१८)

"जैसे ईश्वरमूर्ति कालकी प्रेरणासे वृक्षोंके फल उत्पन्न होकर अस्तित्व लाभ करते, बढ़ते, पकते, क्षीण होते और नष्ट होते हैं;वैसे ही जन्म, अस्तित्व, वृद्धि, परिणाम, क्षय और विनाश - ये छह भावविकार शरीरमें देखे जाते हैं। आत्मदेव अविकार असङ्ग साक्षी है।।"

स्थूल शरीर निषेकादि नौ अवस्थाओंका आश्रय है। -

"निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम्।
वयोमध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२२.४६)

"गर्भाधान, गर्भवृद्धि, जन्म, बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था, अधेड़ अवस्था, वृद्धावस्था और मृत्यु - ये नौ अवस्थाएँ शरीरकी हैं।।"

मनुष्य शरीरके चरण (पाँव) से जानु (घुटना) - पर्यन्त, जानुसे कटिपर्यन्त, कटिसे कण्ठपर्यन्त और कण्ठसे शिरःपर्यन्त चार विभाग हैं। अपने परिमाणसे प्रत्येक मनुष्यका शरीर साढ़े तीन हाथका माना जाता है। एक हाथ दो बित्ते अर्थात् चौबीस अङ्गुलका होता है। इस दृष्टिसे चौरासी अङ्गुलका शरीर होता है। जानु, कटि और ग्रीवाकी सन्धियोंका योग चार - चार अङ्गुलके परिमाणसे बारह अङ्गुलका होता है। इस प्रकार, ८४ + १२ = ९६ अङ्गुलका नरशरीर मान्य है। पायु (गुदा) से दो अङ्गुल ऊपर और मेढ्र (लिङ्ग) से दो अङ्गुल नीचे मूलाधार है। वही देहका मध्यभाग है। उससे नौ अङ्गुल ऊपर नाभिस्थान बारह अरेसे युक्त है। नाभिकन्दकी लम्बाई और चौड़ाई चार - चार अङ्गुलकी है तथा आकृति मुर्गीके अण्डेके समान है। वह मेद, मज्जा, शोणित तथा चर्मसे वेष्टित है। नाभिकन्दके मध्यभागमें नाभि है। स्वाधिष्ठानसे ऊपर और मणिपूरकसे नीचे बहत्तर हजार नाडियोंका उद्गमस्थान है। उनमें बहत्तर

तथा उनमें इडा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी , हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू, शङ्खिनी दस मुख्य प्राणवाहिनी नाडियाँ हैं। कन्दमध्यमें इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा तीन प्राणवाहिनी प्रमुख नाडियाँ हैं। सुषुम्णा कमलसूत्रके सदृश सूक्ष्म ऋजु , विद्युत्तुल्य श्वेतवर्णा **विरजा** और ऊर्ध्वगामिनी है। ब्रह्मधाम ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त गमन करनेवाली वह ब्रह्मनाडी निर्वाणप्राप्तिका मार्ग है। सुषुम्णाके वामभागमें इडा और दक्षिणभागमें पिङ्गला सन्निहित है। इडा और पिङ्गलाके मध्यभागमें सुषुम्णा स्थित है। इडा चन्द्रनाडी है और पिङ्गला सूर्यनाडी है। श्वेतवर्णा सुषुम्णा अग्निनाडी **विरजा** है। सुषुम्णाको ही कुण्डली, अरुन्धती, आधार, ब्रह्मनाडी आदि नामोंसे अभिहित करते हैं। कपालकुहरस्थ शाम्भवस्थान व्योमचक्रमें स्थित खेचरीके योगसे कण्ठके ऊर्ध्वभागमें सुप्त कुण्डलिनी मोक्षमें हेतु है, अधोभागमें स्थित होनेपर बन्धनमें हेतु है। इडा, पिङ्गलाके मध्य सुषुम्णामें खेचरीकी स्थिति है।

इडाके देवता भगवान् विष्णु हैं। पिङ्गलाके देवता ब्रह्माजी और सुषुम्णाके देवता शिवजी हैं।

बन्धचतुष्टयसे पीठचतुष्टयका आध्यात्मिक धरातलपर अद्भुत सामञ्जस्य है।

अरोहक्रमसे मूल, उड्याण तथा जालन्धर नामक तीन प्रसिद्ध बन्ध हैं। चौथे बन्धके रूपमें महाबन्धका वर्णन है। बन्धचतुष्टयका वर्णन इस प्रकार है।

निद्रा, आलस्य, प्रमादशून्य स्थितिमें अल्पाहारके पूर्णरूपसे पच जानेपर सर्वप्रथम शुद्धिसम्पादनके अनन्तर सुखासनमें स्थित होकर रेचक और कुम्भकसे प्राणमार्गका शोधन करके मूलाधारमें सन्निहित मूलशक्तिकी उपासना विहित है। गुदा तथा योनिको एड़ीसे दृढ दबाकर बार - बार संकुचित कर अपानको ऊपर खींचना **योनिबन्ध (योगतत्त्वोपनिषत् १२१), या मूलबन्ध (योगकुण्डल्युपनिषत् १.४२)** कहलाता है। इस बन्धका सदा अभ्यास करनेसे अपान और प्राणकी तथा विन्दु और नादकी एकता होती है एवम् मल तथा मूत्रकी न्यूनता होती है , जिससे वृद्ध भी युवक हो जाता है और विविध सिद्धियोंकी

प्राप्ति होती है । बायें पैरकी एड़ीको योनिस्थानमें लगावे। दाहिने पैरको पसारकर हाथोंसे दृढ पकड़े रहे। ठोड़ीको छातीपर रखकर वायुसे पूर्ण करे। कुम्भकसे यथाशक्ति वायुको धारण करके रेचन करे। वायें अङ्गसे अभ्यास करके फिर दायें अङ्गसे अभ्यास करे। जो पैर फैलाया हुआ था, उसे जाँघपर झुकावे। यही **महाबन्ध** है। इसकी दोनों ओरसे अभ्यास करे। महाबन्धके अनन्तर एकाग्र बुद्धिसे पूरक करके कण्ठमुद्रासे धारण किये हुए वायुकी गतिको रोककर दोनों नथुनोंका संकोच करनेसे वायु शीघ्र भर जाता है।

कुम्भकके अन्तमें और रेचकके आदिमें **उड्याणबन्ध** उदरमें होता है। जैसे न थका हुआ महा पक्षी उड्याण करता (ऊर्ध्वमुख उड़ान भरता) है, वैसे ही जिस बन्धसे प्राण आधारशक्तिसे सुषुम्णामें उड्याण करता है - उड्यानपीठमें प्रवेश करता है, उसे **उड्याणबन्ध**, **उड्यानबन्ध** (**योगशिखोपनिषत् ५. ३८, योगतत्त्वोपनिषत् ११९**), **ओड्याणबन्ध** (**योगचूडामण्युपनिषत् ४७ - ४९, ध्यानबिन्दूपनिषत् ४७**) अथवा **उड्डीयाणबन्ध** (**योगराजोपनिषत् ८**) कहते हैं। उदरसे ऊपर और नाभिसे नीचे अर्थात् नाभि और लिङ्गके मध्यमें यह बन्ध विहित है। सिद्धोंके द्वारा भी इसका निरन्तर सेवन किया जाता है ।

नभोजलको धारण करनेवाला अर्थात् रविमण्डलमें पतित होकर दग्ध होनेसे बचानेके लिये बांधनेवाला तथा वायुविक्षेपको दूरकर प्राणस्पन्दनको स्थिर रखनेवाला **जलन्धर** (योगचूडामण्युपनिषत् १.४५) अथवा **जालन्धरबन्ध** है। कण्ठका आकुञ्चन करके हृदयमें दृढ धारणरूप जालन्धरबन्ध मृत्युरूप गजेन्द्रके लिए केसरीके तुल्य है। वायें पैरकी एड़ीको योनिस्थानमें लगावे। दाहिने पैरको पसारकर हाथोंसे दृढ पकड़े रहे। ठोड़ीको छातीपर रखकर वायुसे पूर्ण करे। कुम्भकसे यथाशक्ति वायुको धारण करके रेचन करे। वायें अङ्गसे अभ्यास करके फिर दायें अङ्गसे अभ्यास करे। फैले हुए पैरको जाँघपर झुकावे। इस **महाबन्ध**का अभ्यास साधक दोनों ओरसे करे। महाबन्धकी स्थितिमें पूरक करनेके अनन्तर कण्ठमुद्रासे धारण किये गये वायुकी गतिको रोककर दोनों नथनोंका संकोच करनेसे हृदयमें वायु शीघ्र भर जाता है।

श्लोक : १६

अन्त:कपालकुहरमें जिह्वाको ऊर्ध्वमुख (उलटकर) धारण करनेपर अथवा भ्रूमध्यमें दृष्टि स्थिर करनेपर खेचरी मुद्राकी सिद्धि होती है। खेचरी मुद्राको नभोमुद्राके अतिरिक्त **शान्तोभवी मुद्रा** भी कहते हैं (मण्डलब्राह्मणोपनिषत् २.१)। चित्त और जिह्वाका कपालकुहररूप आकाशमें सञ्चरणके कारण मुद्राविशेषको खेचरी कहते हैं। रोग, मरण, निद्रा, क्षुधा, मूर्च्छा , तृषा तथा कर्मबन्धनका निरोध करनेवाली यह मुद्रा सर्वसिद्धोंद्वारा नमस्कृता है।

ध्यान रहे, शरीर पादतलसे मस्तकपर्यन्त शिराओंसे व्याप्त है। जरायुज और अण्डज शरीरोंका मूल विन्दु है। रजोगुणसे समाविष्ट अधोमुख मन स्त्री या पुरुषभावापन्न होनेपर अन्नसारसर्वस्व जीवनमूल रज और विन्दुका पतन होता है। खेचरी मुद्राके द्वारा शिरोगत विवर आच्छादित हो जानेपर मन सत्त्वगुणसे समाविष्ट और ऊर्ध्वमुख हो जाता है। जैसे टोटीके खुले रहनेपर भी नलका विवर अवरुद्ध रहनेपर पानीका पतन नहीं होता, अथवा शीतकी प्रगल्भतासे हिमभावापन्न जलका निस्सरण नहीं होता, वैसे ही खेचरी मुद्राके द्वारा शिरोगत विवर आच्छादित हो जानेपर तथा मन सत्त्वगुणसे समाविष्ट और ऊर्ध्वमुख हो जानेपर स्त्री - पुरुष - संसर्गसमकालमें भी विन्दुक्षरण नहीं होता। अत: नभोमुद्राके प्रभावसे विन्दुस्थैर्यके कारण सिद्धका अकाल मरण सम्भव नहीं होता। -

''बिन्दुमूलशरीराणि शिरास्तत्र प्रतिष्ठिता:।
भावयन्ती शरीराणि आपादतलमस्तकम्।।
खेचर्या मुद्रितं येन विवरं लम्बिकोर्ध्वत:।
न तस्य क्षीयते बिन्दु: कामिन्यालिङ्गितस्य च।।
यावद्बिन्दु: स्थितो देहे तावन्मृत्युभयं कुत:।
यावद्बद्धा नभोमुद्रा तावद्बिन्दुर्न गच्छति।।"

(योगचूडामण्युपनिषत् ५७ - ५८)

गुरुकृपालब्ध - ''**ह्रीं भं सं पं फं सं क्षम्**'' - मेलनमन्त्र (**योगकुण्डल्युपनिषत् ३.१**) है। यह खेचरीमुद्राकी सिद्धिमें हेतु है। ''**ह्रीं**'' -

बीजमन्त्र है। इसमें सन्निहित "**ह्**" - आकाशबीज है। स्थितिका द्योतक "**ई**" है। "**र्**" - अग्निबीज है। "**म्**" - जलका द्योतक है। नभोजलको अग्निकुण्डमें (**मण्डलब्राह्मणोपनिषत् २.१**) दग्ध होनेसे बचानेवाली मुद्रा खेचरी है। उसकी सिद्धिके लिए **ह्रीं** - इस खेचरीबीजका आलम्बन आवश्यक है।

अन्तर्दृष्टि योगीको तालुमूलमें गाढ़ तमस् दृष्टिगोचर होता है। अभ्यासकी परिपक्वतासे अखण्ड मण्डलाकार ज्योतिका दर्शन होता है। तब चिद्व्योमरूप सहजानन्दमें मन लीन हो जाता है। उस दशाको **शान्तो भवी या खेचरी** कहते हैं। इसके अभ्याससे मन स्थिर होता है तदनन्तर प्राण भी स्थिर होता है। -

"यदा तालुमूले गाढतमो दृश्यते। तदभ्यासादखण्ड-मण्डलाकारज्योतिर्दृश्यते। ....एवं सहजानन्दे यदा मनो लीयते तदा शान्तो भवी भवति। तामेव खेचरीमाहुः। तदभ्यासान्मनः स्थैर्यम्। ततो वायुस्थैर्यम्।।" (मण्डलब्राह्मणोपनिषत् २.१)

प्रसिद्ध क्रमके अनुसार मूलाधार चतुर्दल, स्वाधिष्ठान षड्दल, मणिपूरक दश दल, अनाहत द्वादश दल, विशुद्ध षोडश दल, आज्ञा द्विदल और ब्रह्मरन्ध्र सहस्रार है। -

**"चतुर्दलं स्यादाधारं स्वाधिष्ठानं च षड्दलम्।।
नाभौ दशदलं पद्मं हृदये द्वादशारकम्।
षोडशारं विशुद्धाख्यं भ्रूमध्ये द्विदलं तथा।।
सहस्रदलसंख्यातं ब्रह्मरन्ध्रे महापथि।"
(योगचूडामण्युपनिषत् ४ - ५.१/२)**

**"षट् चक्राणि परिज्ञात्वा प्रविशत्सुखमण्डलम्।
मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरं तृतीयकम्।।
अनाहतं विशुद्धं च आज्ञाचक्रं च षष्ठकम्।
आधारं गुदमित्युक्तं स्वाधिष्ठानं तु लैङ्गिकम्।।
मणिपूरं नाभिदेशं हृदयस्थमनाहतम्।
विशुद्धिः कण्ठमूले च आज्ञाचक्रं च मस्तकम्।।"
(योगकुण्डल्युपनिषत् ३.९ - ११)**

श्लोक : १६

गुदमेढ्रके अन्तरालमें मूलाधार त्रिकोण चतुर्दल चक्र है। वह सर्वकामफलप्रद **कामरूप योनिपीठ** है। लिङ्गमूलमें षड्दल स्वाधिष्ठानचक्र है। नाभिदेशमें दशदल मणिपूरकचक्र है। हृदयमें द्वादशदल अनाहतनामक महाचक्र है। यह **पूर्णगिरिपीठ** है। कण्ठकूपमें विशुद्ध नामक षोडशदल चक्र है। इसमें **जालन्धरपीठ** अथवा **जलन्धरपीठ** है। दोनों भ्रूकुटियोंके मध्य द्विदल आज्ञाचक्र है। इसमें **उड्यान (उड्डीयाण) महापीठ** प्रतिष्ठित है। महापथ ब्रह्मरन्ध्रमें सहस्रदल परब्रह्माकाशचक्र सन्निहित है।

षट्चक्रसम्पन्न स्थूलशरीर पुर्यष्टकरूप सूक्ष्म और कारणशरीरका अभिव्यञ्जकसंस्थान है।

"अथ ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं कर्मेन्द्रियपञ्चकं प्राणादिपञ्चकं वियदादिपञ्चकमन्तःकरणचतुष्टयं कामकर्मतमांस्यष्टपुरम्।"

"अथान्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयाः पञ्च कोशाः। अन्नरसेनैव भूत्वाऽन्नरसेनाभिवृद्धिं प्राप्यान्नरसमयपृथिव्यां यद्विलीयते सोऽन्नमयकोशः। तदेव स्थूलशरीरम्। कर्मेन्द्रियैः सह प्राणादिपञ्चकं प्राणमयकोशः। ज्ञानेन्द्रियैः सह मनो मनोमयकोशः। ज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धिर्विज्ञानमयकोशः। एतत्कोशत्रयं लिङ्गशरीरम्। स्वरूपाज्ञानमानन्दमयकोशः। कारणशरीरम्।" (पैङ्गलोपनिषत् २)

ज्ञानेन्द्रियपञ्चक, कर्मेन्द्रियपञ्चक, प्राणादिपञ्चक, वियदादितन्मात्रपञ्चक, अन्तःकरणचतुष्टय और काम, कर्म तथा अविद्या संज्ञक आठ वस्तुओंका समुदाय - **पुर्यष्टक** है। ज्ञानेन्द्रियपञ्चक, कर्मेन्द्रियपञ्चक, प्राणादिपञ्चक और अन्तःकरणचतुष्टय - सूक्ष्म या लिङ्ग शरीर है। **"इन्द्रियाणिमनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।" (श्रीमद्भगवद्गीता ३.४०)** के अनुसार सूक्ष्मशरीर **काम**का आश्रय है। आकाशादितन्मात्रपञ्चक उसका उपादान है। **"विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च" (तैत्तिरीयोपनिषत् २.५)** के अनुसार सूक्ष्मशरीरान्तर्गत विज्ञान श्रौतस्मार्त समस्त कर्मोंका निर्वाहक है, अतः सूक्ष्मशरीर **कर्म**का आश्रय है। तमोरूपाविद्या कारण शरीर है।

श्लोक : १६

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय - जीवके अभिव्यञ्जक और आवारक (आच्छादक) संस्थान पञ्चकोश हैं। अन्नसंज्ञक स्थूल पञ्च भूतोंसे समुत्पन्न होकर, अन्नरसादिसे पोषित होकर अन्नरसादिमयी पृथिवीमें जिसका विलय होता है, वह पुर्यष्टकविहीन स्थूलशरीर **अन्नमयकोश** है। यह स्थूल शरीर पञ्चीकृत पृथिवी, पानी, प्रकाश, पवन और आकाश - संज्ञक पञ्चभूतोंसे विनिर्मित होनेसे **पञ्चात्मक** है। शरीरमें कठिन अंश पार्थिव है, द्रवांश वारुण है, उष्णांश तैजस है, गतिशील भाग वायव्य है और छिद्रांश आकाश है। -''**यत्कठिनं सा पृथिवी यद्द्रवं तदापो यदुष्णं तत्तेजो यत्सञ्चरति स वायुर्यत्सुषिरं तदाकाशम्।।**'' (**शारीरकोपनिषत् १**)

पृथिवीका स्वभाव धारण है। जलका स्वभाव पिण्डीकरण है। तेजका स्वभाव प्रकाशन है। वायुका स्वभाव व्यूहन (विलय, वहन, व्यवस्थापन) है। आकाशका स्वभाव अवकाशप्रदान है। कार्यमें कारणके गुण अनुगत होते हैं, अतः गन्धवती पृथिवीके शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध - पाँच गुण होते हैं। सरस जलके शब्द, स्पर्श, रूप, रस - चार गुण होते हैं। रूपवान् तेजके शब्द, स्पर्श, रूप - तीन गुण होते हैं। स्पर्शवान् वायुके शब्द और स्पर्श - दो गुण होते हैं। शब्दमात्र आकाशका गुण है। -

''**पार्थिवः पञ्चमात्राणि चतुर्मात्राणि वारुणः।**
आग्नेयस्तु त्रिमात्राणि वायव्यस्तु द्विमात्रकः।।
एकमात्रस्तथाकाशो ह्यर्द्धमात्रं तु चिन्तयेत्।''
(अमृतनादोपनिषत् ३१. ३१.१/२)

''**शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पृथिवीगुणाः। शब्दस्पर्शरूप-रसाश्चापां गुणाः। शब्दस्पर्शरूपाण्यग्निगुणाः। शब्दस्पर्शाविति वायुगुणौ। शब्द एक आकाशस्य।**'' (**शारीरकोपनिषत् १**)

शरीर षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद, इष्ट, अनिष्ट, प्रणिधान संज्ञक **दशविध शब्द**अभिव्यञ्जकसंस्थान है। यह उष्ण, शीत, सुख, दुःख, स्निग्ध, विशद, खर, मृदु, रूक्ष, लघु, गुरु, गुरुतर - **द्वादशविध स्पर्श**का अभिव्यञ्जकसंस्थान है। यह ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्र, अनुवृत्तवान्

(चतुर्दिक् गोल), शुक्ल, कृष्ण, रक्त, पीत, नील-अरुण, कठिन, चिक्कण, श्लक्ष्ण (भास्वर), पिच्छिल (स्नेहन), मृदु, दारुण -संज्ञक **षोडशविध रूप**का अभिव्यञ्जकसंस्थान है। यह मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय - नामक **षड्विध रसों**का अनुभवसंस्थानरूप आश्रय होनेसे **षडाश्रय** है। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, निर्हारी (दूरगामी तेज), मिश्रित, स्निग्ध, रूक्ष, विशद -नामक **नवविध गन्ध**का अनुभवसंस्थान भोगायतनरूप यह शरीर है। मनुष्यादि शरीर क्रमशः रस, शोणित, मांस, मेद, स्नायु, अस्थि, मज्जा, शुक्र -संज्ञक अष्ट धातुमय और त्वक्, मांस, शोणित, अस्थि, स्नायु, मज्जा - नामक षाट्कौशिक (छह कोशोंवाला) है। -

''परस्परं सौम्यगुणत्वात्षड्विधो रसो रसाच्छोणितं शोणितान्मासं मांसान्मेदो मेदसः स्नावा स्नावोऽस्थीन्यस्थिभ्यो मज्जा मज्जातः शुक्रं शुक्रशोणितसंयोगादावर्तते गर्भः।'' (गर्भोपनिषत् २)
''त्वङ्मांसशोणितास्थिस्नायुमज्जाः षट्कोशाः।'' (मुद्गलोपनिषत् १)

स्वेदज और उद्भिज्ज शरीरोत्पत्तिमें माता और पिताकी आवश्यकता नहीं है। मातापिताके संसर्गसे समुद्भूत जरायुजादि शरीरोंमें अस्थि, स्नायु तथा मज्जा -पितृज गुण हैं। त्वक्, मांस तथा रक्त मातृज गुण हैं। -

''अस्थि स्नायुश्च मज्जा च जानीमः पितृतो गुणाः।
त्वङ्मांसं शोणितं चेति मातृजान्यपि शुश्रुम।।''
(महाभारतशान्तिपर्व ३०५. ५, ५.१/२)

अथवा अस्थि, शुक्ल, मज्जा पितृज और त्वक्, मांस, रुधिर मातृज-गुण हैं। -

''अस्थिशुक्लमज्जाः पितृतः, त्वङ्मासरुधिराणीति मातृतः, इति षट्कोशाः।'' (परमात्मिकोपनिषद्भाष्य)

माता या पिताके शरीरमें स्थित आत्माका सन्तानमें सञ्चार नहीं होता, यही कारण है कि सन्तानोत्पत्तिके अनन्तर भी वे जीवित रहते हैं। जरायुजादि शरीर पाञ्च भौतिक हैं। शरीरोंके संयोग या वियोगमें जीवोंके कर्म ही हेतु हैं।

श्लोक : १६

"संयोगे च वियोगे च तेषां कर्मैव कारणम्।।"

(चरकसंहितासूत्र० ११.१२)

देवताओंके शरीर मानस हैं। मर्त्यलोकमें उद्भिज्ज, अण्डज, स्वेदज और जरायुज चतुर्विध शरीर सुलभ हैं। कर्मफलात्मक शरीरोंकी पाञ्च भौतिकता सिद्ध है।-

"जरायुजोऽण्डजश्चैव स्वेदजश्चोद्भिदस्तथा।
एवं चतुर्विधः प्रोक्तो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः।।
मानसोऽपि परः प्रोक्तो देवानामेव स स्मृतः।"

(शिवगीता ८. ३, ३.१/२)

यह जगत् **स्थावर और जङ्गम**भेदसे द्विविध कहा जाता है। इनमें स्थावर उद्भिज्ज कहे जाते हैं। जङ्गम स्वेदज, अण्डज और जरायुज कहे जाते हैं। इन चार प्रकारकी योनियोंमें बीज और शाखासे लगनेवाले तरु, गुल्म, लतादि अन्तःसंज्ञासम्पन्न **उद्भिज्ज** प्राणी हैं। पसीना और मूत्रादिसमुत्पन्न दंश, मच्छर, जू, मक्खी, खटमल -कृमि, कीटादिके शरीर **स्वेदज** हैं। सर्प, मगर, मछली, कछुए और शङ्ख तथा बिना झिल्लीदार कानवाले पक्षी आदिके शरीर **अण्डज** हैं। मृग, व्याल (व्याघ्रादि हिंसक प्राणी) और मनुष्यादि **जरायुज** हैं। पृथिवी और जलके योगसे उद्भिज्जोंकी उत्पत्ति होती है। शीत तथा उष्णके योगसे स्वेदजोंकी उत्पत्ति होती है। क्लेद और बीजके योगसे अण्डजोंकी उत्पत्ति होती है। रज और वीर्यके संयोगसे जरायुजोंकी उत्पत्ति होती है। जरायुजोंमें मनुष्यत्वका सर्वोत्कृष्ट स्थान है। नारदादि महर्षि मनसिज हैं।-

"अण्डजाः सर्पखगरूपा जायन्ते। स्वेदजाः कृमिकीटादयः। उद्भिज्जास्तरुगुल्मलतादयः। जरायुजा नरपशुमृगादयो जायन्ते। मनसिजा नारदादयः सर्वे ऋषयः।।" (नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषत् ५)

"स्थावरं जङ्गमं चेति जगद् द्विविधमुच्यते।
चतस्रो योनयस्तत्र प्रजानां क्रमशो यथा।।
तेषामुद्भिदजा वृक्षा लतावल्ल्यश्च वीरुधः।
दंशयूकादयश्चान्ये स्वेदजाः कृमिजातयः।।

श्लोक : १६

पक्षिणश्छिद्रकर्णाश्च प्राणिनस्त्वण्डजा मताः।
मृगव्यालमनुष्यांश्च विद्धि तेषां जरायुजान्।।
एवं चतुर्विधां जातिमात्मा संसृत्य तिष्ठति।।
तथा भूम्यम्बुसंयोद् भवन्त्युद्भिदजाः प्रिये।
शीतोष्णयोस्तु संयोगाज्जायन्ते स्वेदजाः प्रिये।।
अण्डजाश्चापि जायन्ते संयोगात् क्लेदबीजयोः।
शुक्लशोणितसंयोगात् सम्भवन्ति जरायुजाः।।
जरायुजानां सर्वेषां मानुषं पदमुत्तमम्।।"
(श्रीमहाभारत अनुशासनपर्व १४५ दा.)

जैसे पुरुषनिष्ठ और पुरुषरूप बीज स्त्रीनिष्ठ और स्त्रीरूपा योनिमें संश्लिष्ट होकर सन्तानरूप मूर्तियोंको जन्म देता है, वैसे ही परमेश्वरनिष्ठ और परमेश्वररूप बीज महद्ब्रह्मरूपा प्रकृतिनिष्ठ और प्रकृतिरूपा योनिमें संश्लिष्ट होकर ब्रह्मासे लेकर अमीबा तथा कुशादिसंज्ञक स्तम्बपर्यन्त मूर्तियोंको जन्म देता है। अथवा जैसे मनुष्यरूप कृषक बीजोपादान भूमिरूपा योनिमें बीजको संश्लिष्ट कर अङ्कुरादिरूपा मूर्तियोंको जन्म देता है ; वैसे ही महेश्वररूप कृषक बीजोपादान सर्वाधिष्ठान महद् ब्रह्मसंज्ञक परब्रह्मरूप योनिमें प्रकृतिरूप बीजको संश्लिष्ट कर ब्रह्मादिरूपा मूर्तियोंको जन्म देता है। –

"सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।"
(श्रीमद्भगवद्गीता १४.४)

वैशेषिकदर्शनके अनुसार योनिज और अयोनिज द्विविध शरीर मान्य हैं। देवता और ऋषियोंके शरीर शुक्र, शोणितके बिना ही धर्मविशेषसहित अणुओंसे उत्पन्न होते हैं, अतएव अयोनिज सिद्ध हैं।–

"तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजं च।", "तत्रायोनिजमनपेक्षितशुक्रशोणितं देवर्षीणां शरीरं धर्मविशेषसहितेभ्योऽणुभ्यो जायते।।" (प्रशस्तपादीयभाष्य ४.२.५)

देवता और ऋषियोंके शरीर द्रव्यसूक्ष्मविपाकात्मक अर्थात्

पुण्यसारसर्वस्व होनेसे दिव्य मान्य हैं।

महाभारत - शान्तिपर्वके ३४८वें अध्यायके अनुसार, श्रीमन्नारायणके मुखसे ब्रह्माजीके मानस, चक्षुसे चाक्षुष, वाणीसे वाचिक, श्रवणसे श्रावण, घ्राणसे घ्राणज, सुवर्णमय अण्डसे अण्डज और नाभिकमलसे पद्मज क्रमशः सात जन्मोंका वर्णन है। यद्यपि श्रीहरिके श्रीविग्रह लीलासिद्ध हैं, न कि अविद्या, काम और कर्मफलात्मक ; तथापि लोकलीलान्यायसे उनके अङ्गश्रीसमुद्भूत ब्रह्माजीको विवक्षावशात् स्वेदज तथा नाभिकमलसमुद्भूज उद्भिज्ज और जरायुज एवम् सुवर्णाण्डसमुत्पन्न अण्डज प्राणी कहा जा सकता है।

वस्तुतः चतुर्दश भुवनात्मक समग्र ब्रह्माण्डकी दृष्टिसे सर्वविध जीव शरीरोंको उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज, जरायुज, मनसिज और स्वयम्भू -भेदसे षड्विध माना जा सकता है। श्रीनारदादि देवर्षियोंका श्रीविग्रह मनसिज तथा स्वयं श्रीब्रह्माजीका श्रीविग्रह स्वयम्भूसर्गका सिद्ध होता है।

अण्डजादि मूर्तियोंकी योनि मादा पक्षी, मत्स्य, सर्पादि हैं। स्वोदजोंकी योनि स्वेदयुक्त स्त्रीपुरुषादिके शरीर हैं। उद्भिज्जमूर्तियोंकी योनि बीजयुक्त पृथिवी है। जरायुजमूर्तियोंकी योनि स्त्रीशरीरगत शुक्ल - शोणित -सम्भूत आवृत्ति (आवरणविशेष) - गर्भित गर्भाशय है। - "**शुक्ल - शोणित - सम्भूतावृत्तिरेव जरायुजः।**" (**शिवगीता ८.५**)। मनसिजमूर्तियोंकी योनि सङ्कल्पशबलित मन है। सनकादि मानस सर्गके उदाहरण हैं। स्वयम्भूमूर्तियोंकी योनि पद्म, प्रज्ञा, पानी, पृथिवी, यज्ञकुण्ड, यज्ञवेदी आदि हैं। ब्रह्मा, लक्ष्मी, विश्वकर्माविर्मित तिलोत्तमा, अगस्त्यविनिर्मित लोपामुद्रा, सीता, द्रौपदी, धृष्टद्युम्नादि स्वयम्भूसर्गके उदाहरण हैं।

साङ्ख्यशैलीमें अण्डजादि चतुर्विध प्राणियोंकी योनि **पञ्चभूत** हैं। मरीचि अत्रि, अङ्गिरस, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु संज्ञक मानससर्गके महर्षिगणोंकी योनि ब्रह्माजीका **मन** है -

"ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः।
मरीचिरत्र्यङ्गरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।।"
(महाभारत आदिपर्व ६५.१०)

श्लोक : १६

महदात्मक ब्रह्मारूप स्वयम्भू सर्गकी योनि बुद्धि है। इस प्रकार, पृथिवी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश और मन, बुद्धि -ये सात कार्यवर्गकी योनियाँ हैं। कारणरूपा प्रकृति जिसे महद् ब्रह्म, अव्यक्त, प्रधानादि नामोंसे अभिहित करते हैं, वह कारणरूपा योनि है। -

''पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्।
मनो बुद्धिश्च सप्तैता योनिरित्येव शब्दिता:।।''
(महाभारत आश्वमेधिकपर्व २०. २४)

''अव्यक्तं प्रकृतिर्मूलं प्रधानं योनिरव्ययम्।
अव्यक्तस्यैव नामानि शब्दै: पर्यायवाचकै:।।''
(महाभारत अनुशासनपर्व १४५दा.)

''मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भव: सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।''
(श्रीमद्भगवद्गीता १४.३)

स्थलचर, जलचर, नभचर -प्राणियोंके स्थावर, जङ्गम द्विविध - भेद हैं। इनके चौरासी लाख प्रभेद प्रसिद्ध हैं।

९ लाख जलचर, २० लाख स्थावर, ११ लाख कृमि, १०लाख पक्षी, ३० लाख पशु और ४ लाख मनुष्य होते हैं। इस प्रकार, चौरासी लक्ष प्राणियोंकी सिद्धि होती है। -

''जलजा नव लक्षाणि स्थावरा लक्षविंशति:।
कृमयो रुद्रलक्षाणि पक्षिणो दशलक्षका:।
त्रिंशल्लक्षाणि पशवश्चतुर्लक्षाणि मानवा:।।''

प्रकारान्तरसे जलचरोंके नौ लाख, खेचरोंके दस लाख, कीड़े - मकोड़ोंके ग्यारह लाख, गौ आदिके बीस लाख, स्थावरोंके तीस लाख एवम् समान शुभाशुभ कर्मोंके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंके चार लाख प्रकार हैं। -

''जलजा नवलक्षाश्च दशलक्षाश्च पक्षिण:।
कृमयो रुद्रलक्षाश्च विंशल्लक्षा गवादय:।।

स्थावरास्त्रिंशल्लक्षाश्च चतुर्लक्षाश्च मानवाः।
पापपुण्यं समं कृत्वा नरयोनिषु जायते।।"
"एवमेव समाख्यातं शरीरं ते चतुर्विधम्।
चतुरशीतिलक्षाणि निर्मितानि मया पुरा।।
स्वेदजा उद्भिज्जाश्चैव अण्डजाश्च जरायुजाः।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ।।"
(गारुडमहापुराणप्रेतकल्प २१.४०,४१)

अण्डजादि चतुर्विध प्राणियोंमें मनसिज और स्वयम्भू प्राणियोंका अन्तर्भाव कर लेनेपर चौरासी लक्ष योनियोंमें इक्कीस - इक्कीस लक्ष अण्डजादि चतुर्विध प्राणियोंका प्रभेद भी विवक्षावशात् अथवा कल्पभेदसे मान्य है। -

"चतुरशीतिलक्षाणि चतुर्भेदैश्च जन्तवः।
अण्डजाः स्वेदजाश्चैव ह्युद्भिज्जाश्च जरायुजाः।।
एकविंशतिलक्षाणि त्वण्डजाः परिकीर्तिताः।
स्वेदजाश्च तथैवोक्ता उद्भिज्जाश्च क्रमेण तु।।
जरायुजास्तथासङ्ख्या मानुषाद्याः प्रचक्षते।
सर्वेषामेव जन्तूनां मानुषत्वं हि दुर्लभम्।।"
(गारुडपुराण २.२.२ -४)

देव, मनुष्य, जलचर, खग, मृग, सरीसृप, वृक्षादि स्थावर - ये सात प्रकारकी क्षेत्रज्ञ जातियाँ होती हैं। प्रकारान्तरसे यह गणना भी प्राप्त है कि सोलह (१६) लाख देव, नौ (९) लाख मनुष्य, दश - दश (१० - १०) लाख जलचर, पक्षी तथा मृग, ग्यारह (११) लाख सरीसृप (सर्प) एवम् अट्ठारह (१८) लाख स्थावर प्राणी हैं। -

"त्रिदशा मनुजाश्चैव जलजा विहगा मृगाः।
सरीसृपाः स्थावराश्च सप्तैते जन्महेतवः।।
त्रिदशा षोडशलक्षाणि नवलक्षाणि मानुषाः।
दशभिर्दशभिश्चैव जलजा विहगा मृगाः।
सरीसृपा एकादशाष्टादश स्थावरा स्मृताः।।"

ध्यान रहे -

''शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिनाम्।।''
(मनुस्मृति १२.९)

''मनुष्य शारीरक कर्मके दोषोंसे स्थावर योनिको, वाचिक कर्मके दोषोंसे पक्षी, मृग योनिको, मानसिक कर्मके दोषसे चाण्डालादि अन्त्य जातिको प्राप्त करता है।।''

इनमें देवशरीर दिव्य होनेपर भी कर्मभूमि नहीं है, अतः मनुष्य शरीरका महत्त्व है। मनुष्य शरीर भोगायतन, ज्ञानायतन और कर्मायतन होनेके कारण देवदुर्लभ है। इसमें वर्णाश्रमविभागकी निसर्गसिद्ध अपूर्वताके कारण कर्मजासिद्धिकी शीघ्रता और सुलभता सन्निहित है। -''**क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा।**'' **(श्रीमद्भगवद्गीता ४.१२)**। शुभाशुभ कर्मोंके फलस्वरूप निष्पन्न नरदेह कर्मयोनि है। इसमें कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, प्राणों और अन्तःकरणोंका इन्द्रियगोचर और इन्द्रियातीत वस्तुओंके श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा दर्शनके तथा यज्ञ, दान, तप आदिके अनुरूप सम्यक् विकास है, अतएव यह ज्ञानायतन, भोगायतन और कर्मायतन है। देहपरम्परासम्प्राप्त तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणको ऊर्ध्वमुख कर गुणातीत होनेकी वर्णाश्रमरूप अमोघविधाको घृणामूलक, विद्वेषमूलक अथवा अविवेकमूलक माननेकी प्रथा निस्सन्देह आत्मघातमें विनियुक्त है। शिक्षा, न्याय, रक्षा, अर्थ, सेवा, स्वच्छता तथा वस्तुनिर्माणकी व्यवस्थाको समाजमें सन्तुलित रखनेकी स्वस्थविधा सनातन वर्णव्यवस्था है। उसकी निन्दा विद्वेष या अविवेकमूलक ही है। व्यवहारसम्पादनके लिए अपेक्षित शिक्षक, रक्षकादिकी वैकल्पिक संरचनामें समय तथा सम्पत्तिका अपव्यय, विविध विभागोंमें व्यक्तिकी अपेक्षित सङ्ख्यामें असन्तुलन तथा संयुक्तपरिवारका उच्छेद सुनिश्चित है। परम्पराप्राप्त वर्णोचित संस्कारका आधान सर्वथा असम्भव है। श्रमिकों, किसानोंका शोषण तथा शिक्षकों, न्यायाधीशों, सैनिककोंको वेतनभोगी बनाकर शासन करनेवाले व्यापारियोंका साम्राज्य, शोषितवर्गका विद्रोह तथा विश्वयुद्धका ताण्डव नृत्य अनिवार्य है। अतएव मोक्ष

ही नहीं, अपितु समुचित और सन्तुलित भोगके लिए भी सनातनधर्मका परिपालन ही कर्त्तव्य है। -

"यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।
(श्रीमद्भगवद्गीता १६.२३)

"जो शास्त्रविधिका त्यागकर केवल कामनाके वशीभूत होकर वर्ताव करता है, वह संयम और निष्कामतासुलभ फलोपलब्धिरूपा सिद्धिको और चित्तस्थैर्यसुलभ सुखको अर्थात् अभ्युदयको प्राप्त नहीं कर पाता और न निःश्रेयरूप मोक्षको ही प्राप्त कर पाता है। अभिप्राय यह है कि स्वार्थ तथा परमार्थ दोनोंसे वञ्चित रहता है।।"

मन्वादिप्रोक्त सनातन जीवनप्रणालीसे सनातनधर्मका संरक्षण सम्भव है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तपस् और दुष्टदमनके समर्थक गुरु, ग्रन्थ और ईश्वरका अनुगमन सनातन धर्म है। दया, सत्य, शील और शौचाचारके निन्दक और विध्वंसक गुरु, ग्रन्थ और ईश्वरका अनुगमन वेदबाह्य अनार्यधर्म है। सत्यसहिष्णुताकी क्रमिक अभिव्यक्तिके लिए अधिकारसम्पदाका परिपोषक वेदमार्ग है। पूर्व कर्मानुरूप वर्तमान जन्म, जन्मानुरूप वर्ण तथा वर्णानुरूप कर्मविधा वैदिकधर्म है। इसमें श्रम, जीविका और वैवाहिक सम्बन्धका विभाग सन्निहित है। इससे समृद्ध, सुव्यवस्थित, सुसंस्कृत और सुरक्षित समाजकी संरचना स्वाभाविक है।

सनातनधर्ममें **भेद** राग, द्वेष और अविवेकमूलक न होकर निसर्गसिद्ध भेदके सदुपयोग और निर्भेद आत्मस्थितिके लिए है। अतएव समादर योग्य है। एकात्मवाद, एकेश्वरवाद और सर्वात्मवाद सनातनधर्मका चरम सिद्धान्त है। -

"पञ्चभूतशरीराणां सर्वेषां सदृशात्मनाम्।।
लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरणं कृतम्।
यथैकत्वं पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तरः।।"
(महा० अनुशासनपर्व १६४.११,१२)

"आत्मा एकरस है। शरीर सबके पाञ्चभौतिक हैं। फिर भी लौकिक

और विशेष धर्मोंका विभाग भेदभूमियोंका सदुपयोग और निर्भेद आत्मस्थितिकी स्फूर्तिके अभिप्रायसे है। इस तथ्यका सनातन शास्त्रोंमें विस्तारसहित वर्णन है।।"

सनातनधर्मकी जिस वर्णवादके नामपर विश्वस्तरपर उपेक्षा की गयी है, उसका विकल्प लौकिक उत्कर्षमें भी अक्षम है, फिर उससे पारलौकिक उत्कर्ष और अपवर्ग तो सर्वथा असम्भव ही है। अधिवक्ता, न्यायाधीश, चिकित्सक, वास्तुशास्त्री, शिक्षक, पुरोहित, मन्त्री, ज्योतिषी आदिको ब्राह्मणोंका विकल्प माना जा सकता है। शासकों, सैनिकों, रक्षकोंको क्षत्रियोंका विकल्प माना जा सकता है। उद्योगपतियों, व्यापारियों, गोपालको, कृषकोंको वैश्योंका विकल्प माना जा सकता है। वस्तुनिर्माताओं, सेवकोंको शूद्रोंका विकल्प माना जा सकता है। परम्परानिरपेक्ष इनके निर्माणमें अपेक्षित समय और सम्पत्तिके अपव्यय, परम्पराप्राप्त दायित्वनिर्वाहके अनुकूल संस्कारका अभाव, शिक्षा, रक्षादि विभागोंमें व्यक्तिकी अधिकता और न्यूनताके कारण असन्तुलन तथा वर्णसङ्करता और कर्मसङ्करताके कारण सम्भावित दोषपुञ्जका आकलनकर परम्पराप्राप्त वर्णव्यवस्थाका महत्त्व सुगमतापूर्वक समझा जा सकता है।

"सबमें सबका अधिकार" - सुननेमें रोचक अवश्य है, परन्तु व्यवहारमें अधिकारसीमा और योग्यतासीमामें कर्मको बाँधनेकी बाध्यता भी प्रत्यक्ष है। उसमें भी कुलपरम्परा जुड़ जानेपर प्रशस्ति अवश्य है। आज भी खानदानी वैद्य, खानदानी चिकित्सक, खानदानी वकील, सात पुस्तका जौहरी, कुलपरम्परासे ज्योतिषी, कुलपरम्परासे राजनेता, वंशपरम्परासे हलुवायी, वंशपरम्परासे नायी, वंश परम्परासे व्यापारी कहनेपर उत्कर्षका ही बोध होता है। जब चार -पाँच पाढ़ीमें भी यह उत्कर्ष प्राप्त हो जाता है, तब कल्पारम्भसे प्राप्त परम्परामें हीनताकी दृष्टिका क्या कारण है? कहनेकी आवश्यकता न होगी कि कुलपरम्परामें आबद्ध विवाह तथा वेदपाठादिमें अधिकार - अनधिकारकी प्राप्त लक्ष्मणरेखा ही खटकनेवाली है। परन्तु ब्राह्मणादि भी तो विवाह, सुनिश्चित यज्ञादि और जीविकोपार्जनादिकी सीमामें निबद्ध हैं। यह

निबद्धता ही तो परम्पराको प्रतिष्ठित रखनेवाली रेखा है। जब ब्राह्मणोचित शील, चित्तकी शुद्धि और समाधि और उससे सुलभ शान्तिरूपा सिद्धिमें,सिद्धिसुलभ सुखमें और तत्त्वबोधसुलभ मुक्तिरूपा परा गतिमें सभी अधिकृत हैं, अर्थात् सनातन वर्णव्यवस्थामें फलचौर्य नहीं है, तब विवाह और वेदपाठादिको लेकर प्राप्त परिताप व्यर्थ ही है। इसके विपरीत , लोक - परलोक और मोक्षसे सम्बद्ध उस लीकका त्याग कर देनेपर उच्छृङ्खलप्रवृत्तिका निरोध, वैराग्य, चित्तकी निर्मलता, निश्चलता, सद्भाव, शान्ति , सुख और सद्गति सर्वथा असम्भव ही है। -

"स्वे स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं लभते नर:।"
(श्रीमद्भगवद्गीता १८.४५)

"यत: प्रवृत्तिभूर्तानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव:।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता १८.४६)

"नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयत:. शान्तिरशान्तस्य कुत: सुखम्।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता २.६६)

अभिप्राय यह है कि जिस मृग्य (अनुसन्धेय) सर्वेश्वरसे प्राणियोंकी अभिव्यक्ति और कर्मोंमें प्रवृत्ति सम्भव है, उसीके प्रति स्ववर्णाश्रमोचित सम्पादित कर्म समर्पित होने योग्य है। कारण यह है कि प्रशस्त कर्मोंकी सिद्धि जिन वेदोंसे होती है, वे वेद परमाक्षर परमेश्वरसमुद्भूत हैं। अनुष्ठित कर्म अपूर्वसंज्ञक यज्ञादिके द्वारसे पर्जन्य, अन्न, प्रजा और पुनर्भवमें हेतु है। इस प्रकार शास्त्रविहित प्रशस्त कर्म भी काम्य होनेपर अधोमुख प्रवाहके कारण प्रजा और पुनर्भवमें हेतु हैं। इसके विपरीत कर्मासक्ति, फलासक्ति, अहङ्कृतिको शिथिलकर धृत्युत्साहपूर्वक वेदसिद्ध स्ववर्णाश्रमोचित अनुष्ठित भगवदर्थ ऊर्ध्वमुख कर्म चित्तशुद्धि और समाधिके अनन्तर वेदके द्वारसे परमाक्षर सनातन शब्दब्रह्मात्मक ब्रह्मके अधिगममें हेतु होता है। शास्त्रविधिका परित्यागकर अनुष्ठित कर्म द्यूत, मद्य, अश्लील मनोरञ्जन, कलहादिरूप अनर्थमें विनियुक्त अर्थ

कामतक सीमित रहकर प्रज्ञाशक्ति और प्राणशक्तिका अपहारक सिद्ध होता है, न कि अभ्युदय और निःश्रेयसप्रद।

वेदोक्त प्रवृत्तिमार्गका पर्यवसान पुनर्भव है। वेदोक्त निवृत्तिमार्गका पर्यवसान परब्रह्म है। प्रवृत्तिका पर्यवसान निवृत्तिमें हो सके और निवृत्तिका पर्यवसान निर्वृति (पूर्ण उपरामता, मुक्ति) में हो सके, इसका एकमात्र उपाय सनातन वेदसम्मत मार्ग है। -

"स्मृत्वा कालपरीमाणं प्रवृत्तिं ये समास्थिताः।
दोषः कालपरीमाणे महानेष क्रियावताम्।।"
(महा० शान्तिपर्व ३४०. १३)

"जो लोग नियत कालतक प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि फलोंको लक्ष्य करके प्रवृत्तिमार्गका आश्रय लेते हैं, उन कर्मपरायण पुरुषोंके लिये यही सबसे बड़ा दोष है कि वे कालकी सीमामें आबद्ध रहकर ही कर्मका फलोपभोग करते हैं ।। "

"निर्वाणं सर्वधर्माणां निवृत्तिः परमा स्मृता।
तस्मान्निवृत्तिमापन्नश्चरेत् सर्वाङ्गनिर्वृतः।।"
(महा० शान्तिपर्व ३३९, ६७)

"सर्व कर्मोंसे उपरत हो जाना ही परमा निवृत्ति कही गयी है। अतः निवृत्तिसम्पन्न पूर्ण निर्वृत अर्थात् परम उपराम सुखरूप होकर विचरण करे।।"

"चेतसो यदकर्तृत्वं तत्समाधानमीरितम्।
तदेव केवली भावं सा शुभा निर्वृतिः परा।।"
(महोपनिषत् ४.७)

"चित्तका जो अकर्तृत्व है, वही समाधि कहलाता है। वही केवलावस्था है। वही परम कल्याणरूपा परा शान्ति कहलाती है।।"

"यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति।
एकीभूतः परेणाऽसौ तदा भवति केवलः।।"
"यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः।
मायामात्रं जगत्कृत्स्नं तदा भवति निर्वृतिः।।"
(श्रीजाबालदर्शनोपनिषत् १०.११-१२)

श्लोक : १६

"जब समाधिमें प्रतिष्ठित पुरुष परमात्मासे एकीभूत होकर स्वयंसे भिन्न किसी भी प्राणीको नहीं देखता, तब वह केवल परमात्मरूपसे प्रतिष्ठित होता है।।"

"जब योगी केवल आत्मस्वरूप स्वयंको ही परमार्थ सत्स्वरूप देखता है और सम्पूर्ण जगत् को मायाका विलासमात्र मानता है, तब उसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है।।"

उक्त रीतिसे विचार करने पर संसृतिचक्रनिवारणदक्ष मानवका महत्त्व सर्वोपरि है।

जिन देशोंमें ब्राह्मण और परिव्राजकोंका आध्यात्मिक मार्गदर्शन सुलभ न होनेके कारण तथा अभ्युदय तथा निःश्रेयसके अनुरूप आचाररूप क्रियालोपके कारण सनातन जातिधर्म और कुलधर्मका लोप सहस्रों वर्ष पूर्व हो गया उन देशवासियोंका अर्थ, कामपरायण होना तथा केवल बौद्धिक धरातलपर नैतिकता और देहातिरिक्त आत्माके अस्तित्वमें आस्थान्वित होना अथवा देहात्मवादके वशीभूत होकर पश्वादितुल्य जीवन व्यतीत करना या मानवोचित शील, संयमादिसे च्युत होकर अराजक हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु भारत तथा नेपालादिमें विद्वेष और अज्ञानवश विकासके नामपर गोवंश, विप्र, वेद, सती - साध्वी - पतिव्रता, सत्यवादी, निर्लोभ और दानशील तथा धर्म, काम, अर्थ, मोक्षसाधक पृथिवीके धारक सनातनमार्गका योजनाबद्ध विलोपका अभियान चलाना मानवताके लिए कलङ्क तथा पृथिवीके लिए अभिशाप है।-

"गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धायते मही।।"
(स्कन्दपुराण - काशीखण्ड २.९०)

"गोवंश, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, निर्लोभ और दानशील - इन सातोंके द्वारा पृथिवी धारण की जाती है।।"

"विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः।
श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः।।"
(श्रीमद्भागवत १०.४.४१)

श्लोक : १६

"ब्राह्मण, गौ, वेद, तप, सत्य, इन्द्रियदमन, मनोनिग्रह, श्रद्धा, दया, तितिक्षा और यज्ञ -ये ग्यारह श्रीहरिके शरीर हैं। अर्थात् सर्वहितप्रद भगवद्रूप हैं।।"

"ब्राह्मणानां मतिर्वाक्यं कर्म श्रद्धां तपांसि च।
धारयन्ति महीं द्यां च शैक्यो वागमृतं तथा।।"
(महाभारत - शान्तिपर्व ३४२.१७)

"जैसे शैक्य (छींका) दुग्ध, दधि - आदि गोरसको धारण करता है ; वैसे ही ब्राह्मणोंकी बुद्धि , लिपिबद्ध वाक् (ग्रन्थाकार वाक्य), उनके द्वारा अनुष्ठित कर्म, उनकी ईश्वर तथा धर्मादि सनातन मानविन्दुओंमें आस्था, उनके द्वारा निष्पन्न विविध तप और उनका वचनामृत पृथ्वी तथा स्वर्गका धारक है।। "

"धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च।
अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः।।"
(महाभारत अनुशासनपर्व १५०.४१)

"धर्म और काम तथा सर्व साधक काल और अर्थसाधक वसु तथा वासुकि एवम् मोक्षप्रद अनन्त और कपिल - ये सात पृथिवीको धारण करनेवाले तत्त्व हैं।।"

इनमें पुरुषार्थचतुष्टयके अन्तर्गत धर्म और कामका साक्षात् समुल्लेख है। वसु और वासुकि अर्थके साधक हैं। वनदुर्गोपनिषत् में "**अधस्ताद्दिशि वासुकिः**" की उक्तिसे वासुकिको पतालका अधिपति माना गया है। अनन्त और कपिल मोक्षप्रदा ब्रह्मविद्याके उपदेशक आचार्य हैं। काल सर्व पुरुषार्थ - साधक है। कालका तिरस्कार सर्वनाशका सूचक है।

स्वयंको मानवताके पक्षधर माननेवालोंको यह पता नहीं है कि नियन्त्रित काम, क्रोध और लोभका नाम ही मानवता है। आज विश्वमें मानवताके नामपर जो भी अभियान चल रहा है, वह अनियन्त्रित काम, क्रोध और लोभका ताण्डवनृत्यमात्र है। मानवताके तथाकथित पक्षधरोंको यह पता नहीं है कि निबन्धक गुण तथा कर्मके शोधनकी अमोघविधा ही सनातन वर्णव्यवस्था है।

श्लोक : १६

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहरूप मानवधर्मकी क्रमिक सहिष्णुता सनातनपरम्पराप्राप्त वर्णाश्रमधर्मसे ही सम्भव है। इसकी उपेक्षा अहिंसाके नामपर हिंसाका, सत्यके नामपर असत्यका, अस्तेयके नामपर स्तेयका, ब्रह्मचर्यके नामपरपर व्यभिचारका और अपरिग्रहके नामपर परिग्रहका ताण्डव नृत्य है। इसकी परिपुष्टि वर्णाश्रमनिरपेक्ष भूतपूर्व और वर्तमान व्यक्ति, वर्ग तथा समाज है। प्रवृत्तिको निवृत्तिमें और निवृत्तिको निर्वृति (परमानन्दस्वरूपा मुक्ति)में विनियुक्त करनेवाली सनातनविधा सनातन वर्णव्यवस्था है। सबको स्वल्प समय और स्वल्प आयाससे सदा शिक्षा, रक्षा, न्याय, अर्थ और सेवा, स्वच्छतादिकी सन्तुलित व्यवस्था तथा शुभगति और निःश्रेयस प्रदान करनेवाला सनातनधर्म है।

विकासके नामपर पर्वत, नदी, वनका विनाश और पृथिवी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाशका शोषण और दूषण , सात्त्विकताका विलोप तथा बहिर्मुखता एवम् परवशताकी पराकाष्ठा मानवताके लिए अभिशाप है।

शील, सम्पत्ति, स्नेह और समयका शोषण आधुनिक शिक्षा, न्याय और मनोरञ्जनकी विधाका अनिवार्य परिणाम है। शील, स्नेह, शुचिता, सुन्दरता, सुमति और सम्पत्ति - सनातनजीवनपद्धतिसुलभ उपहार हैं। आधुनिक शिक्षा और जीविकाकी विधासे - संयुक्त परिवार, सनातन कुलधर्म और जातिधर्मका विघटन और विलोप सर्वानुभवसिद्ध है। धर्म, अध्यात्म, योग, विकास और उदारतादिके नामपर सनातन मानविन्दुओंपर आघात भयङ्कर अभिशाप है। सनातनपरम्पँराप्राप्त भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, उत्सव - त्योहार, रक्षा, सेवा, न्याय और विवाहादिकी व्यवस्था दार्शनिक, वैज्ञानिक और व्यवहारिक धरातलपर सर्वोत्कृष्ट है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और नीतिप्रतिपादक वैदिक वाङ्मयका महत्त्व आज भी विश्वस्तरपर विदित है। हिन्दुओंके हृदयमें उसके प्रति अनास्था विदेशी षड्यन्त्रका अङ्ग है। श्रीनारद, सनकादि, वसिष्ठ, बृहस्पति, विश्वामित्र, अगस्त्य, दधीचि, परशुराम, व्यास, शङ्कर, रामदास, चाणक्य, रघु, दिलीप, प्रियव्रत, जनक, अश्वपति, राम, युधिष्ठिर, सुधन्वा, विक्रमादित्य, शिवाजी, महाराणाप्रताप, गोविन्दसिंह, सुभाष, तुलाधार, धर्मव्याध और दस्युराज

श्लोक : १६

ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियान्त:करणचतुष्टयं चतुर्दशकरणयुक्तं जाग्रत्। अन्त:करणचतुष्टयैरेव संयुक्त: स्वप्न:। चित्तैककरणा सुषुप्ति:। केवलजीवयुक्तमेव तुरीयमिति।।" (शारीरकोपनिषत् ५)

"जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय -चार प्रकारकी अवस्था हैं। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और अन्त:करणचतुष्टयरूप चौदहकरणयुक्त **जाग्रत्** है। अन्त:करणचतुष्टयसे ही संयुक्त **स्वप्न** है। चित्तरूप एक करणवाली **सुषुप्ति** है। केवल जीवयुक्त ही **तुरीय** है। तीन अवस्थाओंकी दृष्टिसे आत्मा तुरीय है। चार अवस्थाओंकी दृष्टिसे आत्मा तुरीयातीत है। अथवा तुरीयका अर्थ चतुर्थ है। तीन अवस्थाओंकी अपेक्षासे तीनोंमें अनुगत आत्मा ही तुरीय है। यह तथ्य "**माया सङ्ख्या तुरीयम्**" (**माण्डूक्यकारिकाशाङ्करभाष्य मङ्गलाचरण**), "**तुरीयं त्रिषु सन्ततम्** " (**श्रीमद्भागवत ११.२५.२०**) के अनुशीलनसे सिद्ध है।

बृहदारण्यक उपनिषत् ४.३ के अनुसार स्वप्नमें आत्माकी स्वप्रकाशता स्फुट रीतिसे अभिव्यक्त होती है। उस समय जीव हिता नामकी सूक्ष्मतम नाडीसे समबद्ध होता है। स्पप्नस्थ जीव वासनाकी प्रगल्भतासे मार्ग, वाहन, पुष्करिणी आदि विहारसामग्रियोंका सर्जन करता है। स्वप्नमें जीव देवोपम भोग्यवस्तुओंका सर्जनकर आनन्दाभिव्यञ्जक मनसहित बुद्धिसे तादात्म्यापन्न रहता हुआ प्रिय, मोद, प्रमोदका उपभोग करता है।

श्रमसंव्याप्त इन्द्रियोंके मनमें विलीन होनेपर भी देहेन्द्रियोंकी प्रतीति और सर्वविषयानुभूति **स्वप्न** है। अतएव स्वप्नजगत् आकाशकुसुम और उद्यानकुसुम दोनोंसे विलक्षण सिद्ध है। जिस प्रकार जाग्रत्में विविधवासनावासित मनका सङ्कल्प मनोवैभवमात्र है, उसीप्रकार स्वप्नमें परिलक्षित सर्ववस्तुवैभव विविध संस्कारसमवेत मनोरथैश्वर्यमात्र है। कर्मवासित और कर्मानुरूप सत्त्वादिगुणसमाच्छादित मन स्वप्नाभिव्यञ्जक और सुखदु:खप्रदायक है। वात, पित्त, कफ तथा सत्त्व, रजस्, तमस् की प्रगल्भतासे स्पप्नगत विविध शरीरोंकी प्राप्ति होती है। जाग्रत्में आह्लादपूर्ण इन्द्रियोंके योगसे प्राप्त मनोरथरूप सङ्कल्पकी

• अवस्थात्रयसाक्षी

जब जीव प्राणस्पन्दनयुक्त और आदित्यादि अनुग्रह - सम्प्राप्त पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कारसंज्ञक चतुर्दश बाह्याभ्यन्तर प्रचार - प्रसारयुक्त करणोंसे स्थूल शब्दादि विषयोंको उपलब्ध करता है, तब **जाग्रत्** अवस्था मानी जाती है। प्राणस्पन्दनयुक्त चन्द्रादि अनुग्रहसम्प्राप्त विषयवासनासहित केवल अन्तःकरणचतुष्टयसे शब्दादिके बिना ही वासनामय शब्दादि विषय जब उपलब्ध होते हैं, तब **स्वप्ना**वस्था मानी जाती है। चतुर्दश करणोंकी उपरामतासे विशेषविज्ञानके अभावकी दशामें जीवकी **सुषुप्ति** मानी जाती है। -

''मनआदिचतुर्दशकरणैः पुष्कलैरादित्याद्यनुगृहीतैः शब्दादीन्विषयान्स्थूलान्यदोपलभते तदात्मानो जागरणम्, तद्वासनासहितैश्चतुर्दशकरणैः शब्दाद्यभावेऽपि वासनामयाञ्शब्दादीन्यदोपलभते तदात्मनः स्वप्नम्। चतुर्दशकरणोपरमाद्विशेष - विज्ञानाभावाद्यदा शब्दादीन्नोपलभते तदात्मनः सुषुप्तम्।।" (सर्वसारोपनिषत् १)

अभिप्राय यह है कि विषय और उपलब्धिकी अवस्था **जाग्रत्** है। विषयके बिना ही विषयोपलम्भ **स्वप्न** है। आत्मचैतन्यसे अधिष्ठित अर्द्धनिद्रित मनका वासनाकी प्रगल्भतासे ग्राह्य - ग्राहक भावको प्राप्त होना, **स्वप्न** है। उचित देश, कालके बिना ही शुक्तिरजत, रज्जुसर्पादिवत् दृश्यप्रपञ्चका स्फुरण स्वप्नजगत्को सत्य नहीं सिद्ध होने देता।- **''स्वाप्ना भावा : सत्या न भवन्ति, उचितदेशादिशून्यत्वात्, रजतभुजङ्गादिवत्।" (माण्डूक्यकारिका - शाङ्कर - भाष्य - आन्दगिरिकृता टीका २.१८)** । विषय और उपलब्धिकी बीजावस्था **सुषुप्ति** है। उपलब्धिमात्र **आत्मा** है।

विवक्षावशात् जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयरूप चार अवस्थाओंका विभाग इस प्रकार है। -

''जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयमिति चतुर्विधा अवस्थाः।

श्लोक : १६

ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियान्त:करणचतुष्टयं चतुर्दशकरणयुक्तं जाग्रत्। अन्त:करणचतुष्टयैरेव संयुक्त: स्वप्न:। चित्तैककरणा सुषुप्ति:। केवलजीवयुक्तमेव तुरीयमिति।।" (**शारीरकोपनिषत् ५**)

"जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय -चार प्रकारकी अवस्था हैं। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और अन्त:करणचतुष्टयरूप चौदहकरणयुक्त **जाग्रत्** है। अन्त:करणचतुष्टयसे ही संयुक्त **स्वप्न** है। चित्तरूप एक करणवाली **सुषुप्ति** है। केवल जीवयुक्त ही **तुरीय** है। तीन अवस्थाओंकी दृष्टिसे आत्मा तुरीय है। चार अवस्थाओंकी दृष्टिसे आत्मा तुरीयातीत है। अथवा तुरीयका अर्थ चतुर्थ है। तीन अवस्थाओंकी अपेक्षासे तीनोंमें अनुगत आत्मा ही तुरीय है। यह तथ्य "**माया सङ्ख्या तुरीयम्**" (**माण्डूक्यकारिकाशाङ्करभाष्य मङ्गलाचरण**), "**तुरीयं त्रिषु सन्ततम्** " (**श्रीमद्भागवत ११.२५.२०**) के अनुशीलनसे सिद्ध है।

बृहदारण्यक उपनिषत् ४.३ के अनुसार स्वप्नमें आत्माकी स्वप्रकाशता स्फुट रीतिसे अभिव्यक्त होती है। उस समय जीव हिता नामकी सूक्ष्मतम नाडीसे समबद्ध होता है। स्पप्नस्थ जीव वासनाकी प्रगल्भतासे मार्ग, वाहन, पुष्करिणी आदि विहारसामग्रियोंका सर्जन करता है। स्वप्नमें जीव देवोपम भोग्यवस्तुओंका सर्जनकर आनन्दाभिव्यञ्जक मनसहित बुद्धिसे तादात्म्यापन्न रहता हुआ प्रिय, मोद, प्रमोदका उपभोग करता है।

श्रमसंव्याप्त इन्द्रियोंके मनमें विलीन होनेपर भी देहेन्द्रियोंकी प्रतीति और सर्वविषयानुभूति **स्वप्न** है। अतएव स्वप्नजगत् आकाशकुसुम और उद्यानकुसुम दोनोंसे विलक्षण सिद्ध है। जिस प्रकार जाग्रत्में विविधवासनावासित मनका सङ्कल्प मनोवैभवमात्र है, उसीप्रकार स्वप्नमें परिलक्षित सर्ववस्तुवैभव विविध संस्कारसमवेत मनोरथैश्वर्यमात्र है। कर्मवासित और कर्मानुरूप सत्त्वादिगुणसमाच्छादित मन स्वप्नाभिव्यञ्जक और सुखदु:खप्रदायक है। वात, पित्त, कफ तथा सत्त्व, रजस्, तमस् की प्रगल्भतासे स्पप्नगत विविध शरीरोंकी प्राप्ति होती है। जाग्रत्में आह्लादपूर्ण इन्द्रियोंके योगसे प्राप्त मनोरथरूप सङ्कल्पकी

सिद्धि आत्मचैतन्यसे अधिष्ठित सर्वभवनसामर्थ्यसम्पन्न मनके योगसे स्वप्नमें परिलक्षित होती है। -

''इन्द्रियाणां श्रमात् स्वप्नमाहु: सर्वगतं बुधा:।
मनसस्त्वप्रलीनत्वात् तत् तदाहुर्निदर्शनम्।।
कार्ये व्यासक्तमनस: सङ्कल्पो जाग्रतो ह्यपि।
यद्वन्मनोरथैश्वर्यं स्वप्ने तद्वन्मनोगतम्।।
संस्काराणामसङ्ख्यानां कामात्मा तदवाप्नुयात्।
मनस्यन्तर्हितं सर्वं स वेदोत्तमपूरुष:।।
गुणानामपि यद्येतत् कर्मणा चाप्युपस्थितम्।
तत् तच्छंसन्ति भूतानि मनो यद्भावितं यथा।।
ततस्तमुपसर्पन्ति गुणा राजसतामसा:।
सात्त्विका वा यथायोगमानन्तर्यफलोदयम्।।
तत: पश्यन्त्यसम्बुद्ध्या वातपित्तकफोत्तरान्।
रजस्तमोगतैर्भावैस्तदप्याहुर्दुरत्ययम्।।
प्रसन्नैरिन्द्रियैर्यद् यत् सङ्कल्पयति मानसम्।
तत् तत् स्वप्नेऽप्युपगते मनो हृष्यन्निरीक्षते।।
व्यापकं सर्वभूतेषु वर्ततेऽप्रतिघं मन:।
आत्मप्रभावात् विद्यात् सर्वा ह्यात्मनि देवता:।।''

(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २१६.६-१३)

और भी -

''इन्द्रियाणां व्युपरमे मनोऽव्युपरतं यदि।
सेवते विषयानेव तं विद्यात् स्वप्नदर्शनम्।।''

(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २७५.२४)

''इन्द्रियोंके उपरत (तमसाच्छन्न) हो जानेपर भी यदि मन अज्ञानमें निलीन न होकर वासनाप्रसूत विषयोंका ही सेवन करता है तो उसे स्वप्नदर्शन समझना चाहिये।।''

श्लोक : १६

“नातिप्रसुप्तः पुरुषः सफलानफलांस्तथा।
इन्द्रियेशेन मनसा स्वप्नान् पश्यत्यनेकधा।।”
“दृष्टं श्रुतानुभूतं च प्रार्थितं कल्पितं तथा।
भाविकं दोषजं चैव स्वप्नं सप्तविधं विदुः।।”
“तत्र पञ्चविधं पूर्वमफलं भिषगादिशेत्।
दिवास्वप्नमतिह्रस्वमतिदीर्घं च बुद्धिमान्।।”
“दृष्टः प्रथमरात्रे यः स्वप्नः स्वल्पफलो भवेत्।
न स्वपेद् यं पुनर्दृष्ट्वा स सद्यः स्यान्महाफलः।।”
“अकल्याणमपि स्वप्नं दृष्ट्वा तत्रैव यः पुनः।
पश्येत्सौम्यं शुभाकारं तस्य विद्याच्छुभं फलम्।।”
(चरकसंहिता, इन्द्रियस्थानम् ५.४२-४६)

“जब मनुष्य पूर्णनिद्राकी स्थितिमें नहीं होता, तब वह इन्द्रियोंके स्वामी मनकी सहायतासे अनेक प्रकारके सफल अथवा विफल स्वप्नोंको देखता है।।”

“दृष्ट (जाग्रत् में देखा हुआ), श्रुत (सुना हुआ), अनुभूत, प्रार्थित (देवादिसे वाञ्छित), कल्पित (इच्छित), भाविक (भविष्यसूचक) और दोषज (वात, पित्त, कफ सूचक तथा मल, मूत्रादिके वेगका द्योतक) -ये सात प्रकारके स्वप्न होते हैं।।”

“उक्त सात प्रकारके स्वप्नोंमें प्रथम पाँच (दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित) प्रकारके स्वप्न निष्फल होते हैं, ऐसा वैद्य स्वप्नदर्शकको बतावें। दिनमें देखा गया, मन्दस्मृतिका आधायक तथा सम्मिश्रणको प्राप्त स्वप्न निष्फल होते हैं।।”

“जो स्वप्न रात्रिके प्रथम प्रहरमें देखा गया हो, वह अल्पफल और बलवाला होता है। जिस स्वप्नको देखकर न सोया जाय, वह तत्काल पूर्ण फ़लप्रद होता है।।”

“अशुभ स्वप्नको देखनेके बाद यदि शुभ स्वप्न दिखलायी दे तो उसका शुभ फल ही समझना चाहिये।।”

श्लोक : १६

"**अच्युताय नमः**", "**अनन्ताय नमः**","**गोविन्दाय नमः**" का जप करते हुए सो जानेपर अशुभ स्वप्न नहीं होता। सम्भावित और सम्प्राप्त सर्व विघ्नों तथा रोगोंका निवारण और सर्वविध उत्कर्षकी सिद्धि अच्युत, अनन्त तथा गोविन्द, शिव, गणेशादिके मङ्गलप्रद नामोंके स्मरण, जप और सङ्कीर्तनके अमोघ प्रभावसे सुनिश्चित है। -

"**अच्युतानन्तगोविन्द-नामोच्चारणभेषजात् ।**
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।"
(नारदपुराणपूर्वभाग ३४.६१)

ध्यान रहे -

"**इन्द्रियाणां स्वकर्मेभ्यः श्रमादुपरमो यदा।**
भवतीन्द्रियसंत्यागादथ स्वपिति वै नरः।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २७५.२३)

"जब अपने - अपने कर्मोंसे थककर बाह्याभ्यन्तर करणग्रामरूप इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं, तब इन्द्रियोंके संत्यागसे जीव सुषुप्तिलाभ करता है।।"

बृहदारण्यकोपनिषत् ४.३. २१ के अनुशीलनसे यह सिद्ध होता है कि प्राणवल्लभा प्रियासे सम्परिष्वक्त पुरुष बाह्याभ्यन्तर सम्वेदनशून्य आनन्दनिमग्न परिलक्षित होता है। तद्वत् प्राज्ञसंज्ञक आत्मासे सम्परिष्वक्त पुरुष सुषुप्तिमें बाह्याभ्यन्तर सम्वेदनशून्य आनन्दनिमग्न अवशिष्ट रहता है। -

"**तद्यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरमेवायं पुरुषः प्रज्ञानेनात्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्।**"

उस दशामें वह वर्णाश्रमादि स्थूलशरीरके धर्मोंसे तथा सूक्ष्मदेहसम्भव भूख -प्यास, शीत -उष्ण, मान -अपमान, हर्ष -विषाद, काम - क्रोध, लोभ, भयादिके सम्वेदनोंसे शून्य होता है। वह अन्तःकरण -सम्भूत सङ्कल्प, विकल्प, निश्चय,स्मरण,गर्व, वेदादिविज्ञानसे अतीत होता है। परन्तु उसकी स्वरूपभूता विज्ञानशक्तिका विलोप उसी प्रकार असम्भव है ; जिस प्रकार,भास्यनिरपेक्ष

भानुकी प्रकाशरूपताका विलोप असम्भव है। स्फटिक और सूर्यसदृश आत्मदेव स्वच्छस्वभाव और स्वप्रकाश है। जिस प्रकार स्फटिक और सौरालोक हरित, नील, पीत तथा लोहितादि उपाधिसंसर्गसे तद्रूप उद्भासित होता है; उसी प्रकार नेत्र, श्रोत्र, घ्राण, बुद्धि आदि उपाधियोगसे दृष्टि, श्रुति, घ्राति, मतिसंज्ञा - सम्प्राप्त विज्ञानस्वरूप आत्मदेव व्यवहारभूमिमें द्रष्टा, श्रोता, घ्राता, मन्ता आदिरूपोंमें परिलक्षित होता है। **''न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद् द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत्।...''** **(बृहदारण्यकोपनिषत् ४.३.२३...)**। सुषुप्तिमें अहम् -पर्यन्त करणग्रामका अज्ञानमें विलय मान्य है। -**''नाहं खल्वयं भगव सम्प्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति''** **(छान्दोग्योपनिषत् ८.११.२)**,**''अहमि च प्रसुप्ते''** **(श्रीमद्भागवत ११.३.३९)**

पैङ्गलोपनिषत् २.१ के अनुसार कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियरूप बाह्येन्द्रियकी प्रधानतासे आपादमस्तक व्याप्त जीव कृषि, श्रवणादि अखिलक्रियाका निर्वाह और कर्मार्जित लोक - लोकान्तरगत फलोपभोग **जाग्रत्** अवस्थामें करता है। व्यवहारसे श्रान्त और उपरत जीव बाह्य करणकी उपरामताकी दशामें जाग्रत् - संस्कारके प्रभावसे वासनात्मक जगद्वैचित्र्यको स्वप्रकाशताकी महिमासे उद्भासित करता हुआ ईप्सितका स्वयं उपभोग **स्वप्न**में करता है। जाग्रत् के तुल्य स्वप्नके व्यवहारसे भी उपरत जीव आज्ञानप्रविष्ट चित्तके योगसे स्वानन्दका उपभोग **सुषुप्ति**में करता है। ध्यातृ और ध्यानका परित्यागकर निवातस्थित दीपवत् ध्येयैकगोचर चित्त **समाधि** लाभ करता है। **वराहोपनिषत्** के अनुसार, बुद्धिका पूर्णविकास **जागर** है। बुद्धिका सूक्ष्मनाडियोंमें सञ्चार **स्वप्न** है। बुद्धिका अज्ञानमें विलय **निद्रा** है। आत्मा विकार, सञ्चार और अज्ञानरहित है। अतः जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिसे रहित है। -

''अज्ञाने बुद्धिविलये निद्रा सा भण्यते बुधैः।
विलीनाज्ञानतत्कार्ये मयि निद्रा कथं भवेत्।।
बुद्धेः पूर्णविकासोऽयं जागरः परिकीर्त्यते।
विकारादिविहीनत्वाज्जागरो मे न विद्यते।।

श्लोक : १६

सूक्ष्मनाडिषु सञ्चारो बुद्धेः स्वप्नः प्रजायते।
सञ्चारधर्मरहिते मयि स्वप्नो न विद्यते।।"
(वराहोपनिषत् २.५९ - ६१)

जागरादि अवस्थाएँ बुद्धिवृत्तिरूपा होनेके कारण दृश्य हैं। आत्मदेव उनका अलिप्त साक्षी है। -

"**बुद्धेः जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः।**
ता येनैवानुभूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः।।"
(श्रीमद्भागवत ७.७.२५)

"जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति - ये तीनों बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं। इन वृत्तियोंका जिनके द्वारा अनुभव होता है - वही इनसे अतीत, इनका साक्षी परमात्मा है।।"

साङ्ख्यशैलीमें महत्तत्त्वात्मिका बुद्धिका उपादान अव्यक्त, प्रकृति या अज्ञान है। कारण शरीर अज्ञानात्मक है। अतः बुद्धिका अज्ञानमें विलय सुषुप्ति है। वेदान्तशैलीमें बुद्धिको भौतिक माननेपर भी उसकी सात्त्विकता पूर्वोक्तरीतिसे सिद्ध है। अज्ञानज तमस् से उसका आच्छादन निद्रा है। तमस् और अज्ञानमें एकरूपताके कारण बुद्धिका अज्ञानमें विलय निद्रा है। -"**तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्व देहिनाम्। प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।" (श्रीमद्भगवद्गीता १४.८), "तमःशब्देनाविद्या" (त्रिपाद्विभूति-महानारायणोपनिषत् ४.१)** के अनुशीलनसे उक्त तथ्य सिद्ध है।

मायामोहित जीव शरीरासक्त होकर कर्म और ज्ञानका सम्पादन करता हुआ स्त्री, अन्न, पानादि विविध विचित्र स्थूल भोगोंसे जाग्रत् में तृप्त होता है। स्वप्नमें जीव अपनी ही वासनात्मिका अविद्यारूपा मायासे परिकल्पित शरीर और संसारमें विहरण करता हुआ सुख - दुःखका भोक्ता होता है। सुषुप्तिमें स्थूल, सूक्ष्म -दृश्यप्रपञ्चके तमोगुणसे अभिभूत होनेपर तथा अज्ञानमें बुद्धिका विलय होनेपर चिन्मयी अविद्यावृत्तिके योगसे महदानन्दरूप स्वरूपका भोक्ता होता है। -

"**स एव माया परिमोहितात्मा शरीरमास्थाय करोति सर्वम्।**
स्त्रियन्नपानादिविचित्रभोगैः स एव जाग्रत्परितृप्तिमेति।।

स्वप्ने स जीवः सुखदुःखभोक्ता स्वमायया कल्पितजीवलोके।
सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति।।"
(कैवल्योपनिषत् १२,१३)

"सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमसावृते।
स्वरूपं महदानन्दं भुङ्क्ते विश्वविवर्जितः।।"
(वराहोपनिषत् २.६२)

उक्त रीतिसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति बुद्धिगत विकृतियाँ हैं। साधिष्ठान साभास बुद्धि प्रज्ञा है। जाग्रत् में बहिर्मुख प्रज्ञामें तादात्म्यापत्तिके कारण जीव बहिष्प्रज्ञ माना जाता है। स्वप्नमें अन्तर्मुख प्रज्ञामें तादात्म्यापत्तिके कारण जीव अन्तःप्रज्ञ कहा जाता है। सुषिुप्तिमें घनीभूता प्रज्ञामें तादात्म्यापत्तिके कारण जीव घनप्रज्ञ कहा जाता है। -

"बहिष्प्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्तःप्रज्ञस्तु तैजसः।
घनप्रज्ञस्तथा प्राज्ञ एक एव त्रिधा स्मृतः।।"
(माण्डूक्यकारिका १.१)

माण्डूक्योपनिषत् ब्रह्मात्मतत्त्वके अभिव्यञ्जक संस्थानके रूपमें जागरित, स्वप्न और सुषुप्तिरूप त्रिविध अवस्थाओंका प्रतिपादन करती है। इसके अनुसार चरण, कटिप्रदेश, मूर्धा, घ्राण, हृदय, मुख और नेत्रस्थानीय क्रमशः पृथिवी - पानी - प्रकाश - पवन - आकाश - अग्नि तथा सूर्यसंज्ञक सप्ताङ्गकी विद्यमानता, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च प्राण और अन्तःकरण चतुष्टयरूप उन्नीस करणात्मक सूक्ष्मशरीरकी बाह्याभ्यन्तर सक्रियता तथा प्रज्ञाकी बहिर्मुखता और स्थूल वस्तुओं एवम् विषयोंकी भोग्यरूपता **जाग्रत्** है। जाग्रत् का अभिमानी (जाग्रत् में तादात्म्यापन्न) आत्माका आरोहक्रमसे प्रथम औपाधिक स्वरूप जागरितस्थान, बहिष्प्रज्ञ, एकोनविंशति (उन्नीस) -मुख, सप्ताङ्ग, स्थूलभुक्, विश्वात्मा **वैश्वानर** है। -

"जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः।।" (माण्डूक्योपनिषत् ३)

चरण, कटिप्रदेश, मूर्धा, घ्राण, हृदय, मुख और नेत्रस्थानीय क्रमशः

श्लोक : १६

पृथिवी - पानी - प्रकाश - पवन - आकाश - अग्नि - सूर्यसंज्ञक सप्ताङ्गकी मनोमयता तथा अन्तःकरण चतुष्टयकी पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च प्राण और अन्तःकरण चतुष्टयरूप उन्नीस करणात्मक सूक्ष्मशरीरके रूपमें अभ्यन्तर सक्रियता , प्रज्ञाकी अन्तर्मुखता और वासनाकी प्रगल्भतासे उद्भूत सूक्ष्म वस्तुओं एवम् विषयोंकी भोग्यरूपता **स्वप्न** है। स्वप्नका अभिमानी (स्वप्नमें तादात्म्यापन्न) आत्माका आरोहक्रमसे द्वितीय औपाधिक स्वरूप स्वप्नस्थान, अन्तःप्रज्ञ, एकोनविंशति (उन्नीस) -मुख, सप्ताङ्ग, प्रविविक्तभुक्, हिरण्यगर्भात्मक **तैजस** है।-

''स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः।।'' (**माण्डूक्योपनिषत्** ४)

चरण, कटिप्रदेश, मूर्धा, घ्राण, हृदय, मुख और नेत्रस्थानीय क्रमशः पृथिवी - पानी - प्रकाश - पवन - आकाश - अग्नि - सूर्यसंज्ञक मनोमय सप्ताङ्गकी एकीभूतानन्दमयता तथा पञ्च कर्मेद्रिय,पञ्च ज्ञानेन्द्रिय पञ्च प्राण और अन्तःकरण चतुष्टयरूप उन्नीस करणात्मक सूक्ष्मशरीरकी तमसाच्छादित चिन्मुखता (चेतोमुखता); प्रज्ञाकी घनरूपता और केवल घनीभूता प्रज्ञायोगसे स्वरूपभूत आनन्दकी भोग्यरूपता **सुषुप्ति** है। सुषुप्तिमें तादात्म्यापन्न आत्माका आरोहक्रमसे तृतीय औपाधिक स्वरूप सुषुप्तस्थान, घनप्रज्ञ, चेतोमुख, एकीभूताङ्ग, आनन्दभुक् सर्वेश्वरसंज्ञक **प्राज्ञ** है। -

''सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः।'' (**माण्डूक्योपनिषत्** ५)

वराहोपनिषदादिमें प्रणवकी अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रारूप चार मात्राओंके अनुरूप प्रज्ञाकी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया - चार अवस्थाओंका तथा स्थूलोपाधिक आत्माकी विश्वरूपता, सूक्ष्मोपाधिक आत्माकी तैजसरूपताका, बीजोपाधिक आत्माकी प्राज्ञरूपताका तथा स्वतःसिद्ध निरुपाधिक आत्माकी साक्षिरूपताका वर्णन है। **नारदपरिव्राजकोपनिषत्८.७-१५**में वैश्वानरको जागरितस्थान, स्थूलप्रज्ञ, स्थूलभुक्, विश्वभुक्,साष्टाङ्ग, विश्व और विश्वजित् कहा गया है। तैजसको स्वप्नस्थानगत, सूक्ष्मप्रज्ञ,

श्लोक : १६

सूक्ष्मभुक्, स्वतः अष्टाङ्ग, अन्तःस्थूल हिरण्यगर्भ कहा गया है। मुण्डकके अनुसार अग्निको **मूर्धा**, चन्द्र -सूर्यको **नेत्र**, दिक् को **श्रोत्र**, वेदको **वाक्**, वायुको **प्राण**, आकाशको **हृदय** तथा पृथिवीको **पाद** मानकर सप्ताङ्गकी सिद्धि सम्भव है। उक्त सप्ताङ्गमें आकाश, वायु, तेज और पृथिवीका उल्लेख प्राप्त है। छान्दोग्यमें जलको **कटि**स्थानीय माना गया है। उसके योगसे अष्टाङ्गकी सिद्धि सम्भव है। -

"अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा।" (मुण्डकोपनिषत् २.१.४)

"वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा सन्देहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादौ" (छान्दोग्योपनिषत् ५.१८.२)

श्रीमद्भागवत २.५ में निरूपित विराट् - वर्णनके अनुसार पाद (भूः), नाभि (भुवः), हृदय (स्वः), वक्षःस्थल (महः), ग्रीवा (जनः:), स्तन (तपः), और मूर्धा (सत्यम्) - सप्ताङ्ग सिद्ध होते हैं।

ध्यान रहे, "**चित्तैककरणा सुषुप्तिः" (शारीरकोपनिषत् ५, पैङ्गलोपनिषत् २.१)** के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि अन्तःकरणका चित्तसंज्ञक विभाग सुषुप्तिमें भी विद्यमान रहता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक अन्तः उपचेतनाके रूपमें उसे ख्यापित करते हैं।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत् के अनुसार मन संकल्पात्मक, बुद्धि निश्चयात्मिका, चित्त **अनुसन्धान**ात्मक, अहम् अभिमानात्मक और अन्तःकरण ज्ञानात्मक सिद्ध है। **पैङ्गलोपनिषत्** के अनुसार मन संकल्पात्मक, बुद्धि निश्चयात्मिका, चित्त **स्मरण**ात्मक, अहम् अभिमानात्मक और अन्तःकरण अनुसन्धानात्मक सिद्ध है। **सुबालोपनिषत्** के अनुसार चित्तका विषय **चेतयितव्य** है। **शारीरकोपनिषत् (१)** के अनुसार, मनका विषय सङ्कल्पविकल्प है। बुद्धिका विषय निश्चय है। अहङ्कारका विषय अभिमान है। चित्तका विषय **अवधारणा** है। -

श्लोक : १६

"मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तमित्यन्त:करणचतुष्टयम्। तेषां क्रमेण सङ्कल्पविकल्पाध्यवसायाभिमानावधारणास्वरूपाश्चैते विषया:।"

चित्त और अन्त:करणकी तादात्म्यापत्ति है। सुषुप्तिमें भी सूक्ष्मसंवेदनकी गति तम:प्रधाना अविद्याभावापन्न चित्तकी विद्यमानताके कारण है। चित्तकी विद्यमानता समाधिपर्यन्त है। उक्त चार अवस्थाओंमें जाग्रत् का अधिपति पुरुष विश्व, स्वप्नका तैजस, सुषुप्तिका प्राज्ञ और तुरीयका आत्मा है। विश्व स्थूलभुक् है। तैजस प्रविविक्तभुक् (वासनात्मक सूक्ष्म विषयोंका भोक्ता) है। प्राज्ञ आनन्दभुक् है। तुरीय सर्वसाक्षी है। नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियोंकी प्रधानतासे जाग्रत् है। कण्ठगत नाडीमें जीवाभिव्यञ्जक चित्तप्रवेशसे स्वप्न है। हृदयमें चित्तप्रवेशसे सुषुप्ति है। चित्तकी मूर्धामें संस्थिति समाधि है। -

"नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्नि संस्थितम्।।"
(नारदपरिव्राजकोपनिषत् ५.१)

ध्यातृ - निरपेक्ष ध्येयाकार चित्तका अवशेष समाधि है। चित्तका द्रष्टृ - सारूप्य तथा द्रष्टाका स्वरूपावस्थान समाधि है। अभिप्राय यह है कि वृत्तिसारूप्यविनिर्मुक्त द्रष्टाके अनुरूप वृत्तिविनिर्मुक्त चित्तकी तथा स्वरूपानुरूप द्रष्टाकी स्थिति समाधि है। प्राणतादात्म्यापन्न अन्त:करण सुषुप्ति है। अन्त:करणतादात्म्यापन्न प्राणस्पन्दन समाधि है। अन्त:करणका अविद्यामें विलय सुषुप्ति है। अन्त:करणका विस्मरण समाधि है। नि:स्पन्द प्राण और वृत्तिविहीन चित्तकी पुरुषसायुज्यनिष्पत्ति समाधि है। -

"ध्यातृध्याने विहाय निवातस्थितदीपवद्ध्येयैकगोचरं चित्तं समाधिर्भवति।।" (पैङ्गलोपनिषत् ३.१)

ध्यान रहे, यह शरीर नाड़ियोंसे उसी प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार पीपल आदिके पत्ते शिराओंसे व्याप्त हैं। -

"यथाऽश्वत्थादिपत्रं शिराभिर्व्याप्तमेवं शरीरं नाडीभिर्व्याप्तम्।।"
(शाण्डिल्योपनिषत् १.१५)

श्लोक : १६

देहकी अन्नरसकी परिणामरूपा बहत्तर हजार **हिता** नामकी नाड़ियाँ हैं। वे सौरालोकसे संलिप्त वात, पित्त, कफके पारस्परिक संयोगसे नील, हरित, लोहित, पीत, शुक्लादि रसोंसे संलिप्त वालाग्रके सहस्रांशपरिमाणवाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं । वे सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हैं। पुण्डरीकाकार रक्त मांसपिण्डरूप हृत्पद्म है। उसमें सन्निहित आकाश बुद्धि (अन्त:करण)का अभिव्यञ्जक संस्थान है। हृत्पद्मपरिवेष्टनरूप पुरीतत् आदि सर्वशरीरमें हिता नामकी नाड़ियाँ व्याप्त हैं। पुरीतत् स्थित आविद्यक धर्माधर्मोद्भासित हर्ष, प्रीति, उत्साह, धैर्य, शोक, भय, काम, क्रोधादि अथवा सर्वात्मविज्ञानबलसम्प्राप्त बुद्धि उक्त नाड़ियों द्वारा इन्द्रियोंको कर्णरन्ध्रादि द्वारसे जागरितमें बहिर्देशमें फैलाती है । वह स्वप्नमें स्वयंको पटचित्रके समान जाग्रत् -वासनाओंका आश्रय होनेके कारण दृश्यभावापन्न रहती है। अभिप्राय यह है कि स्वप्नमें सम्प्राप्त भोगोंकी समुपलब्धिके प्रति बुद्धिका करणत्व तिरोहित रहता है। अतएव पुरुषकी स्वप्रकाशता उच्छलित रहती है। सुषुप्तिमें सौरालोकसे संश्लिष्ट इन्द्रियसञ्चारसंस्थान नाड़ियोंकी अवरुद्धताके कारण पुरीतत् - स्थित स्वसंस्थानमें बुद्धि संप्रसादाच्छन्न - प्रसुप्त रहती है। जीव अविद्योपाधिक बीजात्मक सद्रूप स्वपिति संज्ञक प्राज्ञरूपसे अवशिष्ट रहता है। -

"ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा केशः सहस्रधा भिन्नस्तावताणिम्ना तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पिङ्गलस्य हरितस्य लोहितस्य पूर्णा अथ अत्रैनं घ्नन्तीव जिनन्तीव हस्तीव विच्छाययति गर्तमिव पतति यदेव जाग्रद्भयं पश्यति तदत्राविद्यया मन्यतेऽथ यत्र देव इव राजेवाहमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः।" (बृहदारण्यकोपनिषत् ४.३.२०) -"उसकी वे ये हिता नामकी नाड़ियाँ , सहस्र भागोंमें विभक्त केश - सदृश सूक्ष्म हैं। वे शुक्ल, नील, पीत, हरित और रक्त वर्णके रङ्गसे पूर्ण हैं। उन नाडीगत रसरूप उपाधिके संसर्गसे अधर्मप्रेरित जाग्रदवस्थाके अनेक जन्मोंके उद्भूतवृत्तिविशेषवाले इस पुरुषको मानो मारते, मानो अपने वशमें करते हैं, मानो इसे हाथी खदेड़ता है, मानो यह गड्ढेमें गिरता है। धर्मप्रेरित जाग्रदवस्थाके अनेक जन्मोंके उद्भूतवृत्तिविशेषवाला यह स्वयंको

देवता, राजादिके समान सुख लाभ करता है। अथवा अध्यात्मविज्ञानसे उद्भासित संस्कारके कारण यह परम धामस्वरूप होकर सर्वात्मभावका अनुभव करता है।"

सुबालोपनिषत् ४के अनुसार भी यही तथ्य सिद्ध है।

"य एष विज्ञानमय: पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते" (बृहदारण्यकोपनिषत् २.१.१७) - " जो यह विज्ञानमय पुरुष है, विज्ञानके द्वारा करणग्रामके विज्ञानको ग्रहणकर स्वरूपभूत चिदाकाशमें शयन करता है।"

"अत्रैष देव: स्वप्ने महिमानमनुभवति" (प्रश्नोपनिषत् ४.५) - "स्वप्नमें यह जीव जन्म - जन्मान्तरोंमें अनुभूत वस्तुओंको अपने मनसे उद्भावित कर अपनी महिमाका अनुभव करता है।"

"सधी: स्वप्नो भूत्वा ध्यायतीव लेलायतीव" (बृहदारण्यक ४.३.७) - "वह बुद्धिसे तादात्म्य लाभ कर स्वप्नरूप होता है, मानो ध्यान करता है तथा चेष्टा करता है।"

" अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्यचन वेद हिता नाम नाड्यो द्वासप्तति सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्ते ताभि: प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते।" (बृहदारण्यकोपनिषत् २.१.१९) -"तदनन्तर जब वह सुषुप्त होता है, जिस समय कि वह किसीके विषयमें कुछ नहीं जानता, उस समय हिता नामकी जो बहत्तर हजार नाड़ियाँ हृदयसे सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर स्थित हैं, उनके द्वारा बुद्धिके साथ वह शरीरमें व्याप्त होकर शयन करता है।"

"यत्रैतत्पुरुष: स्वपिति नाम सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति। तस्मादेनं स्वपितीत्याचक्षते स्वं ह्यपीतो भवति।" (छान्दोग्योपनिषत् ६.८.१) - " जिस अवस्थामें यह पुरुष सोता है, ऐसा कहा जाता है, उस समय हे सोम्य! यह सत् से सम्पन्न हो जाता है - वह अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। इसीसे इसे **स्वपिति** ऐसा कहते हैं, क्योंकि उस समय यह स्व - अपनेको ही अपीत - प्राप्त हो जाता है।"

श्लोक : १६

"**अनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाञ्छोकान् हृदयस्य भवति।।" (बृहदारण्यकोपनिषत् ४.३.२२)** -"उस समय यह पुरुष पुण्य और पाप दोनोंसे असम्बद्ध होता है और हृदयके सम्पूर्ण शोकोंको पार कर लेता है।।"

"**तद् वा अस्यैतदतिच्छन्दा अपहतपाप्माभयं रूपम्।" (बृहदारण्यकोपनिषत् ४.३.२१)** - "वह इसका कामरहित, पापरहित और अभयरूप है।"

"**तद्यथास्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः संहत्य पक्षौ संलयायैव ध्रियत एवमेवायं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति।" (बृहदारण्यकोपनिषत् ४.३.१९)** - "जिस प्रकार इस आकाशमें श्येन अथवा द्रुतगतिसे उड़नेवाला बाज सब ओरसे उड़कर थक जानेपर पङ्खोंको फैलाकर घोंसलेकी ओर ही उड़ता है, उसी प्रकार यह पुरुष इस स्थानपर दौड़ता है, जहाँ सोनेपर यह किसी भोगकी इच्छा नहीं करता है, न कोई स्वप्न ही देखता है। अभिप्राय यह है कि क्रिया, कारक, फलरूप श्रमसे रहित सद्रूपसे शेष रहता है।।"

"**स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतन-मलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबन्धनं हि सोम्य मन इति।" (छान्दोग्योपनिषत् ६.८.२)**

"जिस प्रकार डोरीमें बँधा हुआ पक्षी दिशा विदिशाओंमें उड़कर अन्यत्र स्थान न मिलनेपर अपने बन्धनस्थानका ही आश्रय लेता है, इसी प्रकार निश्चय ही हे सोम्य ! यह मनोरूप उपाधिवाला जीव दिशा-विदिशाओं में उड़कर अन्यत्र स्थान न मिलनेपर प्राणोपाधिक सद्रूपका ही आश्रय लेता है, क्यों कि हे सोम्य! मन (जीव) प्राण (बीजात्मक सत्)रूप बन्धनवाला ही है।।"

"**तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः" (ऐतरेयोपनिषत् १.३.१२)** - "उसके स्वप्नरूप जागरादि तीन आवसथ (स्थान) हैं।"

श्लोक : १६

प्रणवगत राजस अकारसे सम्बद्ध ब्रह्मा जागरितके अधिपति हैं। प्रणवगत सात्त्विक उकारसे सम्बद्ध विष्णु स्वप्नके अधिपति हैं। प्रणवगत तामस मकारसे सम्बद्ध रुद्र सुषुप्तिके अधिपति हैं। प्रणवगत अमात्रसे सम्बद्ध परमात्मा तुरीयके अधिपति हैं। -

"अकारो जाग्रति नेत्रे वर्तते सर्वजन्तुषु।
उकार: कण्ठत: स्वप्ने मकारो हृदि सुप्तित:।।
विराड्विश्व: स्थूलश्चाकार:।
हिरण्यगर्भस्तैजस: सूक्ष्मश्च उकार:।
कारणाव्याकृतप्राज्ञश्च मकार:।।
अकारो राजसो रक्तो ब्रह्मा चेतन उच्यते।
उकार: सात्त्विक: शुक्लो विष्णुरित्यभिधीयते।।
मकारस्तामस: कृष्णो रुद्रश्चेति तथोच्यते।"
(योगचूडामण्युपनिषत् ७४ - ७५.१/२)

"जागरिते ब्रह्मा स्वप्ने विष्णु: सुषुप्तौ रुद्रस्तुरीयं परमाक्षरम्" (ब्रह्मोपनिषत्)

ओङ्कारगत अकार, उकार और मकार - क्रमश: स्थूलप्रधान जाग्रत्, सूक्ष्मप्रधान स्वप्न और कारणप्रधान सुषुप्तिके प्रतिपादक हैं। ये क्रमश: विभु विश्वरूप वैश्वानर, विभु तैजसरूप हिरण्यगर्भ और विभु प्राज्ञरूप सर्वेश्वरके प्रतिपादक हैं। विवक्षावशात् वैश्वानरको अकारात्मक ब्रह्मा -रूप, हिरण्यगर्भको उकारात्मक विष्णुरूप और सर्वेश्वरको मकारात्मक शिव या रुद्ररूप माननेपर पूर्वोक्त रीतिसे जाग्रत् को रज:प्रधान, स्वप्नको सत्त्वप्रधान और सुषुप्तिको तम:प्रधान मानना युक्त है। कारण यह है कि ब्रह्माको रजोगुणका नियामक राजस, विष्णुको सत्त्वगुणका नियामक सात्त्विक तथा रुद्रको तमोगुणका नियामक तामस माना गया है-

"तमोमायात्मको रुद्र: सात्त्विकमायात्मको विष्णू राजसमायात्मको ब्रह्मा" (पाशुपतब्रह्मोपनिषत्), "राजसो ब्रह्मा सात्त्विको विष्णुस्तामसो वै हर:" (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत् ४),

श्लोक : १६

"अकारः पीतवर्णः स्याद्रजोगुण उदीरितः।। उकारः सात्त्विकः शुक्लो मकारः कृष्णस्तामसः।" (ध्यानबिन्दूपनिषत् १२,१२ १/२)

"ऋग्वेदो गार्हपत्यं च पृथिवी ब्रह्म एव च।
अकारस्य शरीरं तु व्याख्यातं ब्रह्मवादिभिः।।
यजुर्वेदोऽन्तरिक्षं च दक्षिणाग्निस्तथैव च।
विष्णुश्च भगवान्देव उकारः परिकीर्तितः।।
सामवेदस्तथा द्यौश्चाहवनीयस्तथैव च।
ईश्वरः परमो देवो मकारः परिकीर्तितः।।"

(प्रणवोपनिषत् ४-६)

"ऋग्वेदे त्रैस्वर्योदात्त एकाक्षर ओङ्कारो यजुर्वेदे दीर्घप्लुतोदात्त एकाक्षरओङ्कारः, सामवेदे ह्रस्वोदात्त एकाक्षरः उकारोऽथर्ववेदे ऽनुदात्तद्विपद अ उ इत्यर्द्धचतस्रो मात्रा मकरे व्यञ्जनमित्याहुः। या सा प्रथमा मात्रा ब्रह्मदैवत्या रक्ता वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद् ब्राह्मं पदम् । या सा द्वितीयामात्रा विष्णुदैवत्या कृष्णा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गचछेद्वैष्णवं पदम्। या सा तृतीया मात्रा ईशानदैवत्या कपिला वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेदैशानं पदम्। या सार्द्धचतुर्थीमात्रा सर्वदैवत्या व्यक्तीभूता खं विचरति शुद्धस्फटिकसन्निभा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेत् पदमनामयम्।।" (प्रणवोपनिषत्)

आत्मा स्वयम्प्रकाश है। परन्तु स्वयम्प्रकाशताकी स्फुट अभिव्यक्ति स्वप्नमें सम्भव है - **"अत्रायं पुरुषः स्वयञ्ज्योतिर्भवति" (बृहदारण्यकोपनिषत् ४.३.९)** । स्वयम्प्रकाशताका अभिव्यञ्जक संस्थान होनेसे भी स्वप्नको सात्त्विक माना गया है। अकारको विष्णुरूप मानकर तथा जाग्रत् को स्थितिप्रधान मानकर जागरको सत्त्वप्रधान मानना भी युक्त है। हिरण्यगर्भकी प्रसिद्धि ब्रह्माके रूपमें स्वीकार कर और उकारात्मक स्वप्नको उत्पत्तिप्रधान मानकर स्वप्नको राजस मानना भी युक्त है । सुषुप्तिको संहारात्मक तमःपदवाच्य अविद्यात्मक मकार रूप मानकर तामस मानना उभयसम्मत है।-

श्लोक : १६

"सत्त्वाज्जागरणं विद्याद् रजसा स्वप्नमादिशेत्।
प्रस्वापं तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु सन्ततम्।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२५.२०)

"सत्त्वगुणसे जाग्रत्, रजोगुणसे स्वप्न और तमोगुणसे सुषुप्ति - अवस्था होती है। तुरीयात्मा तीनोंमें अनुगत है।।"

ध्यान रहे; श्रुतियोंमें, स्मृतियोंमें तथा श्रुतिस्मृतिमें परस्पर विरुद्धकथन भी धारणाप्रकरणमें और विवक्षावशात् समादरणीय है।

ओङ्कारकी प्रथमा मात्रा अकार है। अकारके अधिपति ब्रह्मा रक्तवर्णके राजस हैं। ओङ्कारकी द्वितीयामात्रा उकार है। उकारके अधिपति रुद्र शुक्लवर्णके सात्त्विक हैं। ओङ्कारकी तृतीया मात्रा मकार है। मकारके अधिपति विष्णु कृष्ण वर्णके तामस हैं। ओङ्कारकी चतुर्थी अर्द्धमात्रा लुप्तमकार है। उसका अधिपति सर्ववर्णका पुरुषतत्त्व है। -

"प्रथमा रक्ता ब्राह्मी ब्रह्मदेवत्या द्वितीया शुभा शुक्ला रौद्री रुद्रदेवत्या तृतीया कृष्णा विष्णुमती विष्णुदेवत्या चतुर्थी विद्युन्मती सर्ववर्णा पुरुषदेवत्या।।" (अथर्वशिखोपनिषत् १)

सूतसंहितामें रुद्रको अन्तःसत्त्व और बाह्य तमस् से सम्पन्न माना गया है। विवक्षावशात् अकार और ब्रह्मासे सम्बद्ध क्रियाशक्तिप्रधान जाग्रत् को राजस, उकार और रुद्रसे सम्बद्ध इच्छाशक्तिप्रधान स्वप्नको तामस और मकार तथा विष्णुसे सम्बद्ध ज्ञानशक्ति प्रधान सुषुप्तिको सात्त्विक मानना भी युक्त है।-

"क्रिया इच्छा तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी।
त्रिधा मात्रा स्थितिर्यत्र तत्परञ्ज्योतिरोमिति।।"
(योगचूडामण्युपनिषत् ८६)

वस्तुविज्ञानकी दृष्टिसे जाग्रत् सात्त्विक है। वस्तुविलोपकी दृष्टिसे सुषुप्तिसंस्थान तामस है। सत्त्व और तमस् का मध्यवर्ती स्वप्न राजस है। आत्मसामीप्यरूप प्रत्यक् -प्रवणता अर्थात् चेतोमुखताकी दृष्टिसे सुषुप्ति - संस्थान सात्त्विक, स्वप्नसंस्थान राजस और जाग्रत् - संस्थान तामस है।

अभिप्राय यह है कि जाग्रत् - संस्थान बहिर्मुखताकी, स्वप्नसंस्थान अन्तर्मुखताकी, सुषुप्तिसंस्थान आत्ममुखताकी और समाधिसंस्थान आत्मरूपताकी अवस्था है। "**समाधिः संविदुत्पत्तिः परजीवैकतांप्रति**" (**अन्नपूर्णोपनिषत् ५. ७५**) के अनुसार ब्रह्मात्म-एकत्वविज्ञान समाधि है।

यद्यपि क्रिया और इच्छाकी राजसरूपसे तथा ज्ञानकी सात्त्विकरूपसे प्रसिद्धि है, तथापि ज्ञानोत्तर इच्छा और तदनन्तर क्रियाकी विवक्षासे ज्ञानेच्छाकी अपेक्षा पराक् क्रिया तामसप्राय है।

परमहंस, तुरीयातीत और अवधूतोंके लिए उपास्य ब्रह्मप्रणवकी दृष्टिसे अवस्था - प्रभेद इस प्रकार हैं -

"**ब्रह्मप्रणवः षोडशमात्रात्मकः सोऽवस्थाचतुष्टय चतुष्टयगोचरः। जाग्रदवस्थायां जाग्रदादिचतस्रोऽवस्थाः स्वप्ने स्वप्नादिचतस्रोऽवस्थाः सुषुप्तौ सुषुप्त्यादिचतस्रोऽवस्थास्तुरीये तुरीयादिचतस्रोऽवस्था भवन्तीति। जाग्रदवस्थायां जाग्रदादिचतस्रोऽवस्थाः, स्वप्ने स्वप्नादिचतस्रोऽवस्थाः, सुषुप्तौ सुषुप्त्यादिचतस्रोऽवस्थास्तुरीये तुरीयादिचतस्रोऽवस्था भवन्तीति। जाग्रदवस्थायां विश्वस्य चातुर्विध्यं विश्वविश्वो विश्वतैजसो विश्वप्राज्ञो विश्वतुरीय इति। स्वप्नावस्थायां तैजसस्य चातुर्विध्यं तैजसविश्वस्तैजसतैजसस्तैजसप्राज्ञस्तैजसतुरीय इति। सुषुप्त्यवस्थायां प्राज्ञस्य चातुर्विध्यं प्राज्ञविश्वः प्राज्ञतैजसः प्राज्ञप्राज्ञः प्राज्ञतुरीय इति। तुरीयावस्थायां तुरीयस्य चातुर्विध्यं तुरीयविश्वस्तुरीयतैजसस्तुरीयप्राज्ञस्तुरीयतुरीय इति। ते क्रमेण षोडशमात्रारूढा अकारे जाग्रद्विश्व उकारे जाग्रत्तैजसो मकारे जाग्रत्प्राज्ञ अर्धमात्रायां जाग्रत्तुरीयो विन्दौ स्वप्नविश्वो नादे स्वप्न तैजसः कलायां स्वप्नप्राज्ञः कलातीते स्वप्नतुरीयः शान्तौ सुषुप्तविश्वः शान्त्यतीते सुषुप्ततैजस उन्मन्यां सुषुप्तप्राज्ञो मनोन्मन्यां सुषुप्ततुरीयः तुर्यां तुरीयविश्वो मध्यमायां तुरीयतैजसः, पश्यन्त्यां तुरीयप्राज्ञः परायां तुरीयतुरीयः। जाग्रन्मात्राचतुष्टयमकारांशं, स्वप्नमात्राचतुष्टयमुकारांशं**

सुषुप्तिमात्राचतुष्टयं मकारांशं, तुरीयमात्राचतुष्टयमर्धमात्रांशम्। अयमेव ब्रह्मप्रणवः। स परमहंसतुरीयातीतैरवधूतैरुपास्यः। तेनैव ब्रह्म प्रकाशते तेन विदेहमुक्तिः।।" (परमहंसपरिव्राजकोपनिषत् १)

"वह ब्रह्मप्रणव अवस्थाचतुष्टयचतुष्टयके गुणनसे सोलहमात्रावाला है। जाग्रत् में जाग्रदादि, स्वप्नमें स्वप्नादि, सुषुप्तिमें सुषुप्त्यादि और तुरीयमें तुरीयादि चार अवस्थाएँ होती हैं। जाग्रत् में विश्वविश्व, विश्वतैजस, विश्वप्राज्ञ और विश्वतुरीय - संज्ञक विश्वके चार प्रकार हैं। स्वप्नमें तैजसविश्व, तैजसतैजस, तैजसप्राज्ञ और तैजसतुरीय - संज्ञक तैजसके चार प्रकार हैं। सुषुप्तिमें प्राज्ञविश्व, प्राज्ञतैजस, प्राज्ञप्राज्ञ और प्राज्ञतुरीय - संज्ञक प्राज्ञके चार प्रकार हैं। तुरीयावस्थामें तुरीयविश्व, तुरीयतैजस, तुरीयप्राज्ञ और तुरीयतुरीय नामक तुरीयके चार प्रकार हैं। वे क्रमशः सोलह मात्राओंपर आरूढ रहते हैं। अकारपर जाग्रत् विश्व, उकारमें जाग्रत् तैजस, मकारमें जाग्रत् प्राज्ञ और अर्धमात्रामें जाग्रत् - तुरीयकी स्थिति है। बिन्दुमें स्वप्नविश्व, नादमें स्वप्नतैजस, कलामें स्वप्नप्राज्ञ और कलातीतमें स्वप्नतुरीयकी स्थिति है। शान्तिमें सुषुप्तविश्व, शान्त्यतीतमें सुषुप्त तैजस, उन्मनीमें सुषुप्त प्राज्ञ, मनोन्मनीमें सुषुप्त तुरीयकी स्थिति है। वैखरीमें तुरीय विश्व, मध्यमामें तुरीय तैजस, पश्यन्तीमें तुरीय प्राज्ञ और परामें तुरीय तुरीय सन्निहित है। जाग्रत् की चार-अवस्थाएँ अकारांशवाली हैं। स्वप्नकी चार मात्राएँ उकारांशवाली हैं। सुषुप्तिकी चार मात्राएँ मकारांशवाली हैं। तुरीयकी मात्राएँ अर्धमात्राके अंशवाली हैं। यही ब्रह्मप्रणव है। यह परमहंस, तुरीयातीत और अवधूतों द्वारा उपास्य है। इसीसे ब्रह्म प्रकाशता है अर्थात् जीवन्मुक्ति सम्भव है और इसीसे विदेहमुक्ति सम्भव है।।"

"जीवदवस्थां प्रथमं जाग्रद् द्वितीयं स्वप्नं तृतीयं सुषुप्तं चतुर्थं तुरीयं चतुर्भिर्विरहितं तुरीयातीतम्। विश्वतैजसप्राज्ञतटस्थभेदैरेक एव । एको देवः साक्षी निर्गुणश्च तद्ब्रह्माहमिति व्याहरेत्। नो चेज्जाग्रदवस्थायां जाग्रदादिचतस्रोऽवस्थाः स्वप्ने स्वप्नादि चतस्रोऽवस्थाः सुषुप्ते सुषुप्त्यादि चतस्रोऽवस्थाः, तुरीये तुरीयादि चतस्रोऽवस्थाः, न

त्वेवं तुरीयातीतस्य निर्गुणस्य। स्थूलसूक्ष्मकारणरूपैर्विश्वतैजस-प्राज्ञेश्वरैः सर्वावस्थासु साक्षी त्वेक एवावतिष्ठति।।" (नारद-परिव्राजकोपनिषत् ६.१)

"जीवकी चार अवस्थाओंमें प्रथम अवस्था जाग्रत् है, दूसरी स्वप्न है, तीसरी सुषुप्ति है, चौथी अवस्था तुरीय है। इन चारोंसे रहित तुरीयातीत है। एक ही आत्मतत्त्व विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तटस्थभेदसे चार प्रकारका प्रतीत होता है। अतः 'एक ही परमात्मदेव सबका साक्षी एवं निर्गुण है। वह ब्रह्म मैं स्वयं हूँ , ऐसा कहे। तुरीयातीत पुरुषको जाग्रदादि अवस्थाओंके अनुभवसे अतीत मानना चाहिए। नहीं तो जैसे जाग्रत् में जाग्रदादि चार अवस्थाएँ होती हैं, स्वप्नमें स्वप्नादि चार अवस्थाएँ होती हैं, सुषुप्तिमें सुषुप्त्यादि चार अवस्थाएँ होती हैं तथा तुरीयमें तुरीयादि चार अवस्थाएँ होती हैं, वैसे ही तुरीयातीतमें भी इन चार अवस्थाओंके होनेकी सम्भावना हो सकती है। किन्तु वास्तवमें तुरीयातीत तत्त्व निर्गुण है; अतः उसमें इस प्रकारका अवस्थाभेद सम्भव नहीं। स्थूल, सूक्ष्म, करणरूप उपाधिके योगसे विश्व, तैजस, प्राज्ञेश्वररूपसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिमें एक ही साक्षी स्थित है।।"

"जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिष्वेकशरीरस्य जाग्रत्काले विश्वः, स्वप्नकाले तैजसः, सुषुप्तिकाले प्राज्ञः, अवस्थाभेदादवस्थेश्वरभेदः, कार्यभेदात्कारणभेदस्तासु चतुर्दशकरणानां बाह्यवृत्तयोऽन्तर्वृत्तय-स्तेषामुपादानकारणम्। वृत्तयश्चत्वारः मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तं चेति। तत्तद्वृत्तिव्यापारभेदेन पृथगाचारभेदः। नेत्रस्थं जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समाविशत्। सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्निसंस्थितम्।। तुरीयमक्षरमिति ज्ञात्वा जागरिते सुषुप्त्यवस्थापन्न इव यद्यच्छ्रुतं यद्यद्दृष्टं तत्तत्सर्व-मविज्ञातमिव यो वसेत्तस्य स्वप्नावस्थायामपि तादृगवस्था भवति। स जीवन्मुक्त इति वदन्ति।।" (नारदपरिव्राजकोपनिषत् ५.१)

"जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीन अवस्थाओंमें आत्मदेव एकरूप होता है। जाग्रत्कालमें वही विश्व, स्वप्नकालमें तैजस और सुषुप्तिकालमें प्राज्ञ कहलाता है। अवस्थाभेदसे उन - उन अवस्थाओंके स्वामीमें भेद होता है।

श्लोक : १६

कार्यभेदसे ही कारण्भेद माना जाता है। श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना, घ्राण तथा वाक्, पाणि, चरण, उपस्थ और गुदा एवम् मन, अहम्, बुद्धि तथा चित्तरूप चतुर्दशकरणोंकी जो ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रियरूप दश बाह्य और अन्तःकरणरूप चार अभ्यन्तर वृत्तियाँ हैं, उनका उपादानकारण एक अज्ञान है। उन - उन वृत्तियोंके प्रचार (व्यापार) भेदसे पृथक् - पृथक् आचारभेद होता है।। जाग्रत् - अवस्था और उसके स्वामी विश्वकी स्थिति नेत्रके भीतर है। स्वप्न और उसके अधिष्ठाता तैजसका कण्ठमें समावेश है। सुषुप्ति और उसके स्वामी प्राज्ञकी स्थिति हृदयमें है तथा तुरीय परमेश्वरकी स्थिति मस्तक (ब्रह्मरन्ध्र) में मानी गयी है। जाग्रदादि तीनों अवस्थाओंको प्रकाशित करते हुए तुरीयरूपमें जिसकी स्थिति बतायी गयी है, वह अविनाशी परमात्मा मैं ही हूँ, ऐसा जानकर जो जाग्रत् अवस्थामें भी सुषुप्त - सदृश रहता है, जो - जो वस्तु सुनी और देखी हुई है, वह सब मानो अविज्ञात (अपरिचित) - सी है - इस प्रकार उसकी ओर ध्यान न देता हुआ जो स्थित रहता है, उसकी स्वप्नावस्थामें भी वैसी ही स्थिति बनी रहती है। ऐसा पुरुष जीवन्मुक्त है।।"

महोपनिषत् के अनुसार, " **अयं चाहमिदं मम, इति यः प्रत्ययः स्वस्थस्तज्जाग्रत्** "(५.१२), "**अल्पकालं मया दृष्टमेतन्नोदेति यत्र हि। परामर्शः प्रबुद्धस्य स स्वप्न इति कथ्यते।**" (५.१६), "**जडा जीवस्य या स्थितिः, भविष्यद्दुःखबोधाढ्या सौषुप्तिः सोच्यते गतिः। जगत्तस्यामवस्थायामन्तस्तमसि लीयते।।**" (५.१८,१९) -"यह मैं हूँ , यह मेरा है, अपने भीतर जो ऐसी प्रतीति होती है, वह जाग्रत् है।"," थोड़ी देरतक मैंने देखा, अब यह दृष्टिगत नहीं हो रहा है, जिस अवस्थासे जागनेपर इस प्रकारका परामर्श (स्मरण) होता है, वह स्वप्न है।।", "जीवकी जो जडात्मक स्थिति होती है, वह आनेवाले दुःखबोधसे युक्त अवस्था सुषुप्ति कहलाती है। अभिप्राय यह है कि तापत्रयसे रहित अध्यासविरहित होनेपर भी अध्यासभूमि जागरादिके प्रति द्वारभूता बीजावस्था सुषुप्ति है। वह भूतपूर्व गतिसे सर्वकी और भविष्यद्गतिसे विविधतापोंकी बीजावस्था है। उस अवस्थामें जगत् अन्तस्तममें लीन हो जाता है।।"

श्लोक : १६

जिस प्रकार बबूलके चिक्कण बीजमें सन्निहित कण्टकादिका दर्शन नहीं होता ; परन्तु पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आाकाश तथा दिक् और कालका अनुकूल संसर्ग सुलभ हाने पर उसमें अन्तर्निहित कण्टकादिकी स्फूर्ति सुनिश्चित है ; उसी प्रकार मृत्यु, मूर्खता और दुःखके भयसे अतीत और विषय - निरपेक्ष आनन्दोपलब्धि तथा अहङ्कारनिरपेक्ष सुख और ज्ञानानुभूतिकी भूमि होनेपर भी सुषुप्ति भुक्ति (भोग), भक्ति (भजनीय भगवान् में रति) तथा मुक्ति (जन्म - मृत्युकी अनादिपरम्पराकी आत्यन्तिकी निवृत्ति) की बीजभूमि है।

''भूतसूक्ष्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिष्विह निद्रया।
लीनेष्वसति यस्तत्र विनिद्रो निरहङ्क्रियः।।''
(श्रीमद्भागवत ३.२७.१४)

''जो सुषुप्तिके समय निद्रासे सूक्ष्मभूत, इन्द्रिय, मन और बुद्धि - आदिके अव्याकृतमें लीन हो जानेपर स्वयं जागता रहता है और अहङ्कारशून्य है, वही वास्तव आत्मा है।।''

नाम, रूप और क्रियाकी बीजावस्था बीज - जाग्रत् है। मैं, मेरा, तू, तेराका विस्तृत जगड्वाल महाजाग्रत् है। दोनोंके मध्यमें जाग्रत् है। मनोराज्य जाग्रत्स्वप्न है। द्विचन्द्र, शुक्तिरजतादिभ्रान्ति जाग्रत्स्वप्नके अवान्तर प्रभेद हैं। जाग्रत् में भी परिस्फुरित होनेवाला स्वप्न स्वप्न - जाग्रत् है।

• गुणत्रयव्यतीत

''**गुणत्रयव्यतीतोऽहम्**'' (१०) के अनुसार आत्मा त्रिगुणातीत है। **माया** तपा, चला, अविद्या, प्रणव, ओम्, प्रकृति, प्रधान, मायाशबल, अनिर्वचनीया, चितकबरी गौ आदि नामोंसे आख्यात है। प्रणवगत अ, उ और म - संज्ञक त्रिमात्राकी प्रकृतिगत सत्त्व, रजस् और तमस् - से तादात्म्य है । अतएव मायाशक्ति प्रणवात्मिका है । ब्रह्माधिष्ठिता मूलप्रकृति सर्ग और प्रलयमें तथा पुरुषार्थसिद्धिमें मुख्य हेतु है। -

''**मूलप्रकृतिर्माया लोहितशुक्लकृष्णा।**'' (**शाण्डिल्योपनिषत् ३.१**), **लोहितशुक्लकृष्णगुणमयी गुणसाम्यानिर्वाच्या मूलप्रकृतिः**''

(पैङ्गलोपनिषत् १.१), "अविद्यामाहुरव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मि वै।" (महाभारतशान्तिपर्व ३०७.२), "अव्यक्तं प्रकृतिं प्राहु:" (महाभारतशान्तिपर्व ३१८.३९), "तपास्तु प्रकृतिं प्राहु:" (महाभारतशान्तिपर्व ३१८.४२), "चलां तु प्रकृतिं प्राहु: कारणं क्षयसर्गयो:" (महाभारतशान्तिपर्व ३१८.४३), "ततश्चोमिति ध्वनिरभूत्। स वै गजाकार:। अनिर्वचनीया सैव माया जगद्बीजमित्याह। सैव प्रकृतिरिति गणेश इति प्रधानमिति च मायाशबलमिति च।" (गणेशोत्तरतापिन्युपनिषत् ४), "सीता भागवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता। प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन:।।" (सीतोपनिषत् २), "ब्रह्मशक्तिरेव प्रकृति:" (निरालम्बोपनिषत्), "प्रकृतिर्माया पुरुष: शिव:" (गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत् २.३)

"अशक्य: सोऽन्यथा द्रष्टुं ध्यायमान: कुमारकै:।
विकारजननीमज्ञामष्टरूपामजां ध्रुवाम्।।
ध्यायतेऽध्यासिता तेन तन्यते प्रेर्यते पुन:।
सूयते पुरुषार्थं च तेनैवाधिष्ठितं जगत्।।
गौरनाद्यन्तवती सा जनित्री भूतभाविनी।
सितासिता च रक्ता च सर्वकामदुघा विभो:।।"
(मन्त्रिकोपनिषत् ३ –५)

प्रकृति त्रिगुणमयी है। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणके पृथक्- पृथक् स्वभाव और प्रभाव हैं। गुणमय भावोंके अतिक्रमणकी भावनासे त्रिगुणका परिज्ञान आवश्यक है। –

"प्रहर्ष: प्रीतिरानन्द: सुखं संशान्तचित्तता।
अकुतश्चित् कुतश्चिद्वा चिन्तित: सात्त्विको गुण:।।
अतुष्टि: परितापश्च शोको लोभस्तथा क्षमा।
लिङ्गानि रजसस्तानि दृश्यन्ते हेत्वहेतुत:।।
अविवेकस्तथा मोह: प्रमाद: स्वप्नतन्द्रिता।
कथञ्चिदपि वर्तन्ते विविधास्तामसा गुणा:।।

श्लोक : १६

अत्र यत् प्रीतिसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत्।
वर्तते सात्त्विको भाव इत्यपेक्षेत तत् तथा।।
यत् त्वसन्तोषसंयुक्तमप्रीतिकरमात्मनः।
प्रवृत्तं रज इत्येवं ततस्तदपि चिन्तयेत्।।
अथ यन्मोहसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत्।।"

(महाभारतशान्तिपर्व २१९. २६-३१)

"हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और चित्तकी शान्ति - ये सब भाव बिना कारणके स्वतः हों या आहार, सत्सङ्गादिके कारण हों, सात्त्विक गुण माने गये हैं।।"

"असन्तोष, सन्ताप, शोक, लोभ और असहनशीलता - किसी कारणसे हों या अकारण - रजोगुणके चिह्न हैं।।"

"अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य - ये किसी प्रकार भी क्यों न हों, तमोगुणके ही विविध रूप हैं।"

"इनमें जो शरीर या मनमें प्रीतिके संयोगसे उदित हो, वह सत्त्वगुणकी प्रगल्भतासे प्राप्त सात्त्विक भाव समझना चाहिए।।"

"जो अपने लिए असन्तोषजनक और अप्रीतिकर हो, उसे रजोगुणकी प्रवृत्ति और अभिवृद्धि समझनी चाहिए।।"

"शरीर या मनमें जो अतर्क्य, अज्ञेय तथा मोहसंयुक्त भाव प्रादुर्भूत हो, उसे तमोगुणजनित जानना चाहिए।।"

"सत्त्वमानन्द उद्रेकः प्रीतिः प्राकाश्यमेव च ।
सुखं शुद्धित्वमारोग्यं सन्तोषः श्रद्दधानता।।
अकार्पण्यमसंरम्भः क्षमा धृतिरहिंसता।
समता सत्यमानृण्यं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।
शौचमार्जवमाचारमलौल्यं हृद्यसम्भ्रमः ।
इष्टानिष्टवियोगानां कृतानामविकत्थना ।।
दानेन चात्मग्रहणमस्पृहत्वं परार्थता ।

श्लोक : १६

सर्वभूतदया चैव सत्त्वस्यैते गुणाः स्मृताः ।।
रजोगुणानां संघातो रूपमैश्वर्यविग्रहौ ।
अत्यागित्वमकारुण्यं सुखदुःखोपसेवनम् ।।
परापवादेषु रतिर्विवादानां च सेवनम् ।
अहङ्कारमसत्कारश्चिन्ता वैरोपसेवनम् ।।
परितापोऽभिहरणं ह्रीनाशोऽनार्जवं तथा ।
भेदः परुषता चैव कामः क्रोधो मदस्तथा ।।
दर्पो द्वेषोऽतिवादश्च एते प्रोक्ता रजोगुणाः ।
तामसानान्तु सङ्घातं प्रवक्ष्याम्युपधार्यताम् ।।
मोहोऽप्रकाशस्तामिस्रमन्धतामिस्रसंज्ञितम् ।
मरणं चान्धतामिस्रं तामिस्रं क्रोध उच्यते ।।
तमसो लक्षणानीह भक्षणाद्यभिरोचनम् ।
भोजनानामपर्याप्तिस्तथा पेयेष्वतृप्तता ।।
गन्धवासो विहारेषु शयनेष्वासनेषु च ।
दिवास्वप्नेऽतिवादे च प्रमादेषु च वै रतिः ।।
नृत्यवादित्रगीतानामज्ञानाच्छ्रद्दधानता ।
द्वेषो धर्मविशेषाणामेते वै तामसा गुणाः ।।

(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व ३१३.१७-२८)

"धैर्य, आनन्द, प्रीति, उत्कर्ष, प्रकाश (ज्ञान), सुख, शुद्धि, आरोग्य, सन्तोष, श्रद्धा, अकार्पण्य,असंरम्भ (अक्रोध), क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, ऋणसे रहित होना, मृदुता, लज्जा, अचञ्चलता, शौच, श्रद्धा,सदाचार, अलोलुपता, हृदयमें सम्भ्रमका न होना, इष्ट और अनिष्टके वियोगका वर्णन न करना, दानके द्वारा धैर्य धारण करना, किसी वस्तुकी इच्छा न करना, परोपकार और सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया - ये सब सत्त्वसम्बन्धी गुण कहे गये हैं।।"

"रूप, ऐश्वर्य, विग्रह, त्यागका अभाव, करुणाका अभाव, सुख - दुःखका उपभोग, परनिन्दामें प्रीति, वाद - विवाद, अहङ्कार, माननीय पुरुषोंका सत्कार न करना, चिन्ता, वैर, सन्ताप, परसम्पत्तिका अपहरण, निर्लज्जता,

कुटिलता, भेदबुद्धि, कठोरता, काम, क्रोध, मद, दर्प, द्वेष और बहुत बोलनेका स्वभाव - ये रजोगुण कहे गये हैं।।"

"तामस भावोंके समूहका परिचय ध्यानपूर्वक सुनने योग्य है। मोह, अप्रकाश (अज्ञान),तामिस्र और अन्धतामिस्र -ये सब तमोगुणके लक्षण हैं। इनमें तामिस्र क्रोधका वाचक है और अन्धतामिस्र मरण (अभिनिवेश) का। भोजनमें अभिरुचि, भोजनसे अतृप्ति अथवा अधिक - से अधिक भोजनको भी अपर्याप्त समझना, पीनेकी वस्तुओंसे कभी तृप्ति न होना, दुर्गन्धयुक्त वस्त्र, अनुचित विहार, मलिन शय्या और आसनोंका सेवन, दिनमें सोना, अत्यन्त वाद - विवाद और प्रमादमें समासक्त रहना, अज्ञानवश नाच, गान और विविध बाजोंमें श्रद्धा, धर्मविशेषोंसे द्वेष -ये तमोगुणके लक्षण हैं।।"

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। अतएव महत्तत्त्वसे लेकर पार्थिव प्रपञ्च - पर्यन्त कार्यवर्गकी तथा तद्वत् स्थावर - जङ्गम शरीरोंकी त्रिगुणमयता भी सिद्ध है। त्रिभुवनमें ब्रह्माधिष्ठित जो कुछ कार्यकारणात्मक प्रपञ्च है, वह त्रिगुणात्मक है। -

"न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता १८.४०)

अभिप्राय यह है कि -

"द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः।
श्रद्धावस्थाऽऽकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि।।
सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः।
दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२५.३०,३१)

"द्रव्य, देश, फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, श्रद्धा, अवस्था, देव-मनुष्य-तिर्यगादि शरीर और निष्ठा -सब त्रिगुणात्मक हैं।।"

"हे पुरुषर्षभ! पुरुष और प्रकृतिके आश्रित जितने भी भाव हैं, वे चाहे नेत्रादि इन्द्रियोंके अनुभव किये हुए हों, शास्त्रोंके द्वारा लोक - लोकान्तरोंके

सम्बन्धमें सुने गये हों, अथवा बुद्धिके द्वारा सोचे विचारे गये हों, सब गुणमय हैं।"

"प्रकृतेर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः।
सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः।।
सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते।
गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२२.१२,१३)

"त्रिगुणकी साम्यावस्था प्रकृति है। अतएव सत्त्व, रजस् और तमस् - संज्ञक त्रिगुण आत्माके नहीं, प्रकृतिके हैं। जगत्की स्थिति, उत्पत्ति और संहृतिमें ये ही हेतु हैं।।"

"इस सन्दर्भमें सत्त्वगुण ज्ञान, रजोगुण कर्म और तमोगुण अज्ञान कहा गया है। गुणोंमें क्षोभ करनेवाला सर्वेश्वर ही काल तथा सूत्रात्मक महत्तत्त्व ही स्वभाव है।।"

"प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः।
सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम्।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२४.१९)

"इस प्रपञ्चका परिणामोपादानकारण प्रकृति है। परमात्मा अधिष्ठानात्मक विवर्तोपादान कारण है। इसका निमित्तकारणरूप अभिव्यञ्जक काल है। व्यवहारकालकी यह त्रिविधता वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप है। मैं स्वयं ब्रह्मस्वरूप हूँ।"
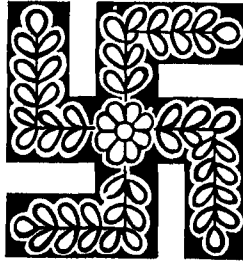
श्लोक : १७
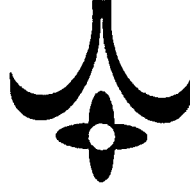
सङ्गति: - द्रष्टाकी ब्रह्मरूपता और दृश्यकी मायिकताका निरूपण -

श्लोक:- दृग्दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्त: परस्परविलक्षणौ।
दृग्ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदान्तडिण्डिम:।।१७।।

सरलार्थ: - द्रष्टा और दृश्य परस्पर - विलक्षण दो पदार्थ हैं। इनमें द्रष्टा ब्रह्म है और दृश्य माया (मायिक) है। ऐसा वेदान्तका डिण्डिम उद्घोष है।।"

सारार्थ: - "**सर्वदृश्यविहीनोऽहं दृग्रूपोऽस्म्यहमेव हि। सर्वदा पूर्णरूपोऽस्मि नित्यतृप्तोऽस्म्यहं सदा।।**" **(तेजोबिन्दूपनिषत् ३.१५)** के अनुशीलनसे आत्मदेव सर्वदृश्यविहीन द्रष्टा सिद्ध होता है। "**दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम्। सम्पन्नं चेत्तदुत्पन्ना परा निर्वाणनिर्वृति:।।**" **(महोपनिषत् २.३८)** के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध होता है कि दृश्यके मिथ्यात्वके बोधसे मन विषयाध्याससे विनिर्मुक्त निर्मल और निश्चल आत्मतादात्म्यापन्न हो जाता है। कदाचित् इस प्रकारका सुयोग सध जाय तो परम निर्वाणरूप उपरामताकी निष्पत्ति होती है। "**द्रष्टुर्दृश्यस्य सत्तान्तर्बन्ध इत्यभिधीयते।। द्रष्टा दृश्यवशाद्बद्धो दृश्याभावे विमुच्यते। जगत्त्वमहमित्यादिसर्गात्मा दृश्यमुच्यते।।**" **(महोपनिषत् ४.४७,४८)** के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध होता है कि दृश्यसंसर्ग ही द्रष्टाके बन्धमें हेतु है। दृश्यके मिथ्यात्वका विनिश्चय हो जानेपर वह मुक्त हो जाता है। इदमात्मक जगत्, त्वं और अहम् - भावापन्नता ही दृश्य है। इन परिच्छिन्न मान्यताओंका निरसन कर दृश्यसंसर्गविमुक्त द्रष्टा त्रिपुटीसे अतीत सर्वाधिष्ठान अद्वय ब्रह्ममात्र है।

"**द्रष्टृदर्शनदृश्यानां मध्ये यद्दर्शनं स्मृतम्। नात: परतरं किञ्चिन्निश्चयो ऽस्त्यरो मुने।।**" **(महोपनिषत् २.६९)**, के अनुसार विवक्षावशात् यह सिद्ध होता है कि त्रिपुटीसे अतीत परमार्थदर्शन ही द्रष्टा और

दृश्यके मध्यवर्ती दर्शनरूपसे उद्भासित है। "**सम्बन्धे द्रष्टृदृश्यानां मध्ये दृष्टिर्हि यद्वपुः। द्रष्टृदर्शनदृश्यादिवर्जितं तदिदं पदम्।।**" (महोपनिषत् ५.४८), "**द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह। दर्शनप्रथमाभासमात्मानं केवलं भज।।**"(मैत्रेय्युपनिषत् २.२९), "**द्रष्टृदर्शनदृश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह। दर्शनप्रत्ययाभासमात्मानं समुपास्महे।।**" (महोपनिषत् ६.१८) के अनुसार द्रष्टारूप आश्रय और दृश्यरूप विषय - निरपेक्ष मध्यवर्ती दर्शनरूपा दृष्टि वस्तुतः त्रिपुटीसे अतीत परम तत्त्व है। द्वैतविषयक वासनासहित त्रिपुटीका त्याग कर देनेपर अर्थात् त्रिपुटीसे उपराम हो जानेपर केवल त्रिपुटी - निरपेक्ष आत्मतत्त्व ही शेष रहता है। अभिप्राय यह है कि त्रिपुटीके निरस्त हो जानेपर निस्तरङ्ग समुद्रवत् , निवातस्थित दीपवत् अचल सम्पूर्ण भावाभावविहीन आत्मज्योतिरूपसे ही स्थितप्रज्ञ शेष रहता है । -

"**त्रिपुट्यां निरस्तायां निस्तरङ्गसमुद्रवन्निवातस्थित - दीपवदचलसम्पूर्णभावाभावविहीनकैवल्यज्योतिर्भवति।**" (**मण्डलब्राह्मणोपनिषत् २.३**)

अतः ज्ञानमयी दृष्टिका सम्पादनकर जगत् को ब्रह्ममय देखना चाहिये। अथवा द्रष्टा, दर्शन और दृश्यके विरामस्थलमें ही दृष्टि सन्निहित करे। ऐसी परम उदारतासे सम्पन्न दृष्टिका ही सदा समादर करे। -

"**दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत् ।**", "**द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत्। दृष्टिंस्तत्रैव कर्त्तव्या न नासाग्रावलोकिनी।।**" (तेजोबिन्दूपनिषत् १.२९,३०)

ध्यानरहे, अनात्मवस्तुओंके अनुरूप आत्ममान्यताका त्यागकर आत्मानुरूप आत्मस्थितिका नाम मुक्ति है। -

"**स्वरूपावस्थितिः मुक्तिः**" (महोपनिषत् ५.२), "**मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः**" (श्रीमद्भागवत २.१०.६) ।

जड (अचित्, दृश्य), अजड (चेतन, दर्शन) और द्रष्टामें जो अनुभवस्वरूप अनामय (निरुपद्रव) परमार्थतत्त्व है, वह त्रिपुटीसारसर्वस्व ब्रह्म है। उसे साक्षादपरोक्ष प्रत्यगात्मा तथा अन्तरात्मा समझकर उसमें मनोनिवेश

प्रपञ्चविस्मरणरूप सुषुप्तिकल्प समाधि है। दृश्यसम्वलित आत्ममान्यता बन्धन और दृश्यसंसर्गविविक्त आत्मानुरूप आत्मस्थिति मुक्ति है। दृश्यके दर्शनमें प्रयुक्त और विनियुक्त दर्शन यद्यपि बन्ध है, तथापि द्रष्टाके दर्शनमें प्रयुक्त और विनियुक्त दर्शन दृश्यसंसर्गविहीन अद्वय बोधात्मक ही सिद्ध है। -

''जडाजडदृशोर्मध्ये यत्तत्त्वं पारमार्थिकम्।
अनुभूतिमयं तस्मात्सारं ब्रह्मेति कथ्यते।।
दृश्यसम्वलितो बन्धस्तन्मुक्तौ मुक्तिरुच्यते।
द्रष्टृदर्शनसम्बन्धे यानुभूतिरनामया।।
तामवष्टभ्य तिष्ठ त्वं सौषुप्तिं भजते स्थितिम्।
सैव तुर्यत्वमाप्नोति तस्यां दृष्टिं स्थिरां कुरु।।''
(अन्नपूर्णोपनिषत् २. १७ - १९)

उक्त रीतिसे द्रष्टाकी ब्रह्मरूपता और दृश्यकी मायारूपता सिद्ध है। मायाका कार्य होनेसे दृश्य मायापदवाच्य है। त्रिपुटीके शिरोभागमें द्रष्टा, ज्ञाता, या प्रमातादिरूप पदार्थ है, उसमें मनुष्यमात्रकी निसर्गसिद्ध आत्मबुद्धि होती है। दृश्ययोगसे सनातनी दृष्टि ही दर्शन और उसके आश्रय द्रष्टारूपसे स्फुरित होती है। त्रिपुटीमें प्रत्येक सामग्री अन्योन्यसापेक्ष होती है। अतः दृश्यके बिना आत्माकी दर्शन और द्रष्टा - संज्ञा नहीं सिद्ध होती। अन्याश्रयनिरपेक्ष त्रिपुटीसे अतीत आत्मा ही ब्रह्म सिद्ध होता है। -

''एकमेवतराभावे यदा नोपलभामहे।
त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः।।''
(श्रीमद्भागवत २.१०.९)

ब्रह्म मायायोगसे दृश्यरूपसे स्फुरित होता है । स्वरूपवैभवकी स्फूर्तिके लिए मायाकी स्वीकृति और स्फूर्ति आवश्यक है। अन्यथा निवर्त्य तमस्के बिना प्रकाशकी प्रकाशताकी सिद्धि भी असम्भव ही है। - **''नो खलु निवर्त्येन तमसा विना प्रकाशस्य प्रकाशता सिध्यति।।''**

स्वमायाशक्तिके योगसे सर्वेश्वर महदादिक्रमसे उसके भीतर चौदह भुवनरूप ब्रह्माण्डकी सृष्टि करता है। उसमें चराचर शरीरोंका निर्माण करता

है। परमेश्वर ही उन सबमें अन्तर्यामिरूपसे और जीवरूपसे प्रविष्ट होकर विश्वका नियमन करता है। वह अपने नियमका अनतिक्रमण करते हुए सुखदु:खका अनुभव किस उद्देश्यसे करता है, ऐसी जिज्ञासा होनेपर तत्त्वज्ञ मनीषी कहते हैं कि जैसे स्वभावसे ही जलका हिमफेनादिरूपसे परिणाम होता है, जैसे वह्निसे धूमका प्रादुर्भाव होता है, वैसे ही परमेश्वरसे कार्यकारणात्मिका माया स्वभावसे ही प्रादुभूत होती है। परमेश्वर आप्तकाम है। उसका कोई प्रयोजन नहीं है। यहाँ मायाशब्दसे मायामयी विश्वसृष्ट्यादिकी प्रवृत्ति कही गयी है। जैसे अग्निमें दाहिकाशक्ति अग्निसे विलक्षण होती है, बीजमें अङ्कुरोत्पादिनी शक्ति बीजसे विलक्षण होती है; वैसे ही ब्रह्ममें रहनेवाली अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोत्पादिनी शक्ति ब्रह्मसे विलक्षण होती है। यही अचिच्छक्ति अविद्या, अज्ञानादि शब्दोंसे भी कही जाती है। वह सद्विलक्षण होनेसे ही मिथ्या कही जाती है। भ्रान्ति या अध्यासको मिथ्याज्ञान एवम् अविद्या कहा जाता है। उस शक्तिको ही मूलप्रकृति भी कह लिया जाता है। वह माया ईश्वरका स्वभाव होनेपर भी अग्निकी उष्णताके तुल्य वस्तुस्वभाव नहीं है, किन्तु सद्विलक्षण होनेसे बाध्य एवम् अनिर्वचनीया है।

अतएव अधिष्ठानज्ञानसे बाधित हो जाना भी उसका स्वभाव है। बुद्बुदादि जलके स्वभाव होनेपर भी जैसे जलके ज्ञानसे बाधित होते हैं, जल ही उनकी अपेक्षा अबाधित एवम् सत्य होता है, वैसे ही माया और मायिक प्रपञ्च ब्रह्मके स्वभाव होनेपर भी बाध्य हैं। सबकी अपेक्षा ब्रह्म ही अत्यन्ताबाध्यरूप परम सत्य है।

आत्मदेव अन्त:करणके योगसे द्रष्टा और दर्शनरूपसे स्फुरित होता है, जैसे कि अपञ्चीकृत आकाशात्मिका शब्दतन्मात्रा स्थूल आकाश और उसके गुण शब्दरूपसे और अपञ्चीकृत पृथ्वीरूपा गन्धतन्मात्रा स्थूला पृथिवी और उसके गुण गन्धरूपसे स्फुरित होती है। जैसे अधिभूत रूप, अध्यात्म नेत्र और अधिदैव सूर्य की तेजोरूपता सिद्ध है, वैसे ही दृश्य, दर्शन और द्रष्टाकी ब्रह्मात्मरूपता सिद्ध है। जैसे रूपके बिना भी तेज है ; परन्तु तेजके बिना रूप नहीं है, वैसे ही दृश्यके बिना भी आत्मा है ; परन्तु आत्माके बिना

दृश्य नहीं है। जैसे नेत्रके बिना भी तेज है ; परन्तु तेजके बिना नेत्र नहीं है, वैसे ही दर्शनके बिना भी आत्मा है; परन्तु आत्माके बिना दर्शन नहीं है। जैसे तेजके बिना भी सूर्य है ; परन्तु सूर्यके बिना तेज नहीं है, वैसे ही द्रष्टाके बिना आत्मा है; परन्तु आत्माके बिना द्रष्टा नहीं है। जैसे तेजकी अभिव्यक्ति और उसका अभिव्यञ्जक संस्थान रूप, नेत्र और सूर्य है; वैसे ही आत्माकी अभिव्यक्ति और उसका अभिव्यञ्जक संस्थान दृश्य, दर्शन और द्रष्टा है।

ध्यान रहे,

रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं दृक्तु मानसम्।
दृश्या धीवृत्तय: साक्षी दृगेव न तु दृश्यते।।
(दृग्दृश्यविवेक)

के अनुसार रूपादि अन्तिम दृश्य हैं। ये केवल भास्य हैं, इनमें किसीके भासक होनेकी क्षमता नहीं है। कारण यह है कि ये तम:प्रधना प्रकृति - समुद्भूत अपञ्चीकृत पञ्च भूतोंके तामस अंशसे निष्पन्न पञ्चीकृत पञ्च भूत और उनके तारतम्यज संघात पुष्प तथा पाषाणादिनिष्ठ विषयभूत गुण हैं। अत: ये दर्शनशक्तिसम्पन्नोंके केवल दृश्य ही हैं, न कि किसीके द्रष्टा। इन्हींके तुल्य अनात्मा होनेपर भी इनकी अपेक्षा नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियोंका द्रष्टृत्व चरितार्थ है। पैङ्गलोपनिषत् के अनुसार नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियोंका प्रादुर्भाव अपञ्चीकृत पञ्चभूतोंके १/४ (तुरीयांश)सम्मिलित सत्त्वांशसे होनेके कारण इनमें ज्ञानाभिव्यञ्जकता और प्रकाशकता सन्निहित है। परन्तु नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियोंकी अपेक्षा भी मनमें अधिक चेतनता सिद्ध होनेके कारण नेत्राादि भास्य हैं और मन भासक है। कारण यह है कि अन्त:करणकी संरचना अपञ्चीकृत पञ्चभूतोंके ३/४ (भागत्रय) सम्मिलित सत्त्वांशसे निष्पन्न है। तथापि मन इदं प्रधान अन्त:करणका अंश होनेके कारण और बुद्धि अहं प्रधान अंश होनेके कारण मनमें बुद्धिकी अपेक्षा दृश्यत्व चरितार्थ है। परन्तु वह बुद्धि भी गुणकार्य होनेसे सङ्कोच - विकाशशील दृश्य ही है। तद्वत् समष्टि बुद्धिरूप महत् और उसका उपादान अव्यक्त , अक्षर या प्रकृतिरूपा माया तक दृश्य ही है। परोवरीय क्रमसे इनमें दृश्य - द्रष्टृभाव चरितार्थ होनेपर भी

श्लोक : १७

निर्विकार स्वप्रकाश निर्गुण आत्मा ही वास्तव द्रष्टा या साक्षी है। यह तथ्य "**इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिः यो बुद्धेः परतस्तु यः।।**" (**श्रीमद्भगवद्गीता ३.४२**) के अनुशीलनसे सिद्ध है।

"**इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः। महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः। पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः।।**" (**कठोपनिषत् २.४.१०,११**) के अनुसार इन्द्रियोंसे उनके उपादानभूत पञ्च सूक्ष्मभूत श्रेष्ठ हैं। पैङ्गलोपनिषत् और महाभारत - शान्तिपर्व ३०२. २६,२७ के अनुसार मनसहित दश इन्द्रियोंकी गणना भौतिक सर्गके अन्तर्गत है। समष्टि अहम् और महत् की अभौतिकता साङ्ख्य और वेदान्त उभय - सम्मत है। इन्द्रियोंसे अहमात्मक मन श्रेष्ठ है। मनसे बुद्धिका उत्कर्ष है। बुद्धिसे उसका समष्टिरूप उपादानभूत महत् का उत्कर्ष है। महत् से उसका उपादान अव्यक्तका उत्कर्ष है। अव्यक्तसे भी उत्कर्ष उसके अधिष्ठानभूत पुरुषका है। वही सबका वास्तव द्रष्टा है। वह साक्षी चेता केवल और निर्गुण है। उस काष्ठा और परा गतिके बोधसे कृतार्थता सम्भव है।

रूपादि अधिभूत का उद्भासक नेत्रादि करणग्रामरूप अध्यात्मवर्ग है। अध्यात्मजगत् का भासक आदित्यादि अधिदैवमण्डल है। अधिदैवमण्डलका भासक जीव है, जो करण और सुरवर्गके बिना ही सुषुप्तिमें शेष रहता है। जिसमें करण और उसके अनुग्राहक अधिदैवके भेदसे भेद नहीं प्राप्त होता। जो करणग्रामका प्रयोक्ता तथा उद्भासक सिद्ध होता है। उस जीवसे भी निरुपाधिक, निर्गुण स्वप्रकाश शिवात्मतत्त्व उत्कृष्ट है। वही एकमात्र सर्वद्रष्टा और अवान्तर द्रष्टाओंका भी द्रष्टा है। काष्ठादि दग्धाओंके भी दग्धा वह्निके तुल्य उसका द्रष्टृत्व अव्यभिचरित है।

श्लोक : १८

सङ्गतिः - आत्माकी साक्षिरूपताका सारार्थरूपसे विवेचन -

श्लोकः- अहं साक्षीति यो विद्याद्विविच्यैवं पुनः पुनः ।
स एव मुक्तः सन् विद्वानिति वेदान्तडिण्डिमः ।।१८ ।।

सरलार्थः - भास्यरूप अनात्म वस्तुओंसे विविक्त, गुणमयभावोंसे अतीत स्वप्रकाश अधिष्ठानस्वरूप अद्वय आत्माका उक्त रीतिसे पुनः - पुनः विवेचनकर 'मैं साक्षी हूँ ' ऐसा जो जानता है, वही मुक्त और विद्वान् है, ऐसा वेदान्तका डिण्डिम उद्घोष है।।

सारार्थः - **''एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।''** (**श्वेताश्वतरोपनिषत् ६.११**) के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध होता है कि आत्मा स्वप्रकाश, अनात्मप्रपञ्चसे अतीत, सर्वव्यापक, सर्वाधिष्ठानस्वरूप सर्वान्तरात्मा, कर्माध्यक्ष, साक्षी, सर्वावभासक, असङ्ग, अद्वितीय और निर्गुण है।

उक्त रीतिसे स्वयंको सर्वाधिष्ठान और सर्वसाक्षी समझनेवाला परा विद्याको आत्मसात् करनेके कारण विद्वान् कहने योग्य है और वही मुक्त भी है।

बन्धन अविद्याकृत है। देह, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरणरूप अनात्मामें आत्मभावनारूपा अविद्या स्वप्रकाश आत्मामें अध्यस्त ही है। -

''कल्पितेयमविद्येयमनात्मन्यात्मभावनात्''
(महोपनिषत् ४. १२८)

जो वस्तुतः विद्यमान न हो, वह अविद्या और माया है। यही अविद्या और मायाकी नामानुरूप निरुक्ति है। अविद्या लुप्तप्रज्ञको ही परिलक्षित होती है। वह सत्यप्रज्ञकी दृष्टिमें विलुप्त होनेके कारण उसे नहीं व्यापती। सच्चित्स्वरूप ब्रह्मात्मतत्त्वके अतिरिक्त किसीकी सत्ता , चित्ता और प्रियता

नहीं है। अतः अविद्यारूपा मायासहित उसके कार्यवर्गका मिथ्यात्वनिश्चयरूप बाध हो जानेपर मायिक जगत्‌की द्विचन्द्रवत् , मृद्घटादिवत् बाधितानुवृत्तिसे प्रतीति होनेपर भी तत्त्वज्ञ उसके प्रति आस्थान्वित नहीं होता। त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसंज्ञक मायागत विशुद्ध सत्त्वात्मिका मायाके योगसे ब्रह्म ईश्वररूपसे और मलिनि सत्त्वात्मिका अविद्याके योगसे जीवरूपसे तथा तमःप्रधाना प्रकृतिरूपा विक्षेपशक्तिके योगसे जगत् - रूपसे स्फुरित होता है। ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्वविज्ञानके अमोघ प्रभावसे माया और उसके कार्यवर्गके विलयके अनन्तर जगदीश्वर, जीव और जगत् - भेद निरस्त हो जाता है और अद्वयात्मतत्त्व ही अवशिष्ट रहता है। -

"अविद्याऽविद्यमानैव नष्टप्रज्ञेषु दृश्यते।
नाम्नैवाङ्गीकृताकारा सम्यक्प्रज्ञस्य सा कुतः।।"
(महोपनिषत् ४.११२)

"या च प्रागात्मनो माया तथान्ते च तिरस्कृता।।
ब्रह्मवादिभिरुद्गीता सा मायेति विवेकतः।
मायातत्कार्यविलये नेश्वरत्वं न जीवता।।"
(वराहोपनिषत् २.५१,५२)

पैङ्गलोपनिषत् के अनुसार मूलशक्तिसे आवरणशक्ति, आवरणशक्तिसे विक्षेपशक्ति और विक्षेपशक्तिसे स्थूलशक्तिकी अभिव्यक्ति होती है। मूलप्रकृति मूलशक्ति है। सत्त्वप्रधाना आवरणशक्ति है। रजोगुणप्रधाना विक्षेपशक्ति है। तमोगुणप्रधाना स्थूलशक्ति है। मूलप्रकृतिरूपा मूलशक्तिमें प्रतिबिम्बित साक्षिचैतन्य है। अव्यक्तरूपा सत्त्वप्रधाना आवरणशक्तिमें प्रतिफलित ईश्वरचैतन्य है। महदात्मिका रजोगुणप्रधाना विक्षेपशक्तिमें प्रतिबिम्बित हिरण्यगर्भ है। अहमात्मिका तमोगुणप्रधाना स्थूलशक्तिमें प्रतिबिम्बित विराट् - चैतन्य है।

सरस्वतीरहस्योपनिषत् के अनुसार शुद्धसत्त्वप्रधाना प्रकृति **माया** कहलाती है। उसमें प्रतिबिम्बित चेतन अज, अनादि, लोकमहेश्वर कहलाता है। अपनी उपाधि मायाको वशमें रखना, अद्वितीय रहना तथा सर्वज्ञ होना सर्वेश्वरके लक्षण हैं। विशुद्ध सत्त्वोपाधि, समष्टिरूप, सर्वसाक्षी होनेके कारण

श्लोक : १८

सर्वेश्वर जगत् की सृष्टि करने, न करने या अन्यथा करनेमें समर्थ हैं। मायाकी विक्षेप और आवरणरूपा दो शक्तियाँ हैं। विक्षेपशक्ति सूक्ष्म और स्थूल जगत् की उत्पत्तिमें हेतु है। आवरणशक्ति भीतर द्रष्टा और दृश्यके भेदको तथा बाहर ब्रह्म और सर्ग (समष्टि) के भेदको आवृत करती है। यह संसारबन्धनका कारण है। इसी कारण असङ्ग साक्षी सूक्ष्म और स्थूल शरीरमें तादात्म्यापन्न जीवभावको प्राप्त होता है। आवरणशक्तिके नष्ट होनेपर जीवभाव विगलित होता है। साक्षीके अस्तित्वमें आस्था और उसके स्वरूपके स्फुरणसे असत्त्वापादक और अभानापादक उभयविध आवरणका ध्वंस सुनिश्चित है। द्रष्टाकी दृश्यसे विविक्तता और असङ्गताके परिज्ञानसे क्रमशः असत्त्वापादक तथा अभानापादक आवरणका विध्वंस होता है। इसी प्रकार, नामरूपात्मक जगत्में अस्ति, भाति और प्रियरूपसे अनुगत तथा उद्भासित ब्रह्मके बोधसे कार्यप्रपञ्च और प्रकृतिसे अतीत तथा अलिप्त अधिष्ठानात्मक ब्रह्म अवशिष्ट रहता है। इस प्रकार, विक्षेपशक्ति **जगत्** की संरचनामें और आवरणशक्ति **संसार**के सर्जनमें हेतु है।

जीवके बन्धनमें हेतु संसार है। जगत्में सत्यत्वबुद्धि संसारका प्रवर्तक है। अतः संसारके मिथ्यात्व और जगत्के सत्यत्वकी मान्यता निरस्त है। वस्तुतः दोनोंका मिथ्यात्व ही निगमागमसारसर्वस्व है। सृष्टकी स्वतः सत्ता सर्वथा असम्भव है। उसकी नश्वरता सुनिश्चित है। जगत् जगदीश्वरका अभिव्यञ्जकसंस्थान और उन्हींका अभिव्यक्तस्वरूप होनेपर भी परम वरेण्य नहीं है। अहन्ता तथा ममतारूप संसार व्यवहारसाधक होनेपर भी वैराग्यास्पद अवश्य है। सुषुप्त्यादिमें उसका अदर्शन उसकी अतात्त्विकताका निदर्शन है।-

"सत्यत्वेन जगद्भानं संसारस्य प्रवर्तकम्।।
असत्यत्वेन भानं तु संसारस्य निवर्तकम्।"
(आत्मोपनिषत् ४, ४.१/२)

देहात्मबुद्धि **संसार** है - **"देहोऽहमिति सङ्कल्पो महत्संसार उच्यते" (तेजोबिन्दूपनिषत् ५.९०)**। सर्वशक्ति महेशका मनोविलास **जगत्** है और जीवका मनोविलास **संसार** है । नाम-रूपात्मक जगत् में ब्रह्मके अन्वय और

श्लोक : १८

ब्रह्म में नामरूपात्मक जगत्के व्यतिरेकके अनुशीलनसे जगत् में मिथ्यात्व-बुद्धि और संसारकी आत्यन्तिकी निवृत्ति सम्भव है ।-"**सर्वशक्तेर्महेशस्य विलासो हि मनो जगत्। संयमासंयमाभ्यां च संसारः शान्तिमन्वगात्।।**" (**महोपनिषत् ४.८७**)। ईक्षणादि प्रवेशान्त ईशकल्पित सृष्टि जगत् है और जाग्रदादि विमोक्षान्त जीवकल्पित द्वैत संसार है - "**ईक्षणादिप्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन कल्पिता। जाग्रदादिविमोक्षान्तः संसारः जीवकल्पितः।।**" (**वराहोपनिषत् २.५४**)। ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है -"**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या** " (**निरालम्बोपनिषत्**)

ईशसृष्ट द्वैतप्रपञ्च जगत् है और जीवसृष्ट द्वैतपपञ्च संसार है। जीवके बन्धनमें संसार कारण है। जगत् नामरूपात्मक है। ब्रह्म अस्ति, भाति, प्रियरूप सच्चिदानन्दस्वरूप है। नामरूपात्मक जगत्की उपेक्षा कर सच्चिदानन्दस्वरूप जगदीश्वरमें मनःसमाधान कर्त्तव्य है। कारण यह है कि नाम, रूपकी अपेक्षासे ही सच्चिदानन्दकी जगद्रूपता है। -

"अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम्।।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्।
अपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानन्दतत्परः।।"
(सरस्वतीरहस्योपनिषत् २३,२४)

"अस्ति (है),भाति (प्रतीत होता है), प्रिय (आह्लादप्रद है)तथा रूप और नाम -ये पाँच अंश हैं। इनमें अस्ति (सत्), भाति (चित्), प्रिय (आनन्द) ब्रह्मके स्वरूप (ब्रह्मरूप) हैं तथा नाम और रूप जगत् के स्वरूप हैं। अभिप्राय यह है कि सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म है और नामरूपात्मक जगत् है। इन नामरूपद्वयके योगसे ही ब्रह्मकी जगद्रूपता सिद्ध है।।"

जिस प्रकार, मेघमण्डल विद्युत् का अभिव्यञ्जक संस्थान है ; उसी प्रकार नामरूपात्मक जगत् इन्द्रियागोचर करणातीत ब्रह्मका अस्ति, भाति, प्रियके रूपमें अभिव्यञ्जक संस्थान है। नामरूपात्मक जगत् की ब्रह्माभिव्यञ्जकता ही इसकी चरम सार्थकता है। अन्नादिकी अभिव्यक्तिसे जीवन-यापनकी संसिद्धि तथा कार्य-कारणात्मक शरीरसे आत्माके श्रवणादिमें प्रीति-प्रवृत्ति इसकी लौकिक

धरातलपर उपयोगिता है। इस प्रकार अभ्युदय और नि:श्रेयसकी सिद्धिमें सृष्टिकी सार्थकता सन्निहित है।

जगत् को नामरूपात्मक लाघवदृष्टिसे माना गया है। ब्रह्मको अस्ति, भाति, प्रिय - इन तीन शब्दोंसे अभिहित करनेके तुल्य जगत्को नाम, रूप, कर्मात्मक मानना भी प्रक्रिया - दृष्टिसे उचित है। उपनिषदोंने नामरूपात्मक और नामरूपकर्मात्मक दोनों रूपोंमें जगत् का प्रतिपादन किया है। -

''अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि'' (छान्दोग्योपनिषत् ६. ३. २), ''तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नाम-रूपाभ्यामेव व्याक्रियतासौ नामायमिदं रूप:'' (बृहदारण्यकोपनिषत् १.४.७),''सर्वाणिरूपाणि विचित्य धीर:। नामानि कृत्वाऽभिवदन्य-दास्ते।'' (महावाक्योपनिषत्),''त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म'' (बृहदारण्यकोपनिषत् १.६.१)

नाम शब्दात्मक है। उसकी स्फूर्ति वाक् से होती है। रूप तेजोनिष्ठ गुणविशेष है, उसका अधिगम नेत्रोंसे होता है। कर्मकी सिद्धि प्राणात्मासे होती है। -

''त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म तेषां नाम्नां वागित्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि नामान्युत्तिष्ठन्ति। एतदेषां सामैतद्धि सर्वैर्नामभि: सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि बिभर्ति।। अथ रूपाणां चक्षुरित्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि रूपाण्युत्तिष्ठन्ति। एतदेषां सामैतद्धि सर्वै रूपै: सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि रूपाणि बिभर्ति। अथ कर्मणामात्मेत्येतदेषामुक्थमतो हि सर्वाणि कर्माण्युत्तिष्ठन्ति। एतदेषां सामैतद्धि सर्वै: कर्मभि: सममेतदेषां ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति। तदेतत्त्रयं सदेकमयमात्माऽत्मो एक: सन्नेतत्त्रयं तदेतदमृतं सत्येनच्छन्नं प्राणो वा अमृतं नामरूपे सत्यं ताभ्यामयं प्राणश्छन्न:।'' (बृहदारण्यकोपनिषत् १.६.१-३)

''यह वाक् उन नामोंका उक्थ (कारण) है। यह इसका साम है। यही सब नामोंमें समान है। समस्त नामोंको धारण करनेवाली वाक् इनका ब्रह्म है।। रूपाभिव्यञ्जक चक्षु उन रूपोंका उक्थ (कारण) है। यह इसका साम है। यही

सब रूपोंमें समान है। समस्त रूपोंको धारण करनेवाला चक्षु इनका ब्रह्म है।। कर्माभिव्यञ्जक कार्यकरणसङ्घात्मा उन कर्मोंका उक्थ (कारण) है। यह इसका साम है। यही सब कर्मोंमें समान है। समस्त कर्मोंको धारण करनेवाला प्राणात्मा इनका ब्रह्म है। उक्त नाम, रूप और कर्म एक - दूसरेके आश्रित, एक - दूसरेके अभिव्यञ्जक और एक - दूसरेमें लीन होने वाले परस्पर मिले हुए तीन दण्डोंके समूहके समान हैं। नामरूपात्मक लौकिक सत्यसे प्राणामृत आच्छादित है।।"

चक्षु, मन और आत्माके संयुक्त होनेपर रूपाधिगम होता है। श्रोत्र, मन और आत्माके संयुक्त होनेपर शब्दाधिगम होता है। कर, मन और आत्माके संयुक्त होनेपर कर्मानुष्ठान होता है। अतएव इन्द्रिय, अन्तःकरण और आत्मसंयोगसे नाम,रूप तथा कर्मकी सिद्धि सम्भव है। यह तथ्य "**रूपग्रहणप्रयोजनस्य मनश्चक्षुरधीनत्वाद्बाह्यवदान्तरेप्यात्म-मनश्चक्षुःसंयोगेनैव रूपग्रहणकार्योदयात्।**" (**अद्वयतारकोपनिषत् १**) के अनुशीलनसे सिद्ध है।

"**कर्णौ शब्दश्च चित्तं च त्रयः श्रवणसङ्ग्रहे।**
तथा स्पर्शे तथा रूपे तथैव रसगन्धयोः।।
एवं पञ्चत्रिका ह्येते गुणास्तदुपलब्धये।
येनायं त्रिविधो भावः पर्यायात्समुपस्थितः।।"
(श्रीमहाभारतशान्तिपर्व २१९.२३,२४)

"श्रवणकालमें श्रोत्ररूपी इन्द्रिय, शब्दरूपी विषय और आत्मचैतन्यसे अधिष्ठित चित्तरूपी कर्त्ताका संयोग होता है। इसी प्रकार स्पर्श, रूप, रस और गन्धके अनुभवकालमें विषय, इन्द्रिय और आत्मचैतन्यसे अधिष्ठित चित्तका संयोग अपेक्षित है।।"

"इस प्रकार, तीन - तीनके पाँच समुदाय हैं। ये गुण कहे जाते हैं। विषयोपलब्धिके लिए पञ्चविध त्रिक क्रमसे समुपस्थित होते हैं।।"

जब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और इनके अभिव्यञ्जक संस्थानको नामरूपात्मक कहा जाता है, तब शब्दमात्रको **नाम** और ब्रह्मात्मातिरिक्त

अभिधेयमात्रको **रूप** माना जाता है। यह तथ्य "**वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणिरूपाणीत्येव सत्यम्**" (**छान्दोग्योपनिषत् ६. ४. २**) इस उक्तिके अनुशीलनसे सिद्ध है।

उक्त रीतिसे नामकी सिद्धि वाक् से, रूपकी सिद्धि मनसे और कर्मकी सिद्धि प्राणोंसे होनेके कारण तेजोमयी वाक्, आपोमय प्राण और अन्नमय मनकी जीवान्नमयता (भोग्यरूपता) सिद्ध है। - "**अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्।**" (**छान्दोग्योपनिषत् ६.५.४**), "**...मनो वाचं प्राणं तान्यात्मनेऽकुरुत ....अयमात्मा वाङ्मयो मनोमयः प्राणमयः**" (**बृहदारण्यकोपनिषत् १.५.३**)

उक्त रीतिसे विचार करनेपर पदात्मक नामकी सिद्धि वाक् से और पदार्थात्मक रूपकी सिद्धि मन तथा उसके उद्गमस्थान मायासे होती है। इन सबकी सिद्धि चिदाकाशस्वरूप ब्रह्मसे होती है। अतएव क्रियाकारकफलरूप जगत् की नामरूपकर्मता, वाक् -प्राण-मनोमयताके तुल्य मायामयता और ब्रह्ममयता सिद्ध है -

"यदिदं मनसा वाचा चाक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः।
नश्वरं गृह्यमाणं विद्धि मायामनोमयम्।।"
(श्रीमद्भागवत ११. ७ .७)

"इस जगत्में जो कुछ मनसे सोचा जाता है, वाणीसे कहा जाता है, नेत्रोंसे देखा जाता है और श्रवणादि इन्द्रियोंसे अनुभव किया जाता है, वह सब नश्वर, मायामय मनोमात्र है, ऐसा समझो।।"

नाम नामरूपका निर्वाहक आकाश है तथा अधिष्ठान ब्रह्म है। - "**आकाशो वै नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तारा तद् ब्रह्म**" (**छान्दोग्योपनिषत् ८.१४.१**), "**ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि बिभर्ति**" (**बृहदारण्यकोपनिषत् १.६.१**), "**ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति**" (**बृहदारण्यकोपनिषत् १.६.२**), "**ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि कर्माणि बिभर्ति**" (**बृहदारण्यकोपनिषत् १.६.३**), "**ब्रह्मैव सर्वनामानि रूपाणि विविधानि च। कर्माण्यपि समग्राणि बिभर्तीति विभावय।।**" (**योगशिखोपनिषत्**

४. ६), "यदस्ति सन्मात्रम्। यद्विभाति चिन्मात्रम्। यत्प्रियमानन्दं तदेतत्सर्वाकारा महात्रिपुरसुन्दरी।" (बह्वृचोपनिषत्)

विवक्षावशात् यह भी सिद्ध होता है कि सत्प्रधान **रूप** है। चित्प्रधान **नाम** है। आनन्दप्रधान **कर्म** है। सत् का अभिव्यञ्जक तमस् है। चित् का अभिव्यञ्जक रजस् है। आनन्दका अभिव्यञ्जक सत्त्व है। ओङ्कारगत अकार सत्प्रधान **रूप** है। ओङ्कारगत उकार चित्प्रधान **नाम** है। ओङ्कारगत मकार अभीष्ट सुखप्रद होनेसे आनन्दप्रधान **कर्म** है।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तैत्तिरीयोपनिषत् २.१) में विधिमुखसे ब्रह्मकी सच्चिद्रूपताका प्रतिपादन है। इस दृष्टिसे ब्रह्मको सत्, चित् और जगत्को नामरूपात्मक मानना भी युक्त है। नामरूपात्मक जगत् में सच्चिद्रूप ब्रह्मकी अनुगति सिद्ध है। -

"अस्तीत्युक्ते जगत्सर्वं सद्रसं ब्रह्म तद्भवेत्।।
भातीत्युक्ते जगत्सर्वं भानं ब्रह्मैव केवलम्।
मरुभूमौ जलं सर्वं मरुभूमात्रमेव तत्।
जगत्त्रयमिदं सर्वं चिन्मात्रं स्वविचारतः।।"
(वराहोपनिषत् २. ७१-७२)

"जगत् है, ऐसा कहे तो अनुगत सत्ताके योगसे जगत् सदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही सिद्ध होता है। जगत् भासता है, ऐसा कहे तो भानस्वरूप केवल ब्रह्म है। अतः अनुगत चित्ताके योगसे जगत् भानस्वरूप ब्रह्म ही सिद्ध होता है। जिस प्रकार मरुभूमिमें परिलक्षित जल विचारशीलोंकी दृष्टिमें मरुमात्र ही सिद्ध होता है, उसी प्रकार प्रामाणिक विचारपूर्ण निरीक्षण - परीक्षण करनेपर यह सात्त्विक, राजस, तामस; क्रिया, कारक, फलात्मक त्रिभुवनरूप सर्व जगत् सर्वाधिष्ठान आत्मस्वरूपका विचार करनेपर चिन्मात्र ही सिद्ध होता है।।"

"अस्ति चेदस्तितारूपं ब्रह्मैवास्तित्वलक्षणम्।।
अस्तितालक्षणा सत्ता सत्ता ब्रह्म न चापरा।
नास्ति सत्तातिरेकेण नास्ति माया च वस्तुतः।।
योगिनामात्मनिष्ठानां माया स्वात्मनि कल्पिता।

साक्षिरूपतया भाति ब्रह्मज्ञानेन बाधिता।।
ब्रह्मविज्ञानसम्पन्नः प्रतीतमखिलं जगत्।
पश्यन्नपि सदा नैव पश्यति स्वात्मनः पृथक्।।"
(पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ४३ - ४६)

"नाम - रूप - क्रियात्मक जगत् में अनुगत अस्ति - संज्ञक सत्स्वरूप ब्रह्मात्मतत्त्वके योगसे ही पर्वत, पुष्प, लता, वनिता, वन, देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण, सूर्य, चन्द्र, इन्द्रादिकी अस्ति (है) - रूपसे प्रतीति होती है। ब्रह्मातिरिक्त किसीका अस्तित्व नहीं है। अस्तिता ही सत्ता है और सत् - स्वरूप ब्रह्म ही है, न कि कोई और कुछ अन्य। उसके अतिरिक्त मायिक जगत् ही नहीं, अपितु माया भी वस्तुतः नहीं है। आत्मनिष्ठ तत्त्वज्ञ योगीके आत्मस्वरूपमें माया कल्पित ही है। यद्यपि माया और मायिक जगत् की स्फूर्ति व्यवहारदशामें उन योगीन्द्र - मुनीन्द्रोंको भी होती है, तथापि वे ब्रह्मज्ञानसे उसे बाधित ही जानते और मानते हैं, वे साक्षिस्वरूपसे पृथक् माया और उसके कार्यको मान्यता नहीं देते। क्योंकि ब्रह्मज्ञानसम्पन्न अमलात्मा परमहंस प्रतीयमान सर्व जगत् को देखते हुए भी आत्मस्वरूपसे पृथक् नहीं देखते।। "

"विवेकयुक्तिबुद्ध्याहं जानाम्यात्मानमद्वयम्।
तथापि बन्धमोक्षादि व्यवहारः प्रतीयते।।
निवृत्तोऽपि प्रपञ्चो मे सत्यवद्भाति सर्वदा।
सर्पादौ रज्जुसत्तेव ब्रह्मसत्तैव केवलम्।
प्रपञ्चाधाररूपेण वर्ततेऽतो जगन्नहि।।"
(आत्मप्रबेधोपनिषत् ११,१२)

" विवेकी न्यायविदोंकी यह मान्यता होती है कि विवेक और आगमिक (वेदान्तशास्त्रसम्मत) - युक्तियुक्त - बुद्धिके अनुसार मैं आत्माको अद्वितीय जानता हूँ, तथपि बन्धमोक्षादिरूप व्यवहार प्रतीत होता है। यह प्रपञ्च ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्वविज्ञानसे निवृत्त होनेपर भी सदा ही प्रतीतिकालमें सत्यवत् परिलक्षित होता है, न कि सत्य ही। रज्जुविज्ञानसे बाधित सर्प सर्पवत् परिलक्षित होनेपर भी रज्जुविज्ञानीको जिसप्रकार आह्लादित ही करता है, न कि उसके

भयादिरूप अनर्थमें हेतु होता है । उसका यह अडिग निश्चय होता है कि प्रतीयमान सर्प न तो रज्जुके अन्दर है और न बाहर ही, एकमात्र रज्जुघन ही सर्परूपसे परिलक्षित हो रहा है। तद्वत् व्यवहारदशामें भी तत्त्वज्ञ मनीषीकी यह अविकम्प आस्था होती है कि सच्चिदानन्दघन जगदाधार ब्रह्मात्मतत्त्व बाह्याभ्यन्तर सर्वभेद - शून्य होता हुआ ही बन्ध और मोक्षादि तथा पृथ्वी, पानी, प्रकाश और पवनादिरूपसे उद्भासित हो रहा है।।''

''न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्नवै मुक्त इत्येषा परमार्थता।।''
(त्रिपुरातापिन्युपनिषत् ५.१०)

''तत्त्वज्ञ मनीषीकी दृष्टिमें इस सन्दर्भमें वास्तविकता यह है कि ब्रह्मात्मतत्त्वके अतिरिक्त न प्रलय है, न उत्पत्ति है, न बद्ध है, न साधक और न कोई मुमुक्षु ही है।।''

''कालत्रये यथा सर्पो रज्जौ नास्ति तथा मयि।
अहङ्कारादिदेहान्तं जगन्नास्त्यहमद्वयः।।
चिद्रूपत्वान्न मे जाड्यं सत्यत्वान्नानृतं मम।
आनन्दत्वान्न मे दुःखमज्ञानाद्भाति सत्यवत्।।''
(आत्मप्रबोधोपनिषत् २९,३०)

''जिस प्रकार तीनों कालोंमें रस्सीमें वास्तव सर्प नहीं है, उसी प्रकार आविद्यक अहङ्कारसे देहपर्यन्त जगत् मुझमें नहीं है। अतः मैं सर्वतोभावेन अद्वितीय हूँ। मैं चित्स्वरूप हूँ ; अतः मुझमें जडता नहीं है। मैं सत्य हूँ ; अतः मुझमें अनृत नहीं है। मैं आनन्द हूँ ; अतः मुझमें दुःख नहीं है। मुझ अद्वय सच्चिदानन्दमें असच्चिदानन्दरूप जगत् केवल अज्ञानसे ही भासित होता है।।''

''अस्तीत्युक्ते जत्सर्वं सद्रसं ब्रह्म तद्भवेत्।।
भातीत्युक्ते जगत्सर्वं भानं ब्रह्मैव केवलम्।
मरुभूमौ जलं सर्वं मरुभूमात्रमेव तत्।
जगत्त्रयमिदं सर्वं चिन्मात्रं स्वविचारतः।।''
(वराहोपनिषत् २. ७२)

श्लोक : १८

"आधिदैविक, आध्यात्मिक और आध्यात्मिक सर्व जगत् अस्तित्व और आनन्दरूपसे परिलक्षित होता है, अतएव सत् और रसरूप अवश्य है, ऐसी आशङ्का होनेपर उत्तर यह है कि वस्तुतः सत् और रसस्वरूप ब्रह्म ही है, न कि जगत्। कारण यह है कि अधिष्ठानगत इदमंश अध्यस्तमें अनुगत होता है, जिसके प्रभावसे अवास्तव होनेपर भी अभिमत कल्पितकी सत्ता और प्रियता परिलक्षित होती है। तद्वत् सर्व जगत् भासित होता है, अतः सत्य अवश्य है, ऐसी आशङ्का होनेपर उत्तर यह है कि भानस्वरूप केवल ब्रह्म ही है। जिसप्रकार मरुभूमिमें प्रतीयमान सर्व जल मरुभूमिमात्र है, उसी प्रकार आत्मस्वरूपका विचार करनेपर आधिभौतिक - आध्यात्मिक - आधिदैविक, नाम - रूप - क्रियात्मक, क्रिया - कारक - फलात्मक त्रिविध सम्पूर्ण जगत् चिन्मात्र ही है।।"

"तदेतत्प्रेयः पुत्रात्प्रेयो वित्तात्प्रेयोऽन्यस्मात्सर्वस्मादन्तरतमं यदयमात्मा स योऽन्यमात्मनः प्रियं बुवाणं ब्रूयात्प्रियं रोत्स्यतीतीश्वरो ह तथैव स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीत स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्य प्रियं प्रमायुकं भवति।।"

(बृहदारण्यकोपनिषत् १.४.८)

"यह आत्मतत्त्व परम प्रिय है। पुत्रसे प्रिय है, वित्तसे प्रिय है। देहेन्द्रियप्राणान्तःकरण सबसे अन्तरङ्ग जो यह आत्मा है, वह सर्वाधिक प्रिय भी है। आत्माके अतिरिक्त वस्तुतः कोई भी प्रिय नहीं है। जो कोई आत्मासे अतिरिक्तको प्रिय बोलता हो, उसे दो टूक शब्दोंमें कह देना चाहिये कि वह जिसे तुम प्रिय मानते हो, वह अयोगास्पद, संयोगास्पद और वियोगास्पद होनेके कारण अवश्य अनात्मा है, अतएव प्रिय नहीं है। जो वस्तुतःप्रिय नहीं है, उसीको तुम प्रिय मानते हो, अतः तुम्हारा प्रिय तुम्हें अवश्य रुलायेगा। वह जो अनात्मवस्तुओंकी दासता न स्वीकार कर विवेकबुद्धिसे आत्माको ही एकमात्र प्रिय मानता है, वह भवबन्धके वारणमें अवश्य ही समर्थ होता है। उसके द्वारा मान्य प्रिय वास्तव प्रिय होनेके कारण उसके लिये अभिशापरूप क्लेशप्रद नहीं बनता।। "

श्लोक : १८

" न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति, आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।।" (बृहदारण्यकोपनिषत् २. ४.५)

"निस्सन्देह सबकी कामनासे सब प्रिय नहीं होता, अपितु आत्माकी कामनासे सब प्रिय होता है। अभिप्राय यह है कि अन्योंमें प्रीति आत्माके लिये हेती है, जबकि आत्मामें प्रीति किसी अन्यके लिये नहीं होती, अतः आत्मा ही सर्वतोभावेन वरणीय, भजनीय, परप्रेमास्पद परमानानन्दस्वरूप है।।"

"सर्वं सुखं विद्धि सुदुःखनाशात् सर्वं च सद्रूपमसत्यनाशात्।
चिद्रूपमेव प्रतिभानयुक्तं तस्मादखण्डं मम रूपमेतत्।।"
(वराहोपनिषत् ३.४)

"आत्माकी अद्वितीय सच्चिदानन्दरूपताके बोधसे अगाध दुःख, असत्य और अचित् - अनात्मप्रपञ्चके मिथ्यात्वका दृढ़निश्चय करो तथा उस आस्थाके अमोघ प्रभावसे सबको सुखरूप , सत्स्वरूप और चित्स्वरूप समझो। ऐसी दृढ आस्था रखो कि सत्स्वरूप आत्माकी असत् - रूपसे, चित्स्वरूप आत्माकी अचित् - रूपसे और आनन्दस्वरूप आत्माकी दुखरूपसे विरूप प्रतीति मायाकी लोकोत्तर चमत्कृति है। अतएव मेरा यह स्वरूप सर्वथा अखण्ड ही है।।"

"यदज्ञानाद् भवेद्द्वैतमितरत्तत्प्रपश्यति।
आत्मत्वेन तदा सर्वं नेतरत्तत्र चाण्वपि।।
अनुभूतोऽप्ययं लोको व्यवहारक्षमोऽपि सन्।
असद्रूपो यथा स्वप्न उत्तरक्षणबाधितः।।"
(योगशिखोपनिषत् ४.९,१०)

"जिस आत्माके अज्ञानसे द्वैत समुत्पन्न होता है और आत्माको अपनेसे भिन्न - सरीखा अन्यरूपसे देखता है,परन्तु जब अद्वयात्मका बोध सुलभ होता है, तब आत्मरूप से ही सबको देखता है, आत्मासे भिन्न अणुमात्र भी नहीं देखता। यह जगत् अनुभवगोचर और व्यवहारसाधक परिलक्षित होनेपर भी उत्तर क्षणमें बाधयोग्य स्वप्नतुल्य असत् - रूप ही है।।"

श्लोक : १८

"निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते।
सा सर्वदा भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते।।"
(अध्यात्मोपनिषत् ४४)

"निर्विकल्पा और चिन्मात्रा बुद्धिवृत्तिका नाम प्रज्ञा है। वह सर्वदा जिसे सुलभ रहती है, वह जीवन्मुक्त है।।"

सत्त्व, रजस् तथा तमस् की साम्यावस्थारूपा प्रकृति अविद्या है। सर्गदशामें गुणक्षोभके अनन्तर वह सर्वगत अर्थात् देहादिकार्य - प्रपञ्चसे अनवच्छिन्न, स्थिरबोधरूप, सर्वाधार, कूटस्थ, आत्मामें क्षेत्रसंज्ञक कार्यात्मक प्रपञ्चकी सृष्टि करती है। जैसे प्रकाशरूप सूर्यमें प्रकाशमान राहु सूर्यका स्पर्श नहीं करता, वैसे ही स्वप्रकाश आत्मामें प्रकाशमाना अविद्या भी आत्माका स्पर्श नहीं करती।

अविद्याकी तमःशक्ति आत्माके स्वरूपका आच्छादन करती है, रजःशक्ति रूपान्तरसम्पादन करती है तथा सत्त्वशक्ति प्रकाशन करती है। -

"सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते।
गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्र(/तत्त्व)मेव च।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२२.१३)

"इस सन्दर्भमें यह ध्यान रखना चाहिये कि सत्त्वगुण ज्ञान है , अर्थात् ज्ञानस्वरूप आत्माका अभिव्यञ्जक संस्थान है। रजोगुण कर्मसम्पादक होनेसे तथा स्वभावप्रेरित कार्योन्मुख वस्तुका वस्त्वन्तर या तत्त्वान्तररूप जन्म प्रदायक होनेसे कर्म है। तमोगुण तत्त्वके अग्रहण और अन्यथा ग्रहणमें हेतु होनेसे अज्ञान कहा जाता है। गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला काल है तथा कालकृत क्षोभके अनन्तर क्षुब्धवस्तुको वस्त्वन्तरके रूपमें परिणत होनेके अनुरूप गति - प्रवृत्ति - प्रदायक काल और कर्मका मध्यवर्ती सेतुरूप सूत्रात्मक तत्त्व स्वभाव है।।"

सृष्टिका आधार सृष्टिरचनाके पूर्व अनुत्पन्न देहादिरूप कार्यप्रपञ्चसे अनवच्छिन्न अर्थात् सर्वगत आत्मा है। इसी तरह, क्षणिक विज्ञानसन्तान सृष्टिका

आधार नहीं, किन्तु कूटस्थ नित्य स्थिरस्वभाव ज्ञानरूप आत्मा उसका आधार है। क्षेत्रज्ञरूप विभु अद्वयात्मा ही अविद्यासहित कार्यवर्गका आश्रय है। -

''मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।''
(श्रीमद्भगवद्गीता ९.१०)

''यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।''
(श्रीमद्भगवद्गीता १३.३३)

ध्यान रहे, अविद्या कोई पारमार्थिक वस्तु नहीं है। वह अविचारित रमणीय अपारमार्थिक वस्तु है। अतएव उससे आत्माका स्पर्श नहीं होता। इसी लिए वार्तिककारने कहा है कि अविद्याकी अभिमति (मान्यता, स्वीकृति) अविद्याभूमिमें प्रतिष्ठित होकर ही सम्भव है। ब्रह्मदृष्टिसे अवलोकन करनेपर उसकी सिद्धि सर्वथा असम्भव ही है। -

''अविद्यास्येत्यविद्यायामेवासित्वा प्रकल्पते।
ब्रह्मद्वारा त्वविद्येयं न कथञ्चन युज्यते।।''

''अविद्यामें स्थित होकर ही आत्माश्रित अविद्याके अस्तित्वकी कल्पना की जाती है। ब्रह्मात्मदृष्टिसे वह कथमपि उपपन्न नहीं है।।''

ध्यान रहे, अमरवेलका स्वतः कोई मूल न होनेपर भी आश्रयरूप वृक्षसे जीवनी - शक्ति लाभकर ऋतुकालमें वह स्वर्णाभ पुष्पोंको समुत्पन्न करती है तथा लुब्ध भ्रमरगण उसके पराग और मकरन्दका आस्वादनकर आनन्दविभोर रहते हुए विहरण करते हैं, तद्वत् मायारूपा अविद्याका स्वतः कोई मूल न होनेपर भी आश्रयरूप ब्रह्मात्मतत्त्वसे वह सत्ता और स्फूर्ति प्राप्त करती है तथा सर्गदशामें विविध ब्रह्माण्डोंकी संरचना करती है। अविद्यालम्पट मायामोहित प्राणी ब्रह्माण्डपुष्पोंका आस्वादन कर आनन्दनिमग्न उन्मत्त विचरण करते हैं।

अभिप्राय यह है कि उलूकानुभवसिद्ध अन्धकारका आश्रय जैसे प्रकाशपुञ्ज सूर्य होता है, वैसे ही अज्ञानुभवसिद्ध अविद्याका आश्रय ब्रह्म होता है।-

श्लोक : १८

उलूकस्य यथा भानुरन्धकारः प्रतीयते।
स्वप्रकाशे परानन्दे तमो मूढस्य जायते॥
(आत्मप्रबोधोपनिषत् २५)

प्रत्यगात्मा परञ्ज्योतिर्माया सा तु महत्तमः॥
तथा सति कथं मायासम्भवः प्रत्यगात्मनि।
तस्मात्तर्कप्रमाणाभ्यां स्वानुभूत्या च चिद्घने॥
स्वप्रकाशैकसंसिद्धे नास्ति माया परात्मनि।
व्यावहारिकदृष्ट्येयं विद्याऽविद्या न चान्यथा॥
(पाशुपतब्रह्मोपनिषत् १६ - १८)

अथवा अध्यासरूप अविद्याका आश्रय ब्रह्म होता है। अध्यासकारण अविद्याका आश्रय भी वही हो सकता है।

सञ्चित, क्रियमाण और प्रारब्ध - कर्मके तीन प्रभेद होते हैं। आत्माकी अविक्रिय विज्ञानघन अद्वितीय ब्रह्मरूपताके ज्ञानसे पूर्व कर्तृत्वाभिमान और कर्त्तव्यबुद्धिसे अनुष्ठित किन्तु अभुक्त कर्म **सञ्चित** कहा जाता है। बोधोत्तर सम्पादित कर्म **क्रियमाण** कहा जाता है। पूर्व जन्मोंमें अनुष्ठित फलोन्मुख जाति (जन्म), आयु (श्वास - प्रश्वासकी निश्चित अवधि) और भोग (सुखदु:खप्रद भोग्य वस्तुओंकी उपलब्धि और भोग्य वस्तुओंके सेवनसे सुलभ सुखानुभूति तथा दु:खानुभूति)- प्रद कर्म **प्रारब्ध** कहा जाता है। तत्त्वज्ञके क्रियमाण अकर्म, कर्माभास या लीलाकर्म होनेसे उत्क्रमण, अधोगति और पुनर्जन्मरूप निबन्धनमें हेतु नहीं बनते। सञ्चितका भोग दिये बिना ही नाश हो जाता है। संयम, योगधारणा और विवेककी प्रगल्भताके बलपर प्रारब्ध शिथिल हो जाता है एवम् लोकसङ्ग्रहमें हेतु बनता है तथा आचार्यपरम्परामें विनियुक्त होता है। अतः अविद्या, काम और कर्मक्रममें प्रारब्ध कर्मोपादानभूता लेशा अविद्या शेष रहती है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस विज्ञानरूप प्रबोधके अनन्तर कोटिशत कल्पमें समर्जित सञ्चितकर्म विलयको प्राप्त होते हैं। सञ्चित, क्रियमाण और प्रारब्धके सम्बन्धमें श्रुति मार्मिक सन्देश देती है। -

श्लोक : १८

सुखाद्यनुभवो यावत्तावत्प्रारब्धमिष्यते।
फलोदय: क्रियापूर्वो निष्क्रियो न हि कुत्रचित्।।
अहम्ब्रह्मेति विज्ञानात्कल्पकोटिशतार्जितम्।
सञ्चितं विलयं याति प्रबोधात्स्वप्नकर्मवत्।।
स्वमसङ्गमुदासीनं परिज्ञाय नभो यथा।
न श्लिष्यते यति: किञ्चित्कदाचिद् भाविकर्मभि:।।
न नभो घटयोगेन सुरागन्धेन लिप्यते।
तथाऽऽत्मोपाधियोगेन तद्धर्मो नैव लिप्यते।।
ज्ञानोदयात्पुराऽऽरब्धं कर्म ज्ञानान्न नश्यति।
अदत्त्वा स्वफलं लक्ष्यमुद्दिश्योत्सृष्टबाणवत्।।
व्याघ्रबुद्ध्या विनिर्मुक्तो बाण: पश्चात्तु गोमतौ।
न तिष्ठति भिनत्त्येव लक्ष्यं वेगेन निर्भरम्।।
अजरोऽस्म्यमरोऽस्मीति य आत्मानं प्रपद्यते।
तदात्मना तिष्ठतोऽस्य कुत: प्रारब्धकल्पना।।
प्रारब्धं सिद्ध्यति तदा यदा देहात्मना स्थिति:।
देहात्मभावो नैवेष्ट: प्रारब्धं त्यजतामत:।।
प्रारब्धकल्पनाप्यस्य देहस्य भ्रान्तिरेव हि।।
अध्यस्तस्य कुतस्तत्त्वमसत्यस्य कुतो जनि:।
अजातस्य कुतो नाश: प्रारब्धमसत: कुत:।।
ज्ञानेनाज्ञानकार्यस्य समूलस्य लयो यदि।
तिष्ठत्ययं कथं देह इति शङ्कावतो जडान्।।
समाधातुं बाह्यदृष्ट्या प्रारब्धं वदति श्रुति:।
न तु देहादि सत्यत्वबोधनाय विपश्चिताम्।।

(अध्यात्मोपनिषत् ४९ - ५९.१/२)

"सुखदु:खादिके अनुभवरूप भोगपर्यन्त प्रारब्धकी मान्यता है। फलका उद्भव स्वयंको क्रियाशील मानकर ही सम्भव है, न कि निष्क्रिय जानकर कहीं भी कभी भी सम्भव है।। स्वप्नके अनन्तर जग जानेपर स्वप्नके कर्मोंके तुल्य

श्लोक : १८

'मै ब्रह्म हूँ ' ,इस विज्ञानरूप प्रबोधके अनन्तर कोटिशतकल्पमें समर्जित सञ्चितकर्म विलयको प्राप्त होता है।। रजोधूमादिसे आकाशके तुल्य स्वयंको असङ्ग और उदासीन समझकर भाविकर्मरूप क्रियमाणसे यति तनिक भी कभी भी लिप्त नहीं होता।। जैसे घटमें स्थित सुरागन्धसे आकाश लिप्त नहीं होता है, वैसे ही आत्मा देहेन्द्रियप्राणान्त:करणरूप उपाधियोगसे प्राप्त धर्मसे लिप्त नहीं होता।। ज्ञानोदयसे पूर्व फल देनेमें प्रवृत्त आरब्ध (प्रारब्ध) कर्म ज्ञानसे उसी प्रकार नष्ट नहीं होता, जिस प्रकार लक्ष्यबेधकी भावना और अचूकप्रक्रियासे लक्ष्यको उद्देश्य बनाकर छोड़ा गया बाण लक्ष्यको अबेध्य जान लेनेपर भी लक्ष्यबेधके पूर्व नहीं रुकता।। उदाहरणार्थ व्याघ्रबुद्धिसे विनिर्मुक्त बाण बादमें गोका परिज्ञान हो जानेपर भी प्रयोक्तासे अनियन्त्रित तथा वेगके वशीभूत होनेके कारण गोबेधसे नहीं रुकता, लक्ष्यबेध करता ही है।। व्यावहारिक पक्ष ऐसा होनेपर भी वस्तुस्थिति यह है कि जो "मैं अजर हूँ , मैं अमर हूँ ", इस रूपसे आत्माको जानकर आत्मनिष्ठ होकर स्थित है, उसके लिए प्रारब्धकल्पना है ही कहाँ ?।। जब देहात्मरूपसे स्थित होता है, तब प्रारब्ध सिद्ध होता है। विचारशील मुमुक्षुको देहात्मभाव अभीष्ट नहीं है, अत: प्रारब्धकल्पनाका त्याग किया जाय, यही उचित है।। सत्य तो यह है कि प्रारब्धकल्पना देहात्मबुद्धिरूपा भ्रान्तिमूलक ही है।। अध्यस्तका वास्तव अस्तित्व और जन्म ही कहाँ है! जिसका जन्म ही नहीं है , उसका नाश ही कहाँ है! असत् का प्रारब्ध कहाँसे सम्भव है! अभिप्राय यह है कि अधिष्ठानस्वरूप आत्मामें देह अध्यस्त है। अतएव उसका वास्तव अस्तित्व ही नहीं है। न उसका जन्म है, न नाश, न उससे कर्मोंका सम्पादन ही सम्भव है। आत्मा अज होनेसे जन्मरहित है, अविक्रिय होनेसे कर्मरहित है। जन्मकर्मकी परम्परा आध्यासिक होनेसे असत् है। ऐसी स्थितिमें "**शास्त्रेण न स्यात्परमार्थदृष्टि: कार्यक्षमं पश्यति चापरोक्षम्। प्रारब्धनाशात् प्रतिभाननाश एवं त्रिधा नश्यति चात्ममाया।। ब्रह्मत्वे योजिते स्वस्मिञ्जीवभावो न गच्छति। अद्वैते बोधिते तत्त्वे वासना विनिवर्तते।। प्रारब्धान्ते देहहानिर्मायेति क्षीयतेऽखिला।**" **(वराहोपनिषत् २. ६९ - ७०.१/२),"तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य**

इति" (छान्दोग्योपनिषत् ६.१४.२), **"भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः"** (श्वेताश्वतरोपनिषत् १.१०, नारदपरिव्राजकोपनिषत् ९.९), **"विमुक्तश्च विमुच्यते"** (कठोपनिषत् ५.१), **"अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्"** (श्रीमद्भगवद्गीता ५.२६) - आदि श्रुति-स्मृति 'ज्ञानसे अज्ञानकार्यका यदि समूल लय होता है तो ज्ञानोत्तर यह शरीर कैसे टिका रहता है', ऐसी शङ्कावाले कर्म जडोंको समाधान देनेके लिए प्रारब्धका प्रतिपादन करती हैं, न कि प्रबुद्ध महानुभावोंके प्रति देहादिके सत्यत्वके बोधनके लिए।।"
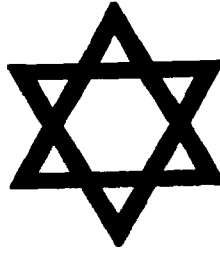
श्लोक : १९
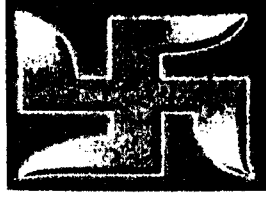
सङ्गति: - घट - कुड्यादिकी मृत्तिकारूपताके सदृश सर्व जगत्की ब्रह्मरूताका प्रतिपादपन -

श्लोक: - **घटकुड्यादिकं सर्वं मृत्तिकामात्रमेव च।**
तद्वद्ब्रह्म जगत्सर्वमिति वेदान्तडिण्डिम:।।१९।।

सरलार्थ:- घट, कुड्य (दीवार,भित्ति) आदि मृत्तिकासे विनिर्मित सर्व कार्य जिस प्रकार मृत्तिकामात्र ही हैं, उसी प्रकार ब्रह्मोपादानक सर्व जगत् ब्रह्ममात्र ही है।।"

सारार्थ: -

"यथा तरङ्गकल्लोलैर्जलमेव स्फुरत्यलम्।
घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तव:।।
जगन्नाम्ना चिदाभाति सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।"
(योगशिखोपनिषत् ४. १७,१७१/२)

"सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम्।
ब्रह्मणो जायमानस्य ब्रह्मत्वं तथा भवेत्।।"
(योगशिखोपनिषत् ४. ७)

आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि जैसे तरङ्गरूपसे जलकी, घट - कुड्यादिरूपसे मृत्तिकाकी, पटरूपसे तन्तुओंकी और सुवर्णसमुत्पन्न कटक, मुकुट, कुण्डलादिरूपसे सुवर्णकी अभिव्यक्ति और स्फूर्ति होती है, वैसे ही जगत् - रूपसे ब्रह्मकी ही अभिव्यक्ति और स्फूर्ति होती है।

"गृह्यमाणे घटे यद्वन्मृत्तिका भाति वै बलात्।।
वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चे तु ब्रह्मैव भाति भासुरम्।"
(योगशिखोपनिषत् ४. १९,१९१/२)

"जिस प्रकार घटके ग्रहण करनेपर घटरूपसे मृत्तिका ही स्फुरित

होती है, उसी प्रकार पृथिव्यादि भूतोंके सहित स्थावर - जङ्गम प्राणिरूप प्रपञ्चात्मक जगत्के वीक्षण करनेपर स्वप्रकाश अधिष्ठानात्मक उपादान कारण ब्रह्म ही परिलक्षित होता है।।"

उक्त तथ्य जहाँ औपनिषद सिद्धान्त है, वहाँ युक्तियुक्त भी है। जगत भोग्य है। देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणरूप अन्तर्जगत् कर्त्ता - भोक्तारूप जीवके कर्म और भोगमें अधिकरण (आश्रय) तथा करण है। देवानुग्रहसम्प्राप्त प्राणस्पन्दनसहित स्थूल देह कर्म और भोगमें आश्रय और अधिकरणात्मक अधिष्ठानरूप है। देवानुग्रहसम्प्राप्त प्राणस्पन्दनयुक्त कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय और अन्तःकरणात्मक सूक्ष्म शरीर जीवके कर्म और भोगमें करणरूप है।

इस प्रकार आधिभौतिक कार्यात्मक बाह्य जगत्की भोग्यरूपता और आध्यात्मिक तथा आधिदैविक अन्तर्जगत् की कर्म और भोगमें आश्रय और करणरूपता सिद्ध है। यह तथ्य "**अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवं चैवात्र पञ्चमम्।।** " (**श्रीमद्भगवद्गीता १८.१४**) और "**आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः**" (**कठोपनिषत् २.१.४**) के अनुशीलनसे सिद्ध है। सूक्ष्म विचार करनेपर कार्य - करणात्मक अन्तर्जगत्की भी परार्थताके कारण बाह्य जगत्के तुल्य भोग्यरूपता और दृश्यरूपता चरितार्थ है।

उक्त रीतिसे बाह्याभ्यन्तर्जगत् की परार्थता और दृश्यरूपताके कारण विकारता तथा कार्यरूपता चरितार्थ है। कार्यवर्गको अपने अतिरिक्त निमित्त और उपादान कारणकी अपेक्षा होती है। समग्र कार्यवर्गके निमित्त कारणको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और विभु मानना अनिवार्य है। कार्यप्रपञ्चके उत्पादकका कार्यवर्गका पालक और संहारक होना भी अनिवार्य है। ऐसी स्थितिमें जगत्की उत्पत्ति - स्थिति और संहृतिचक्रके अनादि निर्वाहकरूप निमित्त कारणकी नित्यता भी चरितार्थ है। इस प्रकार बाह्याभ्यन्तर समग्र दृश्यवर्गके निमित्तकारणकी नित्यता, विभुता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता सुनिश्चित है। अभिप्राय यह है कि **विभु सच्चित् सर्वेश्वर ही सर्व जगत्का निमित्तकारण सिद्ध है।**

घट, आभूषण और तरङ्गादिरूप उपादेयके मृत्तिका, सुवर्ण और जलादिरूप उपादानमें बहुभवनसामर्थ्य परिलक्षित है। साथ ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशमें उत्तरोत्तर सन्निकट निर्विशेषता भी सिद्ध है। पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रससहित गन्ध - सन्निहित है। जलमें शब्द, स्पर्श, रूपसहित रस - सन्निहित है। तेजमें शब्द, स्पर्शसहित रूप - सन्निहित है। वायुमें शब्दसहित स्पर्श - सन्निहित है। आकाशमें मात्र शब्दगुण सन्निहित है। तद्वत् मन:संलग्न **अहम् में मध्यमा वाक्** सन्निहित है। बुद्धिसंज्ञक **महत् में पश्यन्ती वाक्** सन्निहित है। अव्यक्तरूपा **प्रकृतिमें परा वाक्** सन्निहित है। गन्धादिबीज अव्यक्त सर्वजगत् का परिणामोपादान सिद्ध है। अतएव अगन्ध, अरस, अरूप, अस्पर्श, अशब्द तथा बहुभवनसामर्थ्यसम्पन्न कूटस्थ विभु सत्संज्ञक ब्रह्मकी विवर्तोपादानता सिद्ध है। रज्जुसर्पादिका परिणामोपादान रज्जुके अज्ञान और विवर्तोपादान रज्जुके तुल्य यह तथ्य हृदयङ्गम करने योग्य है। मायावीके द्वारा विरचित मायिक चमत्कृतिका उपादान मायावीनिष्ठ माया और मायावी दोनों ही सिद्ध है। कोई भी कार्य उपादाननिष्ठ कार्यानुमेया कार्योत्पादिनी शक्तिका परिणाम और शक्तिके समाश्रयका विवर्त मान्य है। घटादि मृन्निष्ठ घटादिको उत्पन्न करनेवाली शक्तिका परिणाम और मृत्तिकाका विवर्त मान्य है।

उक्त रीतिसे विभु सच्चित् सर्वाधिष्ठान ही सर्व जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। विभु सच्चित् की आत्मरूपता सिद्ध है और आत्माकी परप्रेमास्पदता सिद्ध है। परप्रमास्पदकी परमानन्दरूपता सिद्ध है।

उक्त रीतिसे वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मात्मतत्त्व ही सर्व जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान सिद्ध है।

वैशेषिक, साङ्ख्यादिक प्रस्थानमें वस्तुकृत परिच्छेदशून्य सर्वात्मतत्त्वकी स्वीकृति नहीं है। नित्य और विभुरूप केवल काल और देशकृत परिच्छेदशून्य वस्तुतक ही जिनकी गति है, निस्सन्देह उनका प्रस्थान अपूर्ण है। उनका वह नित्य और विभुतत्त्व वस्तुकृतपरिच्छेदशून्य वस्तुका व्याप्य अवश्य सिद्ध होता है। व्याप्यकी स्थूलता, सावयवता और अनित्यता भी चरितार्थ है। अनित्यकी

कार्यरूपता और कार्यकी स्वेतर निमित्तोपादानकारणसापेक्षता भी सिद्ध है। अतएव कूटस्थ सत्यकी अनुपलब्धि ही इतर प्रस्थानकी समुपलब्धि है।

वैशेषिकादिसम्मत परमाणुओंका परस्पर संश्लेष और विश्लेष उनकी सावयवता, नश्वरता सिद्ध करता है, न कि चरम कारणता । प्रकृतिको जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण माननेवाले प्रकृतिपरिणामवादी साङ्ख्यादिसम्मत त्रिगुण प्रलयकालिक संश्लेष और सर्गकालिक विश्लेषके कारण कूटस्थ सत्य सिद्ध नहीं होते। प्रपञ्चको ब्रह्मपरिणाम स्वीकार करनेपर दधिके परिणामोपादान दुग्धतुल्य ब्रह्मकी नश्वरता सिद्ध होती है। तत्त्वान्तरसंज्ञक विजातीय कार्योत्पादनके अनन्तर महदादिके तुल्य ब्रह्मको शेष माननेपर ब्रह्मकी महदादितुल्य जडता सिद्ध होती है।

चार्वाकादि प्रस्थानसम्मत प्रत्यक्षप्रमाणाधिगत पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा इनके सङ्घात वृक्षादिकी परार्थता, सावयवता, कार्यरूपता चरितार्थ है। जगत् को पुद्गलसमुदायरूप माननेपर भी अतीन्द्रिय परमाणुओंका संश्लेष और विश्लेष पुद्गलको कूटस्थ सत्य नहीं सिद्ध होने देता।

इस प्रकार संयोग, आरम्भ, परिणाम और तारतम्यजसङ्घातरूप विवर्तवादमें वस्तुकृतपरिच्छेदशून्य वस्तुका अदर्शन होनेके कारण दर्शनकी अपूर्णता ही सिद्ध है। अतएव वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वाधिष्ठान, सर्वनियामक सर्वेश्वर ही जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण सिद्ध होता है।

श्लोक : २०
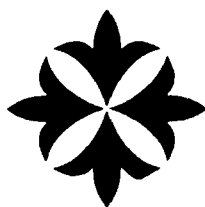
सङ्गतिः - मायायोगसे अधिष्ठानात्मक ब्रह्मकी अध्यस्तरूपसे अभिव्यक्ति तथा स्फूर्तिके कारण नाम - रूपात्मक जगत्के मिथ्यात्वका तथा मायाकृत औपाधिक भेदके कारण जीवकी ब्रह्मरूपताका प्रतिपादन -

श्लोकः- ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदान्तडिण्डिमः।।२०।।

सरलार्थः - ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है। जीव ब्रह्म ही है, नकि कोई अन्य। इस प्रकार वेदान्त शास्त्रोंका रहस्य हृदयङ्गम करने योग्य है। यह वेदान्तका डिण्डिम उद्घोष है।

सारार्थः - "**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**" (**तैत्तिरीयोपनिषत् २.१**), "**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**" (**निरालम्बोपनिषत्**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या सिद्ध होता है। "**जीवो ब्रह्म**" (**शुकरहस्योपनिषत्**), "**जीव एव सदा ब्रह्म**" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ६.३८**), "**स जीवः केवलो मतः**" (**योगतत्त्वोपनिषत् १३**), "**जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः**" (**स्कन्दोपनिषत् ६**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे जीव ब्रह्म सिद्ध होता है।

"**सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापह्नव एव हि।**
नाविद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मेदमक्लमम्।।"
(अन्नपूर्णोपनिषत् ५.११२)

"अध्यात्मशास्त्रोका सिद्धान्त ब्रह्मातिरिक्त सबका अपह्नव अर्थात् निरसन, अपवाद, निषेध या मिथ्यात्वनिश्चयरूप बाध ही है। अतः ब्रह्मको जीवरूपसे प्रस्तुत करनेवाली अविद्या वस्तुतः नहीं है और ईश्वररूपसे स्फुरित करनेवाली माया भी नहीं है। सर्वभेदशून्य एकमात्र निष्कल, निर्विकल्प शान्त ब्रह्म ही है।।"

श्लोक : २०

''यज्जगद्भासकं भानं नित्यं भाति स्वतः स्फुरन्।
स एव जगतः साक्षी सर्वात्मा विमलाकृतिः।।
प्रतिष्ठा सर्वभूतानां प्रज्ञानघनलक्षणः।
तद्विद्याविषयं ब्रह्म सत्यज्ञानसुखाद्वयम्।।
एकं ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवेन्मुनिः।।
सर्वाधिष्ठानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातनम्।
सच्चिदानन्दरूपं तदवाङ्मनसगोचरम्।। ''

(अन्नपूर्णोपनिषत् ४.२६ - २९)

''जो जगत् का भासक स्वतः स्फुरणरूप नित्य भान है, अर्थात् जिस स्वतःसिद्ध स्वप्रकाश नित्य तत्त्वके सान्निध्यमात्रसे जगत् उद्भासित हो रहा है, जो सर्वात्मा - सर्वरूप विमलस्वरूप है, वही जगत् का साक्षी है। सर्वभूतोंका परमाश्रयरूप प्रज्ञाघनस्वरूप वह अद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्म ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्वविज्ञानरूप ब्रह्मविद्याका विषय है। जो मुनि 'वह एक ब्रह्म मैं हूँ ', ऐसा जानता है, वह कृतकृत्य हो जाता है। वह सनातन परम ब्रह्म सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्दस्वरूप मन और वाणीका सर्वथा अविषय निर्द्वन्द्व है।।''

**''वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च।
अखण्डरूपस्थितिरेव मोक्षो ब्रह्माद्वितीये श्रुतयः प्रमाणम्।।''**

(विवेकचूडामणि ४७९)

''वेदान्तशास्त्रकी यह घोषणा है कि जीव और सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है। उस अद्वितीय ब्रह्ममें अखण्डरूपसे अचञ्चल स्थिर स्थिति ही **मोक्ष** है। इसमें श्रुतियाँ प्रमाण हैं , अर्थात् यह सर्वथा श्रुतिसम्मत - सिद्धान्त है। ''

जीवकी शिवरूपताका साधक '**जीवः परमात्मैव निर्विकल्पत्वादि-योगित्वाद्विपर्ययेण घटवत्**' -'जीव परमात्मा ही है,स्वरूपतः निर्विकल्पादि होनेसे, अन्यथा घटादिवत्' यह अनुमान अनुसन्धेय है।

अविद्या, अहङ्कृति, कामना और कर्मके योगसे शरीर, शोक, मोह, काम, क्रोध, लोभ, मद, भय, कृपणता, सुख, दुःख, जन्म, मृत्यु आदि जीवधर्मोंकी प्राप्ति है, स्वतः जीव शिवस्वरूप ही है। -

श्लोक : २०

"निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम्।
तदेव जीवरूपेण पुण्यपापफलैर्वृतम् ।।
परमात्मपवं नित्यं तत्कथं जीवतां गतम्।
सर्वभावपदातीतं ज्ञानरूपं निरञ्जनम् ।।
वारिवत्स्फुरितं तस्मिंस्तत्राहङ्कृतिरुत्थिता ।
पञ्चात्मकमभूत्पिण्डं धातुबद्धं गुणात्मकम्।।
सुखदु:खै: समायुक्तं जीवभावनया कुरु।
तेन जीवाभिधा प्रोक्ता विशुद्धै: परमात्मनि।।
कामक्रोधभयं चापि मोहलोभमदो रज: ।
जन्ममृत्युश्च कार्पण्यं शोकस्तन्द्रा क्षुधा तृषा।।
तृष्णा लज्जा भयं दु:खं विषादो हर्ष एव च।
एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्त: स जीव: केवलो मत:।।"

(योगतत्त्वोपनिषत् ८-१३)

उक्त रीतिसे यह तथ्य सिद्ध है कि सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही एकमात्र अबाध्य अनन्त कूटस्थ सत्य है, माया और मायिक जगत् उसमें अध्यस्त होनेके कारण अर्थक्रियाकारिताका निर्वाहक केवल व्यावहारिक सत्य है। स्वप्रकाश ब्रह्मके अतिरिक्तोंका अस्तित्व असिद्ध है, अत: दृश्यवर्गका असत्त्व सुनिश्चित है।

" **ज्ञानं यथा सत्यमसत्यमन्यत्** " **(विष्णुपुराण २.१२.४५)**-के अनुसार ज्ञानस्वरूप आत्मा ही सत्य है, उसके अतिरिक्त अन्य असत्य अवश्य है।

"न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चा -
न्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम्।
भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्
तदेव तत्स्यादिति मे मनीषा।।"

(श्रीमद्भागवत ११.२८,२१)

"जो उत्पत्तिसे पहले नहीं था और प्रलयके पश्चात् भी नहीं रहेगा,

ऐसा समझना चाहिये कि मध्यमें भी वह नहीं है, केवल नाममात्र ही है। यह सुनिश्चित सत्य है कि जो पदार्थ जिससे बनता और प्रकाशित होता है, अर्थात् सत्ता और चित्ता प्राप्त करता है, वही उसका वास्तविक स्वरूप होता है ।।''

''यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन्।
विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः।।''
(श्रीमद्भागवत ११.२४,१७)

''जिसके आदि और अन्तमें जो है, वही मध्यमें भी है तथा वही सत्य है। जैसे कि कटक, मुकुट, कुण्डलादि सुवर्णकार्योंके आदि और अन्तमें सुवर्ण विद्यमान है, अतः मध्यमें भी इन सुवर्ण कार्योंके रूपमें सुवर्ण ही विलसित और परिलक्षित है तथा सत्य है एवम् घटादि मृत्कार्योंके आदि और अन्तमें मृत्तिका विद्यमान है , अतः मध्यवर्ती घटादि विकारोंके रूपमें भी मृत्तिका ही विलसित और उद्भासित होनेसे सत्य है। कार्यात्मक विकार केवल व्यवहारसिद्धिमें प्रयुक्त तथा विनियुक्त है। यह नियम कहीं भी व्यभिचरित नहीं है, सर्वत्र चरितार्थ है।।''

''यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुतेऽपरम्।
आदिरन्तो यदा यस्य तत् सत्यमभिधीयते।।''
(श्रीमद्भागवत ११.२४.१८)

''निस्सन्देह उपादानकारणसे विनिर्मित उपादेयकी अपेक्षा उपादान ही स्थिर सत्य होता है। तद्वत् उत्तरवर्ती उपादानकी अपेक्षा पूर्ववर्ती उपादान स्थिर सत्य होता है। इस प्रकार परोवरीय क्रमसे सर्वाधिष्ठानस्वरूप सर्वोपादान परम सत्य ही एकमात्र कूटस्थ सत्य सिद्ध होता है। उत्तरवर्ती उपादानसहित उपादेयोंमें सत्यत्व उपचरित ही होता है। कारण यह है कि सत्यका नानात्व असम्भव है। घटादिकी अपेक्षा मृत्तिका, मृत्तिकाकी अपेक्षा जल, जलकी अपेक्षा तेज, तेजकी अपेक्षा वायु, वायुकी अपेक्षा आकाश, आकाशकी अपेक्षा अहम्, अहम् की अपेक्षा महत्, महत् की अपेक्षा अव्यक्त और अव्यक्तकी अपेक्षा चिद्धातु आत्मतत्त्व ही सत्य और एकमात्र सत्य सिद्ध है। कारण यह है कि अचित्पदार्थ विकार हो या विकारोपादान, उसकी सर्वथा निर्विकारता

असिद्ध है। अतएव निर्विकार चिद्धातुकी सत्यता ही सर्वतोभावेन अव्यभिचरित और अकुण्ठित है। इसप्रकार जब जो जिस कार्यके आदि और अन्तमें विद्यमान रहता है, उसीकी मध्यमें भी अव्यभिचरित विद्यमानता सिद्ध होनेसे वही सत्य सिद्ध है।। ''

''आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात्।
पुनस्तत्प्रतिसङ्क्रामे यच्छिष्येत तदेव सत्।।
श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद् विकल्पात् स विरज्यते।। ''

(श्रीमद्भागवत ११.१९.१६,१७)

''जो तत्त्व सृष्टिके प्रारम्भ और अन्तमें कारणरूपसे स्थित रहता है, वही मध्यमें भी प्रतिष्ठित रहता है तथा वही प्रतीयमान कार्यसे प्रतीयमान कार्यान्तरमें अनुगत भी होता है। पुनः उन कार्योंका प्रलय या बाध (मिथ्यात्वनिश्चय) होनेपर उसके साक्षी और अधिष्ठानरूपसे जो शेष रहता है, वही सत् है।।''

''श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य (महापुरुषोंमें प्रसिद्धि) और अनुमान - प्रमाणोंमें ये चार प्रधान हैं। इनकी कसौटीपर कसनेपर दृश्यप्रपञ्च अस्थिर, नश्वर और विकारी होनेके कारण सत्य सिद्ध नहीं होता। अतः विवेकी पुरुष इस शब्दमात्र विविध कल्पनारूप प्रपञ्चसे विरक्त हो जाता है।।''

''असत्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा।
गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा।।''

(श्रीमद्भागवत ११.१३.३१)

''आत्मासे अन्य देहादि प्रतीयमान नामरूपात्मक प्रपञ्चका कुछ भी अस्तित्व नहीं है। अतः उनके कारण होनेवाले वर्णाश्रमादि भेद, स्वर्गादि फल और उनके कारणभूत कर्म - ये सबके - सब आत्माके लिये वैसे ही मिथ्या हैं ; जैसे स्वप्नदर्शी पुरुष द्वारा देखे हुए सबके - सब पदार्थ।। ''

ध्यान रहे, उपादेयकी अपेक्षा सन्निकट निर्विशेष, शुद्ध, विभु, प्रत्यक् और नित्यकी उपादान संज्ञा है। यही कारण है कि यद्यपि पृथ्वीसे पानी

उत्पन्न होता है, पृथ्वीमें पानी स्थित होता है और पृथ्वीमें पानी विलीन होता है, तथापि पृथ्वी पानीका अभिव्यञ्जक संस्थानमात्र है, न कि उपादान। कारण यह है कि पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस कारणगत गुणसंज्ञक विशेषताएँ हैं और गन्ध स्वगत विशेषता है, जब कि जल स्वभावसे निर्गन्ध है। उसमें शब्द, स्पर्श और रूप कारणगत विशेषताएँ हैं तथा रस स्वगत विशेषता है। इस प्रकार, पाँच विशेषताओंसे सम्पन्न पृथ्वीकी अपेक्षा चार विशेषताओंसे सम्पन्न जल सन्निकट निर्विशेष है, अतएव पृथ्वी पानीका अभिव्यञ्जक संस्थानरूप निमित्त होनेपर भी उपादेयरूप कार्य है और पानी उससे पूर्व सिद्ध उपादान है। यही तथ्य पानी और अग्निके सम्बन्धमें भी चरितार्थ है। महाभारतादिमें पानीको अग्निका कारण माना गया है। पानीसे अग्निकी उत्पत्ति, पानीमें दाहक और शोषक वडवानलकी स्थिति और पानीमें अग्निका विलय भी दृष्ट है। आग्नेय वाक् का अवरोध भी जलमें अनुभूत है, तथापि तेज जलसे सन्निकट निर्विशेष होनेसे उपादान है और जल तेजसे सन्निकट सविशेष होनेके कारण उपादेय है। वायुसे अग्निका उद्दीप्त होना, उष्णताकी प्रगल्भतासे वर्षा और पसीना होना, पसीनाके जम जानेपर शरीरमें मैल बनना, वायुसे अग्निका , अग्निसे जलका और जलसे पृथ्वीका बनना सिद्ध करता है। तद्वत् मैलका जलसे क्षालन होना, अग्निसे जलका लोप होना और वायुसंज्ञक संवर्गमें अग्निका विलीन होना तथा वायुसे अग्निका उद्दीप्त होना भी पानीको पृथ्वीका, तेजको जलका और वायुको तेजका उपादान कारण सिद्ध करता है।

वायुकी उत्पत्ति, स्थिति, गति और संहृतिका आश्रय शब्द - गुणाश्रय आकाश है। उसकी वायुसे सन्निकट निर्विशेषता, निर्विकारता, सूक्ष्मता, विभुता और प्रत्यक्ता उसे वायुका उपादान सिद्ध करता है।

ध्यान रहे, जगत् की अनित्यता, अचिद्रूपता तथा दु:खरूपता प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध है। साथ ही श्रुतियोंने आत्माकी अद्वितीयता और जगत् की ब्रह्मरूपताका प्रतिपादन भी किया है। ऐसी स्थितिमें जगत् की साक्षात् ब्रह्मरूपता असिद्ध ही है। **अधिष्ठानशेषावशेष कल्पितका नाश होता है**, यह स्वीकार करनेकी बाध्यता है। सृष्टिसन्दर्भप्रयुक्त श्रुत्युक्त समग्र वचनोंके अनुशीलनसे

जगत्के वास्तव स्वरूपका निर्धारण सम्भव है। "**सत्यस्य सत्यम्**' (**बृहदारण्यकोपनिषत् २.३.६**) के अनुशीलनसे जगत् सत्य और ब्रह्म सत्यका भी सत्य सिद्ध होता है। "**नित्योऽनित्यानाम्**"(**कठोपनिषत् २.५.१३**) के अनुशीलनसे जगत् अनित्य और ब्रह्म नित्य सिद्ध होता है। '**असतो मा सद्गमय**" (**बृहदारण्यकोपनिषत् १.३.२८**), "**कार्याकार्य-मसद्विद्धि**" (**तेजोबिन्दू-पनिषत् ३.५५**)"**अजकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नहि**" (**अध्यात्मोपनिषत् २२**) "**कार्यं चेत्कारणं किञ्चित्कार्याभावे न कारणम्**" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ५.२६**),"**ना काचन भिदाऽस्ति नैवा काचन भिदाऽस्ति**" (**नृसिंहोत्तरतापिन्युपषत् ८**) के अनुशीलनसे जगत् असत्कल्प तथा ब्रह्ममें अध्यस्त सिद्ध होता है। "**नित्यो नित्यानाम्**" (**कठोपनिषत् २.५.१३**) के अनुशीलनसे जगत् नित्य और ब्रह्म नित्योंका भी नित्य सिद्ध होता है। "**परमार्थतो न किञ्चिदस्ति क्षणशून्यादि-मूलाऽविद्याविलासत्वात्। तत्कथमिति। एकमेवद्वितीयं ब्रह्म। नेह नानास्ति किञ्चन। तस्माद् ब्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वं बाधितमेव। सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।**" (**त्रिपाद्विभूति-महानारायणोपनिषत् ३**) के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि जगत् स्वत: अस्तित्वविहीन अविद्याका कार्य होनेसे वस्तुत: नहीं है। एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही सत्य है। उससे भिन्न नाना कुछ भी नहीं है। जो कुछ परिलक्षित है, वह बाधित ही है। सत्य, ज्ञान, अनन्त ब्रह्म ही सत्य है। अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवरूप त्रिविध जगत् न सत् है, न असत् केवल आभासमात्र है।- "**आभासमात्रमेवेदं न सन्नासज्जगत्त्रयम्**" (**अन्नपूर्णोपनिषत् ५.३३**), "**सत्यासत्यं जगन्नास्ति**" (**तेजोबिन्दूपनिषत् ६.७१**)।

मूलाविद्या अपने कार्योंके सहित सत् और असत् से विलक्षणा अनिर्वाच्या है- "**सविलासमूलाविद्या सर्वकार्योपाधिसमन्विता सदसद्विलक्षणानिर्वाच्या** " (**त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३**)। माया न सती है, न असती, न उभयरूपा सदसती ही - "**न सती , न असती, न सदसती**" (**सर्वसारोपनिषत् ४**), "**न सन्नासन्न सदसदिति**" (**सुबालोपनिषत् १**)

श्लोक : २०

जो कुछ अनात्म - प्रपञ्च है, वह स्वपरविरोधी ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञानसे बाध्य तथा स्वपरविरोधी ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञानके तुल्य न सत् है, न असत् न सदसत् ; न भिन्न, न अभिन्न, न भिन्नाभिन्न है; न सभाग, न निर्भाग, न उभयात्मक ही है। वह नवकोटि - विनिर्मुक्त है। - "**न सन्नासन्न सदसदभिन्नाभिन्नं न चोभयम्। न सभागं न निर्भागं न चाप्युभयरूपकम्।। ब्रह्मात्मैकत्त्वविज्ञानं हेयं मिथ्यात्वकारणात्।। परब्रह्मोपनिषत् १**) ग्रन्थान्तरमें मायाको उक्त नवकोटि - विनिर्मुक्त बताकर ग्रन्थकार श्रीभगवत्पाद शङ्कराचार्यमहाभागने उक्त श्रौत - सिद्धान्तका ही प्रकाश श्रीभगवत्पाद शङ्कराचार्यमहाभागने उक्त श्रौत - सिद्धान्तका ही प्रकाश किया है -

"सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो
भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो
महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा ।।"
(विवेकचूडामणि १११)

" **सच्चिदानन्दरूपमिदं सर्वं सद्धीदं सर्वं तत्सदिति चिद्धीदं सर्वम्", "अहमेवेदं सर्वम्", आत्मैवेदं सर्वम्", " ब्रह्म वा इदं सर्वम्" (नृसिंहोत्तरतापिन्युपषत् ७)** के अनुशीलनसे जगत् सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म, आत्मा, अहमात्मक सिद्ध होता है। जबकि ब्रह्मात्मतत्त्वकी असच्चिदानन्दरूपता सर्वथा असिद्ध है।

श्रुति स्वयं ही कारण और कार्यकी अतात्त्विकताका प्रतिपादन करती है - "**नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्"(कठोपनिषत् १.२.१८)**

जगत् मायाका कार्य है, अतएव मिथ्या है। तथापि इसकी अर्थक्रियाकारिताका रहस्य इसमें अनुगत अधिष्ठानस्वरूप ब्रह्मकी सच्चिदानन्दरूपता है। -

"मायाकार्यमिदं भेदं, अस्ति चेद् ब्रह्मभावनम् ।"
(तेजोबिन्दूपनिषत् ६.१००)

श्लोक : २०

श्रौतप्रस्थानके अनुसार ब्रह्मकी जीवरूपता मृद्घट, कनककुण्डल, और शुक्तिरजतके तुल्य नाममात्र है। जगत् नभनैल्य, मरुजल, स्थाणुपुरुष, शून्यवेताल, गन्धर्वनगर, द्विचन्द्र, नभोवृक्ष, जलतरङ्ग, बन्ध्यापुत्र, मृद् घटके तुल्य मिथ्या है। -

''यथा मृदि घटो भ्रान्तिः शुक्तौ हि रजतस्थितिः।
तद्वद् ब्रह्मणि जीवत्वं वीक्ष्यमाणे विनश्यति।।
यथा मृदि घटो नाम कनके कुण्डलाभिदा।
शुक्तौ हि रजतख्यातिर्जीवशब्दस्तथा परे।।
यथैव व्योम्नि नीलत्वं यथा नीरं मरुस्थले।
पुरुषत्वं यथा स्थाणौ तद्वद्विश्वं चिदात्मनि।।
यथैव शून्यो वेताले गन्धर्वाणां पुरं यथा।
यथाकाशे द्विचन्द्रत्वं तद्वत्सत्ये जगत्स्थितिः।।
यथा तरङ्गकल्लोलैर्जलमेव स्फुरत्यलम्।
घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः।।
जगन्नाम्ना चिदाभाति सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।
यथा बन्ध्यासुतो नास्ति यथा नास्ति मरौ जलम्।।
यथा नास्ति नभो वृक्षस्तथा नास्ति जगत्स्थितिः।
गृह्यमाणे घटे यद्वन्मृत्तिका भाति वै बलात्।।
वीक्ष्यमाणे प्रपञ्चे तु ब्रह्मैवाभाति भासुरम्।''

(योगशिखोपनिषत् ४. १३ - १९.१/२)

''अनुत्पन्नमिदं जगत्'' (तेजोबिन्दूपनिषत् ६.७१) की उक्तिसे श्रुतिने अजातवादको ही ख्यापित किया है। पूर्वसिद्ध नित्य विद्यमान सत् की मायिक उत्पत्ति ही सम्भव है। नित्य अविद्यमान असत् की मायिक उत्पत्ति भी असम्भव है। सदसदात्मक कोई वस्तु नहीं है, जिसकी उत्पत्ति सम्भव हो। वस्तुतः सत् से सत् की, असत् की तथा सदसत् की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। तद्वत् असत् से सत्, असत् और सदसत् की उत्पत्ति भी सर्वथा असम्भव है। तद्वत् सदसत् से सत्, असत् तथा सदसत् की समुत्पत्ति भी सर्वथा

असम्भव है। अत: अज, अव्यय शिवात्मतत्त्वसे किसीकी मायिक समुत्पत्ति ही सम्भव है, न कि वास्तविक। -

स्वतो वा परतो वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते।
सदसत्सदसद्वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते।।
(माण्डूक्यकारिका ४.२२)

उक्त रीतिसे यह तथ्य सिद्ध है कि ग्रन्थकारका प्रत्येक शब्द और भाव श्रुतिसम्मत, युक्तियुक्त और अनुभूत होनेके कारण सर्वथा आस्थाके योग्य है। सत्यसहिष्णुताकी क्रमिक स्फूर्तिके बिना आत्मोद्धार सर्वथा असम्भव है। सत्यसहिष्णुताके मार्गमें पूर्वाग्रह, दुराग्रह तथा अल्प एवम् अनर्गल मान्यतामें अभिनिवेश और प्रशस्त मार्ग और महापुरुषमें द्वेष सर्वथा त्याज्य है।

वेदान्तप्रस्थानमें ब्रह्मसे अतिरिक्त समस्त जगत् दृश्य होनेसे ही मृगतृष्णा आदिकी तरह मिथ्या माना जाता है। अधिष्ठानभूत ब्रह्मतत्त्वके एकत्व - विज्ञानसे मिथ्यात्वनिश्चयरूप बाध्यत्व ही मिथ्यात्व है -

''**किं पुनरिदं मिथ्यात्वं नाम। अधिष्ठानतत्त्वज्ञानबाध्यत्वमिति प्रतीम:**'' ।

अब प्रश्न उठता है कि दृश्यत्व हेतुसे समस्त जगत् में मिथ्यात्व सिद्ध किया जाता है। यथा - '**विवादास्पदं मिथ्या, दृश्यत्वाद् विभक्तत्वादनात्मत्वाच्च मृगतृष्णिकोदकादिवत्**' - 'विवादास्पद मिथ्या है, दृश्य होनेसे, विभक्त होनेसे, अनात्मा होनेसे, मृगतृष्णिकोदकादिके तुल्य यही मिथ्यात्वके अनुमानका आकार है।

यह अनुमान भी ब्रह्मातिरिक्त समस्त जगत् के अन्तर्गत होनेसे स्वयं भी मिथ्या है। ऐसी स्थितिमें स्वव्याघातदोष अवश्य प्राप्त है।

इस प्रश्नके उत्तरमें यही कहना है कि स्वव्याघातकता इष्ट ही है। जैसे ब्रह्ममें समस्त द्वैतका प्रतिषेध करनेवाले '**नेह नानास्ति किञ्चन**' **(बृहदारण्यक ४.४.१९)**, '**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**'**(निरालम्बोपनिषत्)** आदि आगम द्वैतप्रपञ्चमें अन्तर्भूत स्वयंका भी निषेध करते हैं ; वैसे ही अनुमान भी समस्त जगत् का मिथ्यात्व सिद्ध करता हुआ, स्वयं भी मिथ्या सिद्ध होता

है। इस ढङ्गकी स्वव्याघातकता लोकमें भी स्पष्ट है। दाह्य काष्ठको दग्धकर अग्नि स्वयं भी शान्त हो जाता है। तद्वत् उपल (ओला) कृषिको विनष्टकर स्वयं भी विनष्ट होता है। जङ्गम विष स्थावर विषको विनष्टकर स्वयं भी विनष्ट होता है। पय पयोन्तरका पाचनकर स्वयं भी जीर्ण होता है। तप्त तबेपर निपतित जलविन्दु पात्रगत तापको विलुप्तकर स्वयं भी विलुप्त होता है। ध्यान रहे, शब्दब्रह्म और तज्जन्य विज्ञानके विलोपका अभिप्राय उनकी परब्रह्मरूपताकी निष्पत्ति है।-

"यस्मिन्विलीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते।"
(ब्रह्मविद्योनिषत् १३)

अब **प्रश्न** उठता है कि मिथ्या वस्तु तात्त्विक वस्तुका प्रत्यायक (ख्यापक, ज्ञापक) कैसे हो सकती है ?

उत्तर है - अद्वैतवादियोंकी दृष्टिमें तात्त्विक वस्तु एक आत्मा ही है। वह स्वप्रकाश होनेसे प्रमाणान्तरसे स्वप्रत्यायनकी अपेक्षा ही नहीं करता । आगमादि प्रमाण मिथ्याभूत अविद्याका अपनयनमात्र करते हैं, न कि तात्त्विक आत्माका प्रत्यायन। मिथ्याभूत अविद्याका अपनयन मिथ्याभूत आगम प्रमाणसे सम्भव है।

ध्यान रहे, वेदोंके प्रामाण्यमें आस्था आस्तिकता है। शब्दब्रह्मात्मक वेदोंका उद्गमस्थान सनातन अव्यक्तरूप अक्षर - संज्ञक अखण्ड बोधात्मक ब्रह्म है। - "**ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्**" (**श्रीमद्भगवद्गीता ३. १५**)। अतः तद्रूप होकर रहना ही उनका लय या मिथ्यात्व है। उपादानशेषावशेष ही उपादेयका विलोप है तथा अधिष्ठानशेषावशेष ही कल्पितका नाश है। जलशेषावशेष तरङ्गका विलोप तथा रज्जुशेषावशेष रज्जुसर्पका मिथ्यात्व लोकन्यायसे भी परिलक्षित है। शब्दब्रह्मात्मक वेदोंका विलोप सुषुप्तिमें सिद्ध है - "**अत्र वेदा अवेदा भवन्ति** " (**बृहदारण्यकोपनिषत् ४.३.२२**)। योगज्ञिासु भी शब्दब्रह्मात्मक वेदोंका अतिवर्तन (अतिक्रमण) करनेमें समर्थ है । यह तथ्य श्रीभगवद्वचनके अनुशीलनसे सिद्ध है - "**जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते** " (**श्रीमद्भगवद्गीता ६. ४४**)

लोकमें स्वप्नदृष्ट मिथ्याभूत सिंहके द्वारा स्वाप्निक प्रपञ्चका समूल अपनयन स्पष्ट है।

इसके अतिरिक्त मिथ्याभूत वस्तुके द्वारा तत्त्वप्रत्यायन भी सम्भव है। लोकमें स्पष्ट देखा जाता है कि दर्पणगत मुखप्रतिबिम्ब स्वयं मिथ्या होता हुआ भी तात्त्विक मुखके अवयव विशेषोंका प्रत्यायक होता है। स्वाप्निक कामिनीदर्शनसे सम्पत्तिप्राप्तिका बोध होता है। जैसा कि स्वप्नाध्यायवित् का कथन है -

यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति।
समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने।।
(छान्दोग्योपनिषत् ५.२.७)

काम्यकर्मानुष्ठानके समय स्वप्नमें स्त्रीदर्शन अभीष्टसिद्धिका बोधक समझना चाहिये। ऐसे ही प्रतिमादिमें विष्णु आदि देवदृष्टि संवादिभ्रमवत् मिथ्या कल्प होने पर भी तत्त्वबोधका कारण है, इसे सब मानते हैं। मिथ्यावस्तुसे अर्थक्रियाकारिताकी सिद्धि असम्भव है, ऐसी मान्यता स्वप्नाङ्गनासे प्रयोजनसिद्धिके उदाहरणसे निरस्त है। -

''भवेद् भ्रमात्मकमपि किञ्चिदर्थक्रियाकरम्।
स्वप्नाङ्गनापि कुरुते सत्यामर्थक्रियां नृणाम्।।''
(योगवासिष्ठ उ.निर्वाण ९९.४७)

अतः प्रपञ्च मिथ्यात्वानुमान सर्वथा निर्दुष्ट है। अन्यथा प्रपञ्चको तात्त्विक माननेपर मोक्षका अत्यन्ताभाव ही प्रसक्त होगा, जो कथमपि इष्ट नहीं है।

'अहम्' - प्रत्ययका विषय होनेसे आत्मा भी दृश्य है, अतएव मिथ्या है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। कारण यह है कि आत्माकी **'अहम्'** - प्रत्ययविषयता बुद्धिसम्बन्धसे औपाधिक है। वस्तुदृष्ट्या तो केवल आत्मा कभी भी अहम्प्रत्ययका विषय होता ही नहीं। वह चित्प्रकाशावेशवश बुद्ध्यादिको मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, आदिरूपसे प्रकाशित करता है। ऐसी स्थितिमें अहम्प्रत्यय प्रत्यगात्माको प्रकाशित कर सकता है। शास्त्रकी सार्थकताके लिए शास्त्रीयदृष्टिसे केवल आत्माका दृश्यत्व स्वीकार करना भी उचित नहीं। कारण यह है कि आगमज्ञान आत्मतत्त्वके अज्ञानका अपनयनमात्र करता है, न कि आत्माको

प्रकाशित करता है। आत्मा स्वप्रकाश है। यह बात पहले कही जा चुकी है। '**स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यते**' (**बृहदारण्यको -पनिषत् ४.२.४**) यह श्रुति स्पष्ट ही इस तथ्यको प्रकाशित करती है। इस प्रकार, प्राकृतिक पुर्यष्टकावच्छिन्न चेतन संसृति लाभ करता है। उसका यह संसार मायीय होनेसे मिथ्या ही है। ज्ञानेन्द्रियपञ्चक, कर्मेन्द्रियपञ्चक, प्राणादिपञ्चक, आकाशादिपञ्चक, अन्त:करणचतुष्टय तथा अविद्या, काम और कर्मका नाम- पुर्यष्टक है। -

''ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं कर्मेन्द्रियपञ्चकं प्राणादिपञ्चकं वियदादि- पञ्चकमन्त:करणचतुष्टयं कामकर्मतमांस्यष्टपुरम्।।''
(पैङ्गलोपनिषत् २.१)

ध्यान रहे, महानुभावोंने सत्यववस्तुके ज्ञानजन्य संस्कार, प्रमातृगत लोभ - भयादि दोष, प्रमेयगत सादृश्यदोष, प्रमाणरूप नेत्रादिगत मन्दत्वादिदोष तथा अधिष्ठानका सामान्यरूपसे ज्ञान और विशेषरूपसे अज्ञान मिथ्यात्वका प्रयोजक माना है। यथा रज्जुमें सर्पभ्रमके लिए वास्तव रज्जुका पूर्व बोध, अन्त:करणमें भयादि, रज्जुसादृश्य, नेत्रगत मन्दत्वादिदोष, इदं - इस सामान्यरूपसे रज्जुका स्फुरण तथा रज्जुत्वरूप विशेषरूपसे अस्फुरण सर्पभ्रममें हेतु मान्य हैं।

परन्तु वास्तव जगत् के बोधके बिना जगत् - विभ्रम कैसे सम्भव है ? प्रमाताको मिथ्या मानना तथा मिथ्या जगत् की प्रतीतिमें हेतु भी स्वीकार करना कैसे सम्भव है ? ब्रह्मके सर्वथा विसदृश जगत् का ब्रह्ममें अध्यस्त होना कैसे सम्भव है ? अध्यासके पूर्व प्रमाताके तुल्य प्रमाणका अस्तित्व ही असिद्ध है, अत: प्रमाणदोष भी असङ्गत है। निरवयव - निर्विशेष ब्रह्मका सामान्यरूपसे स्फुरण तथा विशेषरूपसे अस्फुरण कैसे सम्भव है ?

उत्तर है, भ्रमाधिकरण रज्जुके अतिरिक्त स्थलमें वास्तव सर्पका विभ्रम सम्भव है। परन्तु भ्रमाधिकरण सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके अतिरिक्त स्थलका अभाव होनेके कारण उसके अतिरिक्त स्थलमें या उसमें वास्तव जगत् की स्थिति तथा अनुभूति ही असम्भव है। प्रामाणिक निरीक्षण - परीक्षण करनेपर

श्लोक : २०

जगत् सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन विभु ब्रह्मके अन्दर या बाहर सर्वथा असम्भव है। अज्ञानयोगसे रज्जुघनकी सर्पादिरूपसे प्रतीतिके तुल्य अचिन्त्य मायाशक्तिके अमोघ प्रभावसे सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन विभु ब्रह्मकी ही जगदाकार प्रतीति सम्भव है। चित्रसर्पके दर्शनसुलभ संस्कारके उद्बुद्ध होनेपर परिलक्षित सर्पभ्रमके सदृश पूर्व - पूर्व भ्रमजन्य संस्कारकी उद्बुद्धताके कारण उत्तर - उत्तर भ्रमकी सिद्धि सम्भव है। अधिष्ठानात्मक ब्रह्ममें परस्परसापेक्ष प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय - तीनोंकी अध्यस्तता तथा तद्गत दोषवश तेजोद्रव्यमें परस्परसापेक्ष सूर्य, नेत्र तथा रूपके तुल्य भ्रम सम्भव है। नभोद्रव्यमें विसदृश नीलिमाके तुल्य ब्रह्मके सर्वथा विसदृश जगत् का ब्रह्ममें विभ्रम सम्भव है। मालपूआ आदिमें शब्द, स्पर्शादिकी विभाजक रेखा न होनेपर भी भेदकोपाधि श्रोत्र, त्वगादिके योगायोगके कारण शब्द, स्पर्शादिके स्फुरण और अस्फुरणके सदृश निरवयव - निर्विशेष ब्रह्मका सत्त्वादिके योगायोगसे स्फुरण तथा अस्फुरण सम्भव है। उष्ण जलमें अग्निनिष्ठ दाहकी स्फूर्ति और प्रकाशकी अस्फूर्तिके तुल्य ब्रह्मका सामान्यरूपसे स्फुरण तथा विशेषरूपसे अस्फुरण भी सम्भव है। सहगानमें प्रतिबन्धककी प्रगल्भताके कारण स्वरलहरीका सामान्यरूपसे स्फुरण तथा विशेषरूपसे अस्फुरणके सदृश अभिव्यञ्जकसंस्थानकी मन्दता, विद्यमानता, अविद्यमानतादि प्रतिबन्धकताके कारण ब्रह्मका सामान्यरूपसे स्फुरण तथा अद्वयात्मविशेषरूपसे अस्फुरण सम्भव है। अमृतत्वकी भावना और मृत्युके भयका, विज्ञानकी भावना और अज्ञानके भयका तथा आनन्दकी भावना एवम् दुःखके भयका और सर्वात्मरूपताकी भावना और द्वैतसे भयका अनुशीलन करनेपर आत्माकी अद्वितीय सच्चिदानन्दरूपताका सामान्यरूपसे स्फुरण तथा विशेषरूपसे अस्फुरण अनुभवसिद्ध है।

फिर भी कहा जाता है - ''**अविद्या -निवृत्ति जिसे मुक्ति कहते हैं, वह क्या है ? अविद्यानिवृत्ति यदि सती है, तब तो वह भी आत्माके समान ही नित्य होगी, फिर वह साध्य कैसे होगी ? यदि असती है, तब तो ज्ञानका फल नहीं हो सकती। वह सदसती तो होनेसे रही। क्यों कि सत् और असत् का परस्पर विरोध (बाध्यबाधकभाव) होनेसे,**

एकत्र स्थिति नहीं हो सकती। सदसद्विलक्षणा अविद्यानिवृत्ति है, यह कथन भी सङ्गत नहीं। क्यों कि वैसी तो अविद्या ही होती है और वह निवर्त्य होती है। इस तरह तो अविद्यानिवृत्तिरूप मोक्ष भी निवर्त्य ही ठहरेगा। सदसदादि चतुष्कोटिविनिर्मुक्त अविद्यानिवृत्ति है, ऐसा माननेपर उसकी शून्यरूपता ही सिद्ध होगी। "

उक्त पक्षका निराकरण इस प्रकार है। वस्तुत: सत्प्रतियोगी असत् पदार्थ ही शून्य होता है। सदसद्विलक्षण अविद्याप्रतियोगिक अविद्याकी निवृत्ति पञ्चम प्रकारकी है। अभिप्राय यह है कि सत्, असत्, सदसत्, सदसद्विलक्षण - इन चारोंसे विलक्षण ही अविद्यानिवृत्ति है। यथार्थरूपसे वीक्ष्यमाण अधिष्ठानसे भिन्न मिथ्यावस्तुकी निवृत्ति नहीं होती। क्योंकि मिथ्यावस्तुका निषेध होनेपर अधिष्ठान ही अवशिष्ट रहता है। अभिप्राय यह है कि अधिष्ठान - शेषावशेष ही कल्पितका नाश होता है। अत: विद्यारूपा वृत्तिपर प्रतिबिम्बित होकर ब्रह्म ही स्वाध्यस्त सकार्या (अपनेमें अध्यस्त कार्यसहित अविद्याका) निवर्त्तक होता है। तत्स्वरूप ही अविद्यानिवृत्ति है। अत: ज्ञातत्वोपलक्षित ब्रह्मात्मा ही अविद्यानिवृत्ति है -

"निवृत्तिरात्मा मोहस्य ज्ञातत्वेनोपलक्षित: ।"

ओङ्काररूप शब्दब्रह्म और त्रिगुणमय महद् ब्रह्मका पर्यवसान सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म है। **"न हि सत्यस्य नानात्वम् " (श्रीमद्भागवत १२. ४.३०)** के अनुसार सत्यका नानात्व असम्भव है। परम सत्यरूप तत्त्व अद्वय बोधात्मक ही सम्भव है।

घटादि शब्द और घटादिशब्दार्थविज्ञान व्यवहारका साधक है। व्यवहारसाधक बोधरूप प्रत्ययमें शब्दानुबेध स्वभावसिद्ध है। -

**"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके य: शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिवज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ।। "
(वाक्यपदीयम् १.१२३)**

घटज्ञानमें घटका, शब्दज्ञानमें शब्दका, स्पर्शज्ञानमें स्पर्शका, रूपज्ञानमें रूपका, रसज्ञानमें रसका, गन्धज्ञानमें गन्धका, सुखज्ञानमें सुखका,

श्लोक : २०

दु:खज्ञानमें दु:खका, मोहज्ञानमें मोहका अनुबेध होनेपर भी "**वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्**" (**छान्दोग्योपनिषत् ६.१.४**), "**सदेव सत्यम्**" (**पैङ्गी उपनिषत्**) के अनुसार सर्ववस्तुपरमोपादान स्वप्रकाश बोधरूप ज्ञानमें घट, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख, दु:ख, मोहकी अध्यस्तता, अतएव घटादिकी ज्ञानमात्रता चरितार्थ है। शब्दादि विषय, जागरादि अवस्था तथा देश, काल - भेदसे ज्ञानमें अभेदके कारण तथा परिणामरूप उपादेयकी अपेक्षा परिणामोपादानकी और परिणामोपादानकी अपेक्षा विवर्तोपादानकी एवम् सर्वापेक्षा स्वप्रकाश ज्ञानकी सत्यताके कारण ज्ञानातिरिक्त सबका असत्त्व चरितार्थ है। शब्द और शब्दानुविद्ध प्रत्ययका लयस्थान स्वप्रकाश अद्वय ज्ञान ही वह परम तत्त्व है।

रज्जुसर्पकी रज्जुरूपताका रहस्य रज्जुसर्पका परिणामोपादान रज्जुका अज्ञान और स्वयं रज्जुका विवर्तोपादान होना है। तद्वत् चिद्विवर्तरूप जगत् की चिद्रूपताका रहस्य चिद्विवर्तात्मक जगत् का परिणामोपादान चित् का अज्ञान और स्वयं चित् का विवर्तोपादान होना है। -

"**ज्ञानं यथा सत्यमसत्यमन्यत् ।**"

(**विष्णुपुराण २. १२. ४५**)

"स्वप्रकाश ज्ञानके अतिरिक्त सब असत्य है ।"

"**भासमानमिदं सर्वं भानरूपं परम पदम्।**"

(**वराहोपनिषत् २.१४**)

"ज्ञानस्वरूप परमपद ही यथार्थ सत्य है। भास्यप्रपञ्च उसका विवर्तमात्र है ।"

"**ज्ञानात्मकमिदं सर्वं ज्ञानानन्दोऽहमद्वय:।**
सर्वप्रकाशरूपोऽहं सर्वाभावस्वरूपकम् ।।"

(**तेजोबिन्दूपनिषत् ६.६०**)

"ज्ञानस्वरूप चिद्धातुका विवर्त यह सब ज्ञानस्वरूप ही वस्तुत: सिद्ध है। मैं अद्वय ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ। मैं सर्वप्रकाशस्वरूप तथा परमार्थसत्ताविरहित अतएव अभावात्मक प्रपञ्चका अधिष्ठानमात्र हूँ।"

श्लोक : २०

"चिन्मात्रं चैत्यरहितमनन्तमजरं शिवम्।
अनादिमध्यपर्यन्तं यदनादिनिरामयम्।।"

(महोपनिषत् २.६८)

"आत्मा चैत्यसंज्ञक दृश्यरहित चिन्मात्र, अनन्त, अजर और शिवस्वरूप है। उसका न आदि है, न मध्य और न अन्त ही। वह निरुपद्रव सर्वकारण सर्वाधिष्ठानस्वरूप है।"

"अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते।"

(योगतत्त्वोपनिषत् १६)

"संसार का मूल सर्वाधिष्ठान आत्माका अज्ञान हीं है; अतः अद्वय आत्माके ज्ञानसे ही भवबन्धकी आत्यन्तिकी निवृत्ति सम्भव है।"

"महदादि जगत्सर्वं मायाविलसितं तव।
अध्यस्तं त्वयि विश्वात्मंस्त्वयेव परिणामितम्।।
यदेतदखिलाभासं तत्त्वदज्ञानसम्भवम्।
ज्ञाते त्वयि विलीयेत रज्जुसर्पादिबोधवत्।।

(स्कन्दपुराण २वै० उत्कल० २७. १६, १७)

"हे प्रभो ! महदादि कार्यप्रपञ्च आपकी मायासे ही उल्लसित है, यह मायाका परिणाम जगत् आप में अध्यस्त ही है। रज्जुतत्त्वके अज्ञानसे विलसित रज्जुसर्पादिका विलोप जिस प्रकार रज्जुविज्ञानसे ही सम्भव है, उसी प्रकार आपके विज्ञानसे ही अज्ञान सहित मायिक महदादि कार्यप्रपञ्चका विलय सम्भव है।।"

"ब्रह्मैकमद्वितीयं स्यान्नाना नेहास्ति किञ्चन।
मायिकं सर्वमज्ञानाद् भाति वेदान्तिनां मतम्।।"

(शुक्रनीति ४.३.५०)

"वेदान्तियों के मतमें यहाँ नाना कुछ भी नहीं है; एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही है। ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्वविज्ञानके अज्ञानके कारण मायिक प्रपञ्चकी सत्यवत् स्फूर्ति होती है।"

श्लोक : २०

संकल्प, निश्चय, स्मरण और गर्वरूप प्रत्ययमें अनुगत शब्दकी अस्वप्रकाशता त्रिपुटीसे निरपेक्ष स्वप्रकाश अधिष्ठानात्मक प्रत्ययकी अद्वितीयता सिद्ध करती है। ऐसी स्थितिमें वैयाकरणोंका शब्दोपादानवाद चरम सत्य सिद्ध नहीं होता। वेदान्तनयानुसार, वस्तुत : शब्दसंश्लिष्ट सविशेष तथा शब्दासंश्लिष्ट निर्विशेष ज्ञान ही चरम सत्य अर्थात् तत्त्व सिद्ध होता है। -

धनुः शरीरमोमित्येतच्छरः शिखाऽस्य मनस्तमोलक्षणं भित्त्वा तमोऽतमाविष्टमागच्छत्यथाविष्टं भित्त्वाऽलातचक्रमिव स्फुरन्तमादित्यवर्णमूर्जस्वन्तं ब्रह्म तमसः पर्यमपश्यत्।

(मैत्रायण्युपनिषत् ६.२४)

कांस्यघण्टानिनादस्तु यथा लीयति शान्तये।
ओङ्कारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता।।
यस्मिन्विलीयते शब्दस्तत्परं ब्रह्म गीयते।
धियं हि लीयते ब्रह्म सोऽमृतत्वाय कल्पते।।

(ब्रह्मविद्योपनिषत् १२,१३)

"'**शरीर**' धनुष है। '**ओम्**' शर है। '**मन**' उसकी धार है। उसके द्वारा अज्ञानरूप तमस्का भेदन (निवारण) हो जानेपर स्वप्रकाश आत्मदेव स्वानुरूप अवशिष्ट रहता है।"

"जिस प्रकार काँसेके घण्टेसे निष्पन्न निनाद अपने उद्गम-स्थान-प्रशान्त आकाशमें ही विलीन हो जाता है; उसी प्रकार ओङ्कारोच्चारणसे निष्पन्न शब्दप्रवाह अपने उद्गमस्थान सर्गात्मा और सर्वात्मा चिदाकाश में ही विलीन हो जाता है। जब शब्दसंस्कार और बोधकी युग्मावस्थारूपा बुद्धि शब्दसाङ्कर्य-विनिर्मुक्त होकर ब्रह्ममें ही लीन होती है, तब वह साधक अमृतत्व लाभ करता है।"

"शब्दमायावृतो यावत् तावत्तिष्ठति पुष्करे।
भिन्ने तमसि चैकत्वमेकमेवानुपश्यति।।
शब्दाक्षरं परं ब्रह्म यस्मिन्क्षीणे यदक्षरम्।
तद्विद्वानक्षरं ध्यायेद्यदीच्छेच्छान्तिमात्मनः।।"

(ब्रह्मविन्दूपनिषत् १५.३,४)

श्लोक : २०

''जीव जब तक विभेदजनक शब्दाडम्बररूपा शब्दब्रह्मात्मिका मायासे आवृत रहता है, तब तक हृत्पद्म में आवद्ध-सा परिलक्षित होता है । जब वह शब्दात्मिका मायासे अतिक्रान्त हो जाता है, तब जीवेश्वरके एकत्वका ही दर्शन करता । शब्दब्रह्मात्मक प्रणव तथा प्रणवलक्ष्यार्थ दोनोंकी अक्षर संज्ञा है । परन्तु परब्रह्मके बोधक शब्दब्रह्मका क्षय हो जानेपर परमाक्षर परं ब्रह्म ही शेष रहता है ।''

''नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा
प्राणेन्द्रियाणि च यथानलमर्चिषः स्वाः ।
शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूल -
मर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः ।।''

(श्रीमद्भागवत ११.३.३६)

''जैसे दाह और प्रकाशरूप अग्निकी चिनगारियोंका उद्गमस्थान अग्नि है, अतएव चिनगारियाँ अपने उपादानभूत अग्निको दग्ध करने और प्रकाशित करनेमें अक्षम हैं, वैसे ही भगवद्रूप इस आत्मामें आत्मविलासरूप मन, बुद्धि, प्राण और वाक्, नेत्रादि इन्द्रियोंकी गति नहीं है; अभिप्राय यह है कि ये इन्हें अपना विषय बनानेमें समर्थ नहीं । माना कि शब्द आत्मबोधका सर्वाधिक सन्निकट साधन है, परन्तु वह भी शब्दप्रवृत्तिके अहेतुभूत एक, निर्गुण, निष्क्रिय, असङ्ग, निरुपम - निरधिष्ठान आत्मामें साक्षात् चरितार्थ न होकर अशेष विशेषातीत स्वप्रकाश साक्षादपरोक्ष, निर्बीज, निषेधाधिष्ठानतत्त्वको परम तात्पर्यरूपसे लक्षित करता है ।।''

''वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।।''

(श्रीमद्भागवत १.२.११)

''तत्त्ववेत्तावृन्द उसे तत्त्व कहते हैं ; जो ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूप त्रिपुटीके मध्यवर्ती ज्ञातारूप आश्रय तथा ज्ञेयरूप विषय - निरपेक्ष त्रिपुटीसे अतीत अद्वय ज्ञान है। जो ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् - इन नामोंसे निरूपित है।।''

कर्म और कालकी गति उदयास्तमय सूर्यसापेक्ष है। उदयास्तरहित

श्लोक : २०

चिदादित्य कालकर्मसे अतीत है। वह एक, अगुण, अविक्रिय, असङ्ग, संज्ञा - संज्ञिभावविनिर्मुक्त होनेके कारण शब्दप्रवृत्तिके हेतुभूत मनुष्यत्वादि जाति, नीलपीतश्वेतादि गुण, पचनपाठनादि कर्म, सजातीयादि सम्बन्ध और डित्थडवित्थादि रूढिसे भी रहित है। छिन्नवृक्षके मूलभागकी अथवा काष्ठमय हस्ती की **डित्थ** संज्ञा है । दीमक द्वारा सञ्चित मृत्पिण्डकी अथवा काष्ठमय मृगकी **डवित्थ** संज्ञा है ।

''रवेरुदयास्तमयौ किल कर्म कर्तव्यम्। एवंविधश्चिदादित्यस्योदयास्तमयाभावात्सर्वकर्माभाव:। शब्द - काललयेन दिवारात्र्यतीतो भूत्वा सर्वपूर्णज्ञानेनोन्म्यवस्थावशेन ब्रह्मैक्यं भवति।। '' (मण्डलब्राह्मणोपनिषत् २.२)

सूर्यकी उत्पत्ति और संहृतिरूप सूर्यके उदय और अस्तका काल निर्दिष्ट है । तदनुसार सर्ग और प्रलयकी मान्यता चरितार्थ है। सर्ग कर्मकाल है और प्रलय अकर्मकाल है। आत्मादित्यका उदय और अस्त न होनेके कारण कर्मके आरम्भ और अस्तका भी अभाव है। अत: आत्मदृष्टिसे कर्माकर्मसे अतीत नित्य अकर्मकी सिद्धि है।

सूर्यके उन्मुख क्षेत्रविशेषमें सूर्योदय मान्य है। सूर्यके विमुख क्षेत्रविशेषमें सूर्यास्त मान्य है। भूमण्डल व्याप्य तथा आदित्यमण्डल व्यापक है। तथापि भूमण्डलका जो अंश आदित्यमण्डलके सम्मुख आता है, वह सौरालोकसे उद्भासित होता है, अतएव वहाँ दिन होता है। भूमण्डलका जो अंश आदित्यमण्डलके असम्मुख होता है, वह सौरालोकसे अनुद्भासित होता है, अतएव वहाँ रात्रि होती है। दिन कर्मभूमि है और रात्रि अकर्मभूमि है। देव और पितरोंकी कालगणनामें भिन्नता है।-

''अहो रात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ।
रात्रि: स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामह:।।
(मनुस्मृति १.६५)

आत्मादित्य अहर्निश उदित है। आध्यात्मिक धरातलपर कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियसहित अन्त:करणकी बाह्याभ्यन्तर सक्रियता दिनतुल्य जागर

है। कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंकी तमसाच्छन्नता और अन्तःकरणकी अर्द्ध सुप्तता सन्ध्यासदृश स्वप्न है। कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियसहित अन्तःकरणकी बाह्याभ्यन्तर तमसाच्छन्नता रात्रिसदृश सुषुप्ति है।

उदित और अनस्त आत्मादित्यको स्वीकार करनेपर कर्मोपरमता असम्भव है। नित्य अनुदित और अनस्त अनादि और अनन्त आत्मादित्य अविक्रिय विज्ञानघन है, अतः कर्मका सदा अनारम्भ ही सिद्ध है। देहेन्द्रियगत कर्माकर्मका आत्मामें आरोपमात्र है। आत्मादित्य नित्य अकर्मरूप है।

ध्यान रहे, वाक् और मनका उदय शब्द और कालकृत व्यवहारका मूल होनेके कारण **दिन** है। शब्द और कालका समवेतरूप बुद्धिका अज्ञानमें विलय शब्द और कालकी बीजावस्थारूपा **रात्रि** है तथा निरावरण अद्वय ज्ञानमें विलय आत्यन्तिक प्रलय विदेहावस्थारूपा **मुक्ति** है।

''निमित्तं किञ्चिदाश्रित्य खलु शब्दः प्रवर्तते।
यतो वाचो निवर्तन्ते निमित्तानामभावतः।।
निर्विशेषे परानन्दे कथं शब्दः प्रवर्तते ।।''
(कठरुद्रोपनिषत् ३१, ३२)

वैयाकरणोंके शब्द, ज्योतिर्विदोंके काल और मीमांसकोंके कर्मके तुल्य ही साङ्ख्योंकी माया (प्रकृति) सत्तातिरिक्त स्वतः अस्तित्वविहीन होनेके कारण सद्रूप आत्मा ही सत् है। ब्रह्मात्म्यैक्य बोधके अनन्तर व्युत्थानदशामें बाधितानुवृत्तिसे भास्यप्रपञ्चकी प्रतीति होनेपर भी माया और मायिक जगत् का मिथ्यात्व श्रुतिसम्मत है। -

''अस्तिता लक्षणा सत्ता सत्ता ब्रह्म न चापरा।
नास्ति सत्तातिरेकेन नास्ति माया च वस्तुतः।।
योगिनामात्मनिष्ठानां माया स्वात्मनि कल्पिता।
साक्षिरूपतया भाति ब्रह्मज्ञानेन बाधिता।।
ब्रह्मविज्ञानसम्पन्नः प्रतीतमखिलं जगत्।
पश्यन्नपि सदा नैव पश्यति स्वात्मनः पृथक्।।''
(पाशुपतब्राह्मणोपनिषत् ४४ - ४६)

आनन्दत्वान्न मे दुःखमज्ञानाद्भाति सत्यवत्।।"

(आत्मप्रबोधोपनिषत् २९, ३०)

यद्यपि स्वप्रकाश आत्मदेव अद्वय बोधात्मा ही है, तथापि उसमें अज्ञान और अज्ञानप्रभव आवरण तथा विक्षेपादिविभ्रम प्रचण्ड मार्तण्डमण्डलमें उलूककल्पित तमिस्रा रात्रिवत् अज्ञकल्पित अवभासित है। कूटस्थ ब्रह्मका असत्त्व भी गगनघनपटलसे समावृत दृष्टिके कारण सूर्यके अस्तित्वके अपलापके सदृश ही है। -

"उलूकस्य यथा भानुरन्धकारः प्रतीयते।
स्वप्रकाशे परानन्दे तमो मूढस्य जायते।।
चक्षुर्दृष्टिनिरोधेऽभ्रैः सूर्यो नास्तीति मन्यते।
तथाऽज्ञानावृतो देही ब्रह्म नास्तीति मन्यते।।"

(आत्मप्रबोधोपनिषत् २५, २६)

आत्मदेव सर्वाधिष्ठानस्वरूप है । वह सन्मात्र है । अविद्यारूप तमस् और मोहसे विरहित परमार्थ अहमर्थ ही परमतत्त्व है । अतएव "मैं ही परंब्रह्म हूँ"- इस प्रकार अनुसन्धान करना चाहिये ।-

"सर्वाधिष्ठानसन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवेति तस्मादेवमेवेममात्मानं परं ब्रह्मानुसन्दध्यात्।।" (नृसिंहोत्तर-तापनीयोपनिषत् २.२) ।

"यह विश्व अविद्या-विरचित स्वप्न तथा गन्धर्वनगरके तुल्य आत्ममायासे आत्मामें विरचित है ।" भक्तप्रवर श्रीध्रुवादि-तुल्य ऐसा निश्चय कर्त्तव्य है ।-

"मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि ।
अविद्यारचितस्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ।।"

(श्रीमद्भागवत ४.१२.१५)

■

श्लोक : २०

''विवेकयुक्तिबुद्ध्याहं जानाम्यात्मानमद्वयम्।
तथापि बन्धमोक्षादिव्यवहारः प्रतीयते।।
निवृत्तोऽपि प्रपञ्चो मे सत्यवद्भाति सर्वदा।
सर्पादौ रज्जुसत्तेव ब्रह्मसत्तैव केवलम्।
प्रपञ्चाधाररूपेण वर्ततेऽतो जगन्नहि।।''
(आत्मप्रबोधोपनिषत् ११,१२)

''समाधौ मृदिततमोविकारस्य तदाकाराकारिताखण्डाकारवृत्त्यात्मकसाक्षिचैतन्ये प्रपञ्चलयः सम्पद्यते प्रपञ्चस्य मनः कल्पितत्वात् । ततो भेदाभावात्कदाचिद्बहिर्गतेऽपि मिथ्यात्वभानात्।।'' (मण्डलब्राह्मणोपनिषत् २.३)

''परमार्थतो न किञ्चिदस्ति क्षणशून्यानादिमूलाविद्या - विलासत्वात्। तत्कथमिति। एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म। नेह नानास्ति किञ्चन। तस्माद्ब्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वं बाधितमेव। सत्यमेव परंब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'' (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३)

प्रामाणिक निरीक्षण - परीक्षणसे जीवन और जगत् की असच्चिदानन्दरूपता और अधिष्ठानभूत आत्माकी सच्चिदानन्दरूपता सिद्ध होती है। अनित्योंका परम मूल अनित्यको स्वीकार करनेपर , अचेतनोंका परम मूल अचेतनको स्वीकार करनेपर और त्रिविध तापोंका परम मूल दुःखको स्वीकार करनेपर अनवस्थादोष अनिवार्य है। उसके वारणके लिए असच्चिदानन्दरूप जगत्का अधिष्ठानात्मक उपादान सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको स्वीकार करते ही सत् , चित् और आनन्दात्मामें अनित्य, अचित् और दुःखरूप अहङ्कारादि जगत्का रज्जुमें रज्जुसर्पादिवत् असत्त्व चरितार्थ होता है। अतएव आत्माकी अद्वितीयता स्वतः सिद्ध है। -

''कालत्रये यथा सर्पो रज्जौ नास्ति तथा मयि।
अहङ्कारादिदेहान्तं जगन्नास्त्यहमद्वयः।।
चिद्रूपत्वान्न मे जाड्यं सत्यत्वान्नानृतं मम।

परिभाषाप्रकाश

ग्रन्थकार श्रीभगत्पादने इस ग्रन्थमें वेदान्तप्रसिद्ध जिन पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग किया है, उनकी क्रमिक श्रुतिसम्मत परिभाषा इस प्रकार है-

ब्रह्म (श्लोक १, २०), मोक्ष (श्लोक १, २), सच्चिदानन्दरूप: (श्लोक २) , प्रकृति: (श्लोक ६), माया (श्लोक ७,९,१७), आत्मा (७,१२), अन्तर्यामी (श्लोक ११), अनन्तानन्दरूप:(श्लोक १०), परमात्मा (श्लोक ११), साक्षी (श्लोक १३,१८), जगत् (श्लोक १९,२०), जीव: (श्लोक २०)

(१)<u>ब्रह्म</u> - कालत्रयाबाधितं ब्रह्म। सर्वकालाबाधितं ब्रह्म। सगुणनिर्गुणस्वरूपं ब्रह्म। आदिमध्यान्तशून्यं ब्रह्म। सर्वं खल्विदं ब्रह्म। मायातीतं गुणातीतं ब्रह्म। अनन्तमप्रमेयाखण्डपरिपूर्णं ब्रह्म। अद्वितीयपरमानन्दशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वरूपव्यापकाभिन्नापरिच्छिन्नं ब्रह्म। सच्चिदानन्दं स्वप्रकाशं ब्रह्म। मनोवाचामगोचरं ब्रह्म। अखिलप्रमाणागोचरं ब्रह्म। अमितवेदान्तवेद्यं ब्रह्म। देशत: कालतो वस्तुत: परिच्छेदरहितं ब्रह्म। सर्वपरिपूर्णं ब्रह्म। तुरीयं निराकारमेकं ब्रह्म।

(त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ३)

''कालत्रयसे अबाधित ब्रह्म है। सर्वकालमें अबाधित ब्रह्म है। सगुण तथा निर्गुणस्वरूप ब्रह्म है। आदि, मध्य और अन्तशून्य ब्रह्म है। नि:सन्देह सर्वरूप ब्रह्म है। मायातीत तथा गुणातीत ब्रह्म है। अनन्त, अप्रमेय, अखण्ड, परिपूर्ण ब्रह्म है। अद्वितीय, परमानन्द, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्यस्वरूप, व्यापक, अभिन्न, अपरिच्छिन्न ब्रह्म है। सच्चिदानन्द स्वप्रकाश ब्रह्म है। मन और वाणीका

अगोचर ब्रह्म है। अखिल प्रमाणका अगोचर ब्रह्म है। अमितवेदान्तवेद्य ब्रह्म है। देश, काल तथा वस्तुकृत परिच्छेदरहित ब्रह्म है। सर्वपरिपूर्ण ब्रह्म है। वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, सर्वेश्वरसे अतीत तुरीय निराकार एक ब्रह्म है।

''महदहङ्कारपृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशत्वेन बृहद्रूपेणाण्डकोशेन कर्मज्ञानार्थरूपतया भासमानमद्वितीयमखिलोपाधिविनिर्मुक्तं तत्सकलशक्त्युपबृंहितमनाद्यनन्तं शुद्धं शिवं शान्तं निर्गुणमित्यादिवाच्यमनिर्वाच्यं चैतन्यं ब्रह्म।'' (निरालम्बोपनिषत्) -

''महत्, अहङ्कार, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाशात्मक बृहद्रूप अण्डकोश रूपसे कर्मज्ञानकी सिद्धिके निमित्त भासमान अद्वितीय अखिलोपाधिविनिर्मुक्त सकलशक्त्युपबृंहित अनादि, अनन्त, शुद्ध, शिव , शान्त , निर्गुण इत्यादि पदवाच्य वस्तुतः अनिर्वाच्य चैतन्य ब्रह्म है। ''

''यस्माच्च बृहति बृंहयति च सर्वं तस्मादुच्यते परंब्रह्मेति'' (शाण्डिल्योपनिषत् ३.१) -

''स्वयं निरतिशय बृहत् होता हुआ सबकी सत्ता, चित्तामें हेतु होनेके कारण सबका वर्द्धक है, अतः चिद्धातु **ब्रह्म** अर्थात् परंब्रह्म है।।''

(२) मोक्ष (मुक्ति,अपवर्ग) - **''इच्छामात्रमविद्येऽयं तन्नाशो मोक्ष उच्यते। स चासङ्कल्पमात्रेण सिद्धो भवति वै मुने।।'' (महोपनिषत् ४.११६)** -''इच्छामात्र अविद्या है, उसका नाश मोक्ष कहा जाता है! असङ्कल्पमात्रसे उसकी सिद्धि सम्भव है।'', **''स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिः'' (महोपनिषत् ४.११६)**, **''मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः'' (श्रीमद्भागवत २.१० .६)** - ''अनात्मवस्तुओंके अनुरूप आत्ममान्यताका त्यागकर आत्मानुरूप आत्मस्थिति मुक्ति है।'', **''मनआदिश्च प्राणादिश्च सत्त्वादिश्चेच्छादिश्च पुण्यादिश्चैते पञ्चवर्गा इत्येतेषां पञ्चवर्गाणां धर्मीभूतात्मज्ञानादृते न विनश्यति। आत्मसन्निधौ नित्यत्वेन प्रतीयमान आत्मोपाधिर्यस्तं लिङ्गं शरीरं हृदयग्रन्थिरित्युच्यते ।।'' (सर्वसारोपनिषत् २)** - ''मनआदि, प्राणादि , सत्त्वादि, इच्छादि और पुण्यादि - पञ्चवर्ग हैं। इन पञ्चवर्गोंका धर्मीभूत आत्मस्वरूपका अज्ञान आत्मज्ञानके विना विनष्ट नहीं

होता। आत्माकी सन्निधिके अमोघ प्रभावसे नित्यत्वेन प्रतीयमान आत्माकी उपाधि लिङ्गशरीर हृदयग्रन्थि है। उसका भेदन, छेदन और क्षय ब्रह्मात्मतत्त्वमें उसकी अध्यस्तताका विज्ञान हुए बिना असम्भव है। ब्रह्मात्मतत्त्वके एकत्वविज्ञानके अमोघ प्रभावसे चिज्जडग्रन्थिका विलोप अपवर्गसंज्ञक **मोक्ष** है।।''

''नित्यानित्यवस्तुविचारादनित्यसंसारसुखदु:खविषयसमस्तक्षेत्रममताबन्धक्षयो मोक्ष:'' **(निरालम्बोपनिषत्)**- ''नित्य और अनित्य वस्तुके विचारसे सुखदु:खमोहात्मक अनित्य संसार और कार्य - कारणात्मक जगत्में अहन्ता और ममतारूप बन्धक्षय **मोक्ष** है।''

''आत्मेश्वरजीव: अनात्मनां देहादीनामात्मत्वेनाभिमन्यते सोऽभिमान आत्मनो बन्ध:। तन्निवृत्तिर्मोक्ष:।।'' **(सर्वसारोपनिषत्)**- ''वस्तुत: आत्मस्वरूप सर्वेश्वर होता हुआ भी अनादि अविद्या, काम और कर्मके वशीभूत जीव देहादि अनात्मवस्तुओंके अनुरूप जो स्वयंको मानता है, वह बन्ध है। बन्धनिवृत्ति मोक्ष है।।''

''दृश्यसम्वलितो बन्धस्तन्मुक्तौ मुक्तिरुच्यते।''
(अन्नपूर्णोपनिषत् २. १८)

''दृश्यसम्वलित आत्ममान्यता बन्धन और दृश्यसंसर्गविविक्त आत्मानुरूप आत्मस्थिति मोक्ष है।।''

''अशेषेणपरित्यागो वासनायां य उत्तम:।
मोक्ष इत्युच्यते सद्भि: स एव विमलक्रम:।।
(महोपनिषत् २.३९)

''वासनाओंका जो नि:शेष परित्याग है, वही श्रेष्ठ त्याग है। उसी विशुद्ध अवस्थानको सत्पुरुषोंने मोक्ष कहा है।।''

''न मोक्षो नभस: पृष्ठे न पाताले न भूतले।
सर्वाशासंक्षये चेत:क्षयो मोक्ष इतीष्यते।।''
(अन्नपूर्णोपनिषत् २.२३)

''न आकाशके पृष्ठभागमें, न पातालमें, न भूतलमें अर्थात् किसी भी

देशविशेष या वस्तुविशेषमें मोक्ष सन्निहित नहीं है। चित्तस्थित लोकैषणा, वित्तैषणा तथा पुत्रैषणादि सर्वाशाका परित्याग होनेपर विषयाध्यास - विनिर्मुक्त चित्तका चिद्रूपसे अवस्थान ही मोक्ष माना जाता है।।"

(३)सच्चिदानन्दरूप: - ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' (सर्वसारोपनिषत्)

सत् -सत्यम् (२०) -''देशकालवस्तुनिमित्तेषु विनश्यत्सु यन्न विनश्यत्यविनाशि तत्सत्यम् ''- ''देश, काल, वस्तुरूप निमित्तोंसे विनष्ट होती वस्तुओंमें अनुगत रहनेपर भी जिसका नाश न हो, वह अविनाशि तत्त्व सत्य है। ''

चित् - ज्ञानम् - ''उत्पत्तिविनाशरहितं चैतन्यं ज्ञानम् '' - ''उत्पत्ति-विनाशरहित चैतन्य ज्ञान है।''

आनन्द:- ''अपरिमिताविशिष्टसुखरूपश्चानन्द:'' - ''अपरिमित और अविशिष्ट सुखरूप आनन्द है।''

(४) प्रकृति:-''ब्रह्मण: सकाशान्नानाविचित्रनिर्माणसामर्थ्य - बुद्धिरूपा ब्रह्मशक्तिरेव प्रकृति:'' (निरालम्बोपनिषत्) - ''ब्रह्माधिष्ठिता विविध विचित्र निर्माणसामर्थ्य - विज्ञानरूपा ब्रह्मशक्ति ही प्रकृति है।''

(५) माया - अनादिरन्तर्वत्नी प्रमाणाप्रमाणसाधारणा न सती नासती न सदसती स्वयमविकाराद्विकारहेतौ निरूप्यमाणे सती , अनिरूप्यमाणे ऽसती लक्षणशून्या माया '' (सर्वसारोपनिषत्)- ''अनादि अन्तर्गर्भा प्रमाण और अप्रमाण - उभयसिद्ध न सती, न असती, न सदसती स्वयं अविकार होनेसे विकारमें हेतु , निरूपण करनेपर असती , अनिरूपण करनेपर सती लक्षणशून्या माया है।''

''अविद्या मूलप्रकृतिर्माया लोहितशुक्लकृष्णा'' (शाण्डिल्योपनिषत् १)- '' सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका शुक्ल - लोहित - कृष्णवर्णा अविद्या, मूलप्रकृति और माया है।''

''प्रकृतिर्माया पुरुष: शिव:'' (गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत्१.३) -''प्रकृति माया है और पुरुष शिव है।''

''मायया वा एतत्सर्वं वेष्टितं भवति नात्मानं माया स्पृशति '' (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् १)- ''निस्सन्देह यह सब मायासे आच्छादित है, आत्माको माया स्पर्श नहीं कर पाती है।''

''सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुद्ध्यते। ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुतबन्धनम्।। यदर्थेन विनामुष्य पुंस आत्मविपर्ययः। प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः।।'' (श्रीमद्भागवत ३.७.९,१०) -''जो आत्मा सबका स्वामी है और सर्वथा विमुक्त है, वह दीनता और बन्धनको प्राप्त हो, यह बात युक्तिविरुद्ध अवश्य है; किन्तु वस्तुतः यही तो भगवान् की माया है।। जिस प्रकार स्वप्नमें स्वशिरश्छेदनादिकी प्रतीति सत्य न होनेपर भी स्वप्नद्रष्टाको अज्ञतावश सत्यवत् परिलक्षित होती है, वैसे ही जीवको दैन्य और बन्धनादि अप्राप्त होनेपर भी प्राप्तवत् परिलक्षित होते हैं।।''

''ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः।।''
(श्रीमद्भागवत २.९.३३)

''यह आत्ममायाकी लोकोत्तर चमत्कृति ही है कि अद्वय बोधात्मामें सचमुचमें न होनेपर भी सृष्टि द्विचन्द्रवत् सत्यवत् परिलक्षित होती है तथा सर्वाधिष्ठान सर्वानुगत आत्माकी विद्यमानता होनेपर भी ग्रहोंमें राहुवत् आत्माकी आत्मरूपसे प्रतीति नहीं होती है।।''

''माया च प्रलये काले परस्मिन् परमेश्वरे।
सत्यबोधसुखानन्तब्रह्मरुद्रादिसंज्ञिते ।।
अभेदेन स्थितिं याति हेतुस्तत्र सुदुर्गमः।
(सूतसंहिता १ शिव. ८.१७, १७.१/२)

''महाप्रलयमें माया ब्रह्मरुद्रादिसंज्ञक अनन्त सच्चिदानन्द - परम परमेश्वरमें अभिन्नरूपसे स्थित रहती हुई उत्तर सर्गके प्रति हेतुरूपसे अवशिष्ट रहती है। सृष्टिसंरचनाके दुर्गम प्रयोजनको मनीषियोंने विविध प्रकारसे प्रतिपादित किया है। वस्तुतः भोगापवर्गकी सिद्धिके लिए अर्थात् अकृतार्थ जीवोंको कृतार्थ होनेका अवसर प्रदान करनेके लिए उत्तर सर्गकी अपेक्षा है। अतएव मायोपहित

ब्रह्मका अवशिष्ट रहना आवश्यक है।। ''

''अन्यथाभानहेतुत्वादियं मायेति कीर्तिता।।
आत्मतत्त्वतिरस्कारात्तम इत्युच्यते बुधै:।
विद्यानाश्यत्वतोऽविद्या मोहस्तत्कारणत्वत:।।
सद्वैलक्षण्यदृष्ट्येयमसदित्युदिता बुधै:।
कार्यनिष्पत्तिहेतुत्वात्कारणं प्रोच्यते बुधै:।।
कार्यवद्व्यक्तताभावादव्यक्तमिति गीयते।
एषा माहेश्वरी शक्तिर्न स्वतन्त्रा परात्मवत्।।''
(सूतसंहिता १ शिव. ८.१८ - २१)

''अन्यथा भानमें हेतु होनेसे माया **माया** कही गयी है। आत्मतत्त्वका तिरस्कार करनेसे अर्थात् आत्माको आच्छादित - सी करनेसे मनीषियोंके द्वारा यह **तमस्** कही गयी है। विद्याके द्वारा नष्ट होनेसे यह अविद्या कही गयी है। भ्रमित अर्थात् मोहित करनेके कारण **मोह** कही गयी है। सद्विलक्षण होनेसे मनीषियोंके द्वारा यह **असत्** कही गयी है। कार्यसदृश व्यक्त न होनेसे यह **अव्यक्त** कही जाती है। यह महेश्वरकी शक्ति महेश्वरतुल्य स्वतन्त्र नहीं है। यही कारण है कि यह शक्ति कही जाती है।।''

(६) आत्मा - ''यश्च विश्वं सृजति विश्वं बिभर्ति विश्वं भुङ्क्ते स आत्मा'' (शाण्डिल्योपषित् २) - ''जो विश्वका सर्जन, पालन और स्वात्मतादात्म्यापादनरूप संहारात्मक भोग करता है, वह **आत्मा** है।''

''यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चाति विषयानिह।
यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्त्यते।।''
(लिङ्गपुराण १.७०.९६)

''क्योंकि साक्षादपरोक्ष यह सबको व्याप्त करता है, ग्रहण करता है और इस लोकमें विषयोंको भोगता है तथा इसका सर्वदा सद्भाव है ; अत: यह आत्मा कहा जाता है।।''

(७) अन्तर्यामी - ''कूटस्थोपहितभेदानां स्वरूपलाभहेतुर्भूत्वा मणिगणे सूत्रमिव सर्वक्षेत्रेष्वनुस्यूतत्वेन यदा काश्यते आत्मा

तदान्तर्यामीत्युच्यते।।'' **(सर्वसारोपनिषत्)** - ''कूटस्थसे अधिष्ठित सर्वशरीरगत सर्वभेदोंमें मणिगणोंमें सूत्रतुल्य अनुस्यूत सर्वावभासक स्वतःसिद्ध उद्भासित आत्मा अन्तर्यामी कहा जाता है।।''

(८)अनन्तः- ''मृद्विकारेषु मृदिव स्वर्णविकारेषु स्वर्णमिव तन्तुविकारेषु तन्तुरिवरव्यक्तादिसृष्टिप्रपञ्चेषु पूर्णं व्यापकं चैतन्यमनन्तमित्युच्यते।।'' **(सर्वसारोपनिषत्)** - '' मृत्तिकाके कार्योंमें मिट्टीके तुल्य, सुवर्णकार्योंमें सुवर्णके तुल्य, तन्तुकार्योंमें तन्तुके तुल्य अव्यक्तादि सृष्टिप्रपञ्चमें पूर्ण व्यापक चैतन्य अनन्त कहा जाता है।।''

''यः सर्वव्यापी सोऽनन्तः।'' .....''यस्मात्तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चास्यान्तो नोपलभ्यते तस्मादुच्यतेऽनन्तः।'' **(अथर्वशिरउपनिषत् ३,४)** - ''जो सर्वव्यापक है, वह अनन्त है। ...क्योंकि ऊर्ध्व, अधः, प्राची, प्रतीची तथा आग्नेयादि दशों दिशाओंमें आत्मदेवका अन्त नहीं सिद्ध होता, अतः यह अनन्त कहा जाता है।। ''

(९)परमात्मा - ''सत्यं ज्ञानमनन्तमानन्दं ब्रह्म देशकालवस्तुनिमित्तेष्वव्यभिचारी तत्पदार्थः परमात्मेत्युच्यते।।'' **(सर्वसारोपनिषत्)** - ''देश - काल -वस्तुरूप निमित्तोंसे अव्यभिचरित सत्य ज्ञान अनन्त आनन्दस्वरूप तत्पदार्थ ब्रह्म परमात्मा कहा जाता है।।''

(१०) साक्षी - ''ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामाविर्भावतिरोभावज्ञाता स्वयमाविर्भावतिरोभावरहितः स्वयञ्ज्योतिः साक्षीत्युच्यते।।''– '' ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयोंके आविर्भाव और तिरोभावका ज्ञाता तथा स्वयं आविर्भाव - तिरोभावरहित स्वयञ्ज्योति साक्षी कहा जाता है।। ''

(११)जगत् - **''अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम्।। आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्। ''** **(सरस्वतीरहस्योपनिषत् २३, २३.१/२)** - ''अस्ति, भाति, प्रिय तथा नाम और रूप - इन पाँच अंशोंमें अस्ति, भाति, प्रियरूप अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म है और नामरूपात्मक जगत् है।।''

''यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात्।।

तद्वत्सत्यमविज्ञाय जगत्पश्यति मूढधी:।'' (नादबिन्दूपनिषत् २६.२६.१/२) - ''जैसे रज्जुके अविज्ञानसे भ्रमवश सर्पग्रहण सम्भव है, वैसे ही सत्स्वरूप ब्रह्मके अविज्ञानसे मूढबुद्धि जगत् दर्शन करता है।।''

(१२)जीव: -''विविधोपायैरपि अविद्याकार्याण्यन्त:-करणान्यतीत्य कालाननु तानि जायन्ते। ब्रह्मचैतन्यं तेषु प्रतिबिम्बितं भवति। प्रतिबिम्बा एव जीवा इति कथ्यन्ते। अन्त:करणोपाधिका: सर्वे जीवा इत्येवं वदन्ति। महाभूतोत्थसूक्ष्माङ्गोपाधिका: सर्वे जीवा इत्येके वदन्ति। बुद्धिप्रतिबिम्बचैतन्यं जीवा इत्यपरे मन्यन्ते। एतेषामुपाधीनामत्यन्तभेदो न विद्यते।।''

(त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ४.१)

''अन्त:करण अविद्याका कार्य है। उसमें समासक्त अकृतार्थ प्राणी कालक्रमसे विविध शरीरोंको प्राप्त करते रहते हैं। उनके अन्त:करणोंमें ब्रह्मचैतन्य प्रतिबिम्बित होता है। प्रतिबिम्ब ही जीव कहलाते हैं। कुछ ऐसा भी मानते हैं कि अन्त:करणोपाधिक चैतन्य जीव हैं। अन्य विचारकोंका यह कथन है कि महाभूतसमुद्भूत सूक्ष्मशरीररूप उपाधिसे युक्त चेतन जीव हैं। बुद्धिमें प्रतिबिम्बित चैतन्य ही जीव है, ऐसा अन्योंका मत है। इन जीवोंमें औपाधिक भेद ही है, न कि अत्यन्त - वास्तविक।।''

''एकं रूपं ब्रह्मणो जीवरूपं
भोग्यं विश्वं ब्रह्मणस्त्वन्यरूपम्।
अन्यद्रूपं ब्रह्मण: सर्वशास्त्रं
प्रज्ञामात्रं शुद्धरूपं परस्य।।''

(सूतसंहिता ४ यज्ञवैभवखण्ड ११.५८)

''कर्त्ता - भोक्ता आदि विविधरूपोंमें मलिनसत्त्वप्रधान मायावच्छिन्न जो ब्रह्मका रूप है, वह जीवसंज्ञा प्राप्त करता है। जीव ही भोक्ता कहा गया है। तम:प्रधानमायावच्छिन्न ब्रह्म भोग्य जगत् होता है। विशुद्ध सत्त्वप्रधान मायोपाधिक ब्रह्म ईश्वरसंज्ञक अन्यरूप धारण करता है। वही भोगप्रदायक माना गया है। मायातीत परब्रह्म सर्व वेदान्तप्रतिपाद्य है। उसका जो चिदेकास शुद्धरूप है, वह

जीव (भोक्ता), जगत् (भोग्य) और जगदीश्वर (प्रेरक)- इन तीनों प्रकारके सोपाधिकरूपोंसे अन्य अर्थात् विलक्षण ही है। '**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्**' (**श्वेताश्वतरोपनिषत् १.१२**) की उक्तिसे स्वयं श्रुतिने इस तथ्यका प्रतिपादन किया है।।"

"मनः सृजति वै देहान् गुणान् कर्माणि चात्मनः।
तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः।।
स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते।
ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः।
रजःसत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति।।
न तत्रात्मा स्वयञ्ज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः।
आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः।।
(श्रीमद्भागवत १२. ५. ६ - ८)

"माया जीवके संसृतिचक्रका कारण है। मन उसीके द्वारा सृष्ट है। मन आत्माके लिए शरीर, विषय और कर्मोंकी कल्पना कर लेता है।। जबतक तेल, तैलपात्र, बत्ती और अग्निका संयोग रहता है, तभीतक दीपका दीपत्व है। तद्वत् जबतक आत्माका कर्म, मन, शरीर और इनमें चैतन्याध्यासके साथ सम्बन्ध रहता है, तभीतक उसे भवचक्रमें भटकना पड़ता है और रजः - सत्त्व तथा तमोगुणके संसर्गसे देहकी उत्पत्ति, स्थिति, संहृतिमें तादात्म्याध्यासके कारण जन्म - स्थिति - नाशका मुख देखना पड़ता है। परन्तु जैसे दीपकके विलुप्त हो जानेसे तत्त्वभूत तेजका विनाश नहीं होता, वैसे ही संसारका नाश होनेपर भी स्वप्रकाश आत्माका नाश नहीं होता। क्योंकि वह कार्य और कारण - व्यक्त तथा अव्यक्तसे सर्वथा अतीत है। वह भूतचतुष्टयके आधारभूत आकाशके तुल्य सर्वाधार, नित्य, निश्चल तथा अनन्त है। वस्तुतः आत्माके तुल्य आत्मा ही है।।"

"मानसोऽग्निः शरीरेषु जीव इत्यभिधीयते।"(महा० शान्तिपर्व १८७.३१)-"सर्व शरीरोंमें मनोयोगसे स्फुरित स्वप्रकाश चिदग्नि **जीव** कहा जाता है।"

"इन्द्रियैर्बध्यते जीव आत्मा चैव न बध्यते। ममत्वेन भवेज्जीवो निर्ममत्वेन केवलः।।" (योगचूडामण्युपनिषत् ८४) के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि इन्द्रियोंमें समासक्त चिदाभास **जीव** है और इन्द्रियोंसे असङ्ग चित् **आत्मा** है। अनात्मवस्तुओंमें ममत्व ही चेतनकी जीवरूपतामें हेतु है। अनात्मवस्तुओंमें निर्मम चिद्धातु केवल आत्मा है।

"देहाभिमानेन जीवो भवति । गृहाभिमानेन गृहस्थ इव शरीरे जीवः सञ्चरति।...शरीराभिमानेन जीवत्वम्। जीवत्वं घटाकाश-महाकाशवद्व्यवधानेऽस्ति।....शरीराभिमानं त्यजेन्न शरीराभिमानी भवति। स एव ब्रह्मेत्युच्यते।" (नारदपरिव्राजकोपनिषत् ६)

"देहाभिमानसे जीव होता है। गृहाभिमानसे गृहस्थके तुल्य शरीरमें जीव समासक्त होकर व्यवहारमें रचा - पचा रहता है। अतः शरीराभिमानसे जीवत्व सिद्ध है। शरीराभिमानका त्याग करते ही घट - परिच्छेदरहित घटाकाशकी महाकाशरूपताके तुल्य जीवकी निरावरण ब्रह्मरूपता स्फुरित होती है, जीव ब्रह्म कहा जाता है।।"

"अहङ्काराभिमानेन जीवः स्याद्धि सदाशिवः।" (त्रिशिखिब्रह्मणोपनिषत् १६)

"जीव वस्तुतः सदाशिव ही है। सदाशिव अहङ्काराभिमानसे ही जीव होता है।"

"यस्मात्सर्वमाप्नोति सर्वमादत्ते सर्वमत्ति च तस्मादुच्यते आत्मेति" (शाण्डिल्योपनिषत् ३.१) - "सर्वव्यापक, सर्वग्राहक और सर्व संहारक होनेसे चिद्धातु आत्मा मान्य है।"

माया, अविद्या, अहङ्कृति, कामना और कर्मके योगसे शरीर, शोक, मोह, काम, क्रोध, सुख, दुःख, जन्म, मृत्यु आदि जीवधर्मोंकी प्राप्ति है, स्वतः जीव शिवस्वरूप ही है। -

"शुद्धमीश्वरचैतन्यं जीवचैतन्यमेव च।
प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं च फलं तथा।।
इति सप्तविधं प्रोक्तं भिद्यते व्यवहारतः।

श्लोक : २० परिभाषाप्रकाश

मायोपाधिविनिर्मुक्तं शुद्धमित्यभिधीयते।।
मायासम्बन्धतश्चेशो जीवोऽविद्यावशस्तथा।
अन्तःकरणसम्बन्धात् प्रमातेत्यभिधीयते।।
तथा तद्वृत्तिसम्बन्धात्प्रमाणमिति कथ्यते।
अज्ञातमपि चैतन्यं प्रमेयमिति कथ्यते।।
तथा ज्ञातं च चैतन्यं फलमित्यभिधीयते।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं स्वात्मानं भावयेत्सुधीः।।
एवं यो वेद तत्त्वेन ब्रह्मभूयाय कल्पते।
सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारं वच्मि यथार्थतः।।
स्वयं मृत्वा स्वयं भूत्वा स्वयमेवावशिष्यते।।"

(कठरुद्रोपनिषत् ३७-४३)

"चिद्धातु एक ही है। परन्तु शुद्धचैतन्य, ईश्वरचैतन्य, जीवचैतन्य, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय और फल - नामक सात प्रकार उसके कहे गये हैं। इस प्रकारका भेद व्यावहारिकदृष्टिसे ही प्राप्त है। मायारूप उपाधिसे विनिर्मुक्त चित् **शुद्ध** कहा जाता है। वही मायासम्बन्धसे **ईश** कहा जाता है। अविद्याके वशीभूत चित् **जीव** कहा जाता है। अन्तःकरणके सम्बन्धसे **प्रमाता** कहा जाता है। अन्तःकरणवृत्तिके सम्बन्धसे **प्रमाणचैतन्य** कहा जाता है। अज्ञातचैतन्य **प्रमेय** कहा जाता है। ज्ञात चैतन्य **फल** कहा जाता है। बुद्धिमान् स्वयंकी सर्वोपाधिविनिर्मुक्त शुद्ध आत्मरूपसे भावना करे। इस प्रकार जो तत्त्वतः तत्त्वको जानता है, वह शुद्ध आत्मस्वरूप ब्रह्म होनेमें समर्थ होता है। सर्व वेदान्तसिद्धान्तसार यथार्थरूपसे कहता हूँ - परिच्छिन्न सोपाधिकरूपसे मरकर अर्थात् पिण्ड छुड़ाकर, निज निरुपाधिक वास्तवरूपको प्राप्तकर स्वयं शुद्ध ब्रह्मरूप ही अवशिष्ट रहता है।।"

"भ्रमः पञ्चविधो भाति तदेवेह समुच्यते।
जीवेश्वरौ भिन्नरूपाविति प्राथमिको भ्रमः।।
आत्मनिष्ठं कर्तृगुणं वास्तवं वा द्वितीयकः।
शरीरत्रयसंयुक्तजीवः सङ्गी तृतीयकः।।

जगत्कारणरूपस्य विकारित्वं चतुर्थकः।
कारणाद्भिन्न जगतः सत्यत्वं पञ्चमो भ्रमः।
पञ्चभ्रमनिवृत्तिश्च तदा स्फुरति चेतसि।।"
बिम्बप्रतिबिम्बदर्शनेन भेदभ्रमो निवृत्तः।
स्फटिकलोहितदर्शनेन पारमार्थिककर्तृत्वभ्रमो निवृत्तः।
घटमठाकाशदर्शनेन सङ्गीतिभ्रमो निवृत्तः।।
रज्जुसर्पदर्शनेन कारणाद्भिन्नजगतः सत्यत्वभ्रमो निवृत्तः।
कनकरुचकदर्शनेन विकारित्वभ्रमो निवृत्तः।।"
(अन्नपूर्णोपनिषत् १. १३ - १६)

''भ्रम पाँच प्रकारसे भासित होता है। उसीका यहाँ सम्यक् कथन किया जाता है। जीव और ईश्वर भिन्न रूप हैं, यह प्रथम भ्रम है। निःसन्देह आत्मनिष्ठ कर्तृत्वरूप गुण वास्तव है, यह द्वितीय भ्रम है। स्थूल, सूक्ष्म और कारणसंज्ञक शरीरत्रयसे संयुक्त जीव सङ्गी है, यह तृतीय भ्रम है। जगत्कारण ब्रह्म विकारी है, यह चतुर्थ भ्रम है। ब्रह्मरूप अपने कारणसे कार्यात्मक जगत् पृथक् सत्य है, यह पञ्चम भ्रम है। बिम्ब और प्रतिबिम्बके दर्शनसे जीव और ईश्वरके भेदका विभ्रम निवृत्त होता है। स्फटिकमें औपाधिक लालिमाके दर्शनसे आत्मनिष्ठ कर्तृत्वके सत्यत्वका विभ्रम दूर होता है। घट और मठादिरूप उपाधिके योग और भेदसे आकाशकी अलिप्तता और अखण्डताके अनुशीलनसे आत्माके सङ्गी और भिन्न होनेका विभ्रम विगलित होता है। सुवर्णसे निर्मित आभूषणकी दशामें भी सुवर्णकी निर्विकारताके परिज्ञानसे जगत्कारण ब्रह्मके विकारित्वका विभ्रम दूर होता है। रज्जुसर्पके प्रामाणिक निरीक्षण, परीक्षण और अनुदर्शनसे कारणस्वरूप ब्रह्मसे भिन्न जगत् के सत्यत्वका विभ्रम विनिवृत्त होता है।।"

''एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम्।
एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते।।
अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति।
हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति।।
यथा तृणजलूकेयं नापयात्यपयाति च।

न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि प्राग्देहाभिमतिं जनः।।
यावदन्यं न विन्देत व्यवधानेन कर्मणाम्।
मन एव मनुष्येन्द्र भूतानां भवभावनम्।।
यदाक्षैश्चरितान् ध्यायन् कर्माण्याचिनुतेऽसकृत्।
सति कर्मण्यविद्यायां बन्धः कर्मण्यनात्मनः।।"
(श्रीमद्भागवत ४.२९.७४ - ७८)

"तदेतत् षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत्।
धत्तेऽनुसंसृतिं पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम्।।"
"एष प्रकृतिसङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः।
आसीत् स एव नचिरादीशसङ्गाद्विलीयते।।"
(श्रीमद्भागवत ६.१.५१, ५५)

" इस प्रकार, पञ्चतन्मात्राओं (अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों) से विनिर्मित तथा पञ्चतन्मात्राओं सहित पञ्च ज्ञानेन्द्रियों और पञ्च कर्मेन्द्रियों एवम् एक मनसे विकसित त्रिगुणमय षोडश कलात्मक लिङ्ग शरीर (महाभारत शान्तिपर्व २१०. २९,३३) है। यही चेतनशक्तिसे सम्पन्न होकर जीव कहा जाता है।। इसीके कारण जीव विविध स्थावर - जङ्गम देहोंको ग्रहण करता और त्यागता है। इसीसे उसे हर्ष, शोक, भय, दुःख तथा सुखादिका अनुभव भी होता है।। तृणजलूकाके तुल्य जीव स्वप्नवत् वर्तमान शरीरमें रहते हुए ही प्रायणकाल (देहारम्भक नवीन प्रारब्धके उदय तथा पूर्व प्रारब्धके क्षयकाल)के अवसरपर अन्तश्चिन्तित वासनात्मक शरीरमें सर्वतोभावेन समासक्त होकर पूर्व देहका त्यागकर लोक - लोकान्तरोंमें भ्रमण करता है। राजन्, यह मनःप्रधान लिङ्गशरीर ही जीवकी संसृतिमें हेतु है।। इन्द्रियजन्य विषय - भोगोंमें समासक्त जीव भोगोपलब्धिके निमित्त कर्मकर जन्म - मृत्युकी अजस्रपरम्पराका निर्वाह कर बन्धको प्राप्त होता है।। "

"**जीवका यह सोलह कलारूप तथा** त्रिगुणात्मक लिङ्ग शरीर अनादि है। यही हर्ष, शोक, भय, दुःख तथा सुखादिका अनुभव करानेवाला संसृतिचक्रमें हेतु है।। "

श्लोक : २० परिभाषाप्रकाश

जिसके जीवनमें आत्मानुरूप एकरस अहमितिरूपा सत्ता, चित्ता और प्रियता प्रतिष्ठित न हो, जो अनात्मवस्तुओंके अनुरूप अहमर्थ तथा हर्ष - विषाद, ज्ञान - अज्ञानके विवश हो अर्थात् जो अभावग्रस्त होकर अभावकी अनुभूतिसे त्रस्त हो, वह **जीव** है। -

"हरष विषाद ग्यान अग्याना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना।।"
(रामचरितमानस १.११५.७)

उक्तरीतिसे दृश्यवर्गका मिथ्यात्व और उसकी ब्रह्मरूपता दोनों ही सिद्ध है। जगत् को ब्रह्म न समझना अविद्या है और जगत् को ब्रह्मरूप समझना अविद्यानाश है। -

"एतावदेवाविद्यात्वं नेदं ब्रह्मेति निश्चयः।
एष एव क्षयस्तस्या ब्रह्मेदमिति निश्चयः।।"
(अन्नपूर्णोपनिषत् ५.१९)

उक्त रीतिसे जीवकी विभु सच्चिदानन्दस्वरूपता अर्थात् ब्रह्मरूपता सिद्ध है और अणु, मध्यम या महत्परिमाणपरिमितता भी असिद्ध है। "**अङ्गुठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा**" **(श्वेताश्वतरोपनिषत् ३.१३)** - "अङ्गुष्ठमात्र पुरुष अन्तरात्मा है", "**अणोरणीयान्महतो महीयान्**" **(श्वेता. ३.२०)** - "अणुसे भी अणीयान् महान् से भी महीयान्"(सूक्ष्मता तथा विभुताकी पराकाष्ठा, "**अङ्गुष्ठमात्रः**"**(श्वेता.५.८)** - "अङ्गुष्ठमात्र", "**आराग्रमात्रः**" **(श्वेता.५.८)**- "आराग्रमात्र", "**वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते।।**" **(श्वेता. ५.९)** - "विवेकबुद्धिसे केशके अग्रभागके सौवें भागके सौवें भाग किये जानेपर प्राप्त सम्भागके सदृश देहेन्द्रियादिका उज्जीवक जीव समझने योग्य है और वह अपरिच्छिन्न चिदात्मरूप होनेमें समर्थ है", "**एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः**" **(मुण्डक ३.१.९)** - "इस आत्माको प्रज्ञायोगसे अणु समझना चाहिये", "**ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा केशः सहस्रधा भिन्नस्तावताणिम्ना तिष्ठति**" **(बृहदारण्यक ४.३.२०)**, "**अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न**

कस्यचन वेद, हितानाम नाड्यो द्वासप्तति: सहस्राणि हृदयात्पुरीतत-मभिप्रतिष्ठन्ते ताभि: प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते" ......**''गत्वा शयीतैवमेवैष एतच्छेते" (बृहदारण्यक २.१.१९)** यह वालाग्रसहस्रभागतुल्य सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपसे हितानामकी नाड़ीमें रहता है और पुरीतत्में शयन करता है।", **''स एष इह प्रविष्ट आनखग्रेभ्य:" (बृहदारण्यक १.४.७)** - ''वह यह इस शरीरमें नखाग्रपर्यन्त प्रविष्ट है" , **''अणोरणीयानहमेव तद्वन्महानहं विश्वमहं विचित्रम्" (कैवल्योपनिषत् २०), ''आकाशवत्सूक्ष्मशरीर आत्मा" (पैङ्गलोपनिषत् ४.१२)** - ''अणुसे अणीयान् मैं ही हूँ, उसी प्रकार महान् - से - महान् भी मैं ही हूँ, इस सकलविरुद्धधर्माश्रयताके कारण ही मैं विचित्र हूँ" - आदि वचनोंके अनुशीलनसे आत्मा अणु, मध्यम और विभु त्रिविधपरिमाणपरिमित सिद्ध होता है। अणुका मध्यमपरिमाणपरिमित या परममहत्परिमाणपरिमित होना असम्भव है। इसी प्रकार, मध्यमका अणुपरिमाणपरिमित या परममहत्परिमाणपरिमित होना असम्भव है। पारिशेष्यन्यायसे परममहत्परिमाणपरिमित अर्थात् विभुका उपाधियोगसे मध्यमपरिमाणपरिमित और अणुपरिमाणपरिमित होना सम्भव है। आत्माकी एकरूपता और आकाशरूपताका प्रतिपादन भी तभी सम्भव है, जब वह स्वरूपत: विभु हो। -

> **''एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थित:।**
> **एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।।**
> **घटसंवृतमाकाशं नीयमाने घटे यथा।**
> **घटो नीयेत नाकाशं तथा जीवो नभोपम:।।"**

(त्रिपुरातापिन्युपनिषत् ५.१२,१३;ब्रह्मबिन्दूपनिषत् १२,१३)

''वस्तुत: एक ही भूतात्मा प्रत्येक प्राणीमें सुप्रतिष्ठित है। उसका एक और बहुत नभचन्द्र तथा जलचन्द्रवत् परिलक्षित होना युक्त ही है। घटसे समावृत घटाकाश घटके लाने ले जानेपर जिस प्रकार न तो लाया जा सकता है और न ले जाया जा सकता है, उसी प्रकार देहेन्द्रियादिसे समावृत कूटस्थरूप जीव देहेन्द्रियादिके गमागमसे गमागमको प्राप्त नहीं होता।।"

ध्यान रहे, आत्माके नित्यत्व प्रतिपादक वचन उसे मध्यमपरिमाणपरिमित नहीं सिद्ध होने देते। "**नित्यो नित्यानाम्** " (**कठोपनिषत् २.२.१३**), "**आकाशत्सर्वगतश्च नित्यः**" (**पञ्चदशी - श्रीरामकृष्णटीका ३.३५,६.८६ में समुद्धृत श्रुति**), "**नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्**" (**मुण्डकोपनिषत् १.१.६**) आदि वचन आत्माकी नित्यता सिद्ध करते हैं। आत्माके एकत्वप्रतिपादक वचन उसे अणुपरिमाणपरिमित सिद्ध नहीं होने देते। "**अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।**" (**कठ २.२.९**), "**सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चक्षुषैर्बाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।।**" (**कठोपनिषत् २.२.११**), "**एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।।**" (**कठ २.२.१२**) आदि श्रुतियाँ आत्माके एकत्वका प्रतिपादन करती हैं। इसके अतिरिक्त अणुका नित्यत्व युक्तिविधुर भी है। विभु परमात्मादिका व्याप्य अणु - परिमाणपरिमित जीव परमात्मादिकी अपेक्षा स्थूल अवश्य है। स्थूल होनेसे सावयव अवश्य है। सावयव होनेसे कार्य अवश्य है। ऐसी स्थितिमें मनोयोगसे आत्माका अणुत्व (सूक्ष्मत्व) और मध्यमत्व मान्य है। तद्गुणसारत्वन्यायसे अर्थात् मन, बुद्धिके अनुगुण आत्ममान्यताके कारण आत्माका उन्मानत्व (सूक्ष्मत्व), मध्यमत्व और नाडीसञ्चारित्वादिका सामञ्जस्य साध लेना चाहिए। "**अस्थूलमनण्वह्रस्वम्**" (**बृहदारण्यक ३.८.८**) कहकर श्रुत्यन्तरने आत्माके स्थूलत्व, अणुत्व और ह्रस्वत्वका निराकरण भी किया है। "**बृहत्वान्नित्यम्** " (**नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत् ९**) की उक्तिसे श्रुतिने विभुत्वके कारण नित्यताका निरूपण भी किया है। "**नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः। एकः सम्भिद्यते भ्रान्त्या मायया न स्वरूपतः।।**" (**श्रीजाबालदर्शनोपनिषत् १०.३**) की उक्तिसे श्रुतिने आत्माकी स्वभावसिद्ध नित्यता, सर्वगतता, एकरूपता, कूटस्थरूपता और निर्दोषताका तथा मायासे भिन्नता और बहुरूपताका मुक्तस्वरसे प्रतिपादन भी किया है।

आत्मा वस्तुतः विभु अर्थात् परममहत्परिमाणपरिमित और एक है। उसकी विभुताको स्वीकार करते हुए उसकी अनेकताको मान्यता देना अनुचित है। प्रधानादिकी परार्थता पुरुषकी सत्तामूलक है, न कि पुरुषभेदमूलक। इच्छा - द्वेष, सुख - दुःख, पुण्य - पाप, बन्ध -मोक्षादि अन्तःकरणके धर्म हैं, न कि आत्मधर्म। ऐसी स्थितिमें जैसे घटगत रजोधूमादिसे आकाशके धूसर और धूमिल होनेकी सम्भावना नहीं; वैसे ही देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणगत अविद्या, काम, कर्मसे आत्माके विकृत और संस्कृत होनेकी सम्भावना नहीं। उक्त रीतिसे आत्मा जहाँ विभु और एक है, वहाँ स्वप्रकाश भी। जगदान्ध्यप्रसङ्गके वारणके लिए आत्माको स्वप्रकाश मानना आवश्यक है।

"ज्ञानं ब्रह्म" (तैत्तिरीयोपनिषत् २.१), "प्रज्ञानं ब्रह्म" (ऐतरेयोपनिषत् ३.५.३), "भारूपः सत्यसङ्कल्प आकाश आत्मा " (छान्दोग्य ३.१४.२), "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" (बृहदारण्यक ३.९.२८), "स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपित्यत्रायं पुरुषः स्वयञ्ज्योतिर्भवति" (बृहदारण्यक ४.३.९), "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (श्वेताश्वतर ६.१४), "न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् " (बृहदारण्यक ४.३.२३), "न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्" (बृहदारण्यक ४.३.३०), "सच्चिदानन्दमात्रः" (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ७), "चिद्धीदं सर्वम्" (नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ७) आदि वचनोंके अनुशीलनसे आत्मा स्वप्रकाश परब्रह्म सिद्ध होता है।

"स्वेन भासा", "तस्य भासा", "द्रष्टुर्दृष्टेः", "विज्ञातुर्विज्ञातेः" - "अपने प्रकाशसे", "उसके प्रकाशसे ", "द्रष्टाकी दृष्टिका", "विज्ञाताकी विज्ञातिका" - आदि स्थलोंमें "**राहोः शिरः**" - "राहुका शिर" के तुल्य अभेदमें भेदका उपचारमात्र है।

ज्ञानस्वरूप न मानकर आत्माको ज्ञान गुणवाला माननेपर उसे अचित् माननेकी बाध्यता होगी। ज्ञाननामक गुणकी स्वप्रकाशता और क्षणिकता स्वीकार करनेपर क्षणिकविज्ञानवादके सदृश उसकी आत्मरूपता सिद्ध होगी तथा

आत्मरूप द्रव्यकी अस्वप्रकाशताके कारण अनात्मरूपता सिद्ध होगी। दोनोंकी अस्वप्रकाशता स्वीकार करनेपर जगदान्ध्यप्रसङ्गकी प्राप्ति होगी।

नित्य अपरिणामी आत्माको ज्ञानस्वरूप मान लेनेपर भी व्यवहार - साधक बोधको पृथक् से स्वीकार करनेकी बाध्यताके कारण वैशेषिकादिसम्मत आत्मा ज्ञानगुणके योगसे चेतन और स्वतः अचेतन है।

आत्माको ज्ञानस्वरूप और ज्ञानगुण माननेपर तथा ज्ञानस्वरूपको स्वप्रकाश चित् तथा ज्ञानगुणको अस्वप्रकाश अचित् स्वीकार करनेपर आत्माको चिज्जड उभयात्मक माननेकी बाध्यता होगी। ज्ञानाश्रय आत्माको ज्ञानस्वरूप नित्य ज्ञाता और "**न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्**" आदि वचनोंके अनुसार उसके समाश्रित ज्ञानको नित्यस्वप्रकाश माननेपर दोनोंकी आत्मरूपता सिद्ध होगी।

वैष्णवप्रस्थानमें आत्मा अणुपरिमाणपरिमित है। मुक्तिदशामें ज्ञाननामक गुणकी विभुताके कारण आत्मामें अनन्तता चरितार्थ है। परन्तु आत्माको मणितुल्य और ज्ञानगुणको चतुर्दिक् विकीर्ण मणिप्रभातुल्य माननेपर सावयव माननेकी बाध्यता है। विद्वन्मण्डनादिके अनुसार शुद्धाद्वैतवादियोंके मतमें सकल विरुद्ध धर्माश्रय सर्वेश्वरका अंश होनेसे जीव भी सकल विरुद्ध धर्माश्रय है। वह बद्धदशामें अणुपरिमाणपरिमित और मुक्तिदशामें परममहत्परिमाणपरिमित अर्थात् विभु (अनन्त) हो जाता है। अथवा जीवका अणुत्व औपाधिक और विभुत्व स्वाभाविक है। अविद्याध्वंसके अनन्तर स्वाभाविक विभुत्वकी स्फूर्ति मान्य है।

ध्यान रहे, भक्तिमार्गका भूषण दैन्य है। दैन्यकी स्फूर्तिके लिए स्वयंको अणु (लघु, हीन) और प्रभुको विभु (अनन्त,महान्) मानना भूषण है। अतएव " **तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी** " (**विनयपत्रिका ७९**)की शैलीमें " **तू अनन्त अणु हौं, तू स्वामि हौं सिपाही**" की भावना भी सही है।

अतः "**राहोः शिरः**" -"राहुके शिर" के सदृश अभेदमें भेदोपचार मानना युक्त है। अथवा "**आकाशस्य सत्ता**" -"आकाशकी सत्ता" के तुल्य धर्म और धर्मीके व्यत्यास (धर्मीकी धर्मरूपसे और धर्मकी धर्मीरूपसे प्रतीति) मानना उचित होगा। ऐसी स्थितिमें "**सत् का आकाश** " के तुल्य

"**विज्ञानका विज्ञाता**", "**दृष्टिका द्रष्टा** " स्वीकार कर सम्बद्ध वचनोंकी सङ्गति साधना भी सम्भव है। आत्माको विभु स्वप्रकाश परमार्थभूत ज्ञान और साभासबुद्धिवृत्तिको व्यवहारसाधक ज्ञान स्वीकार करनेपर सम्बद्ध वचनोंका सामञ्जस्य सुगमतापूर्वक सध जाता है। यथा -

"**ज्ञेयं सर्वप्रतीतं च तज्ज्ञानं मन उच्यते।**
ज्ञानं ज्ञेयं समं नष्टं नान्यः पन्था द्वितीयकः।।
ज्ञेयवस्तुपरित्यागाद्विलयं याति मानसम्।
मानसे विलयं याते कैवल्यमवशिष्यते।।
द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं मुनीश्वर।
योगस्तवृत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्।।
तस्मिन्निरोधिते नूनमुपशान्तं मनो भवेत्।
मनःस्पन्दोपशान्त्याऽयं संसारः प्रविलीयते।।
सूर्यालोकपरिस्पन्दशान्तौ व्यवहृतिर्यथा।"
(शाण्डिल्योपनिषत् १.२२ - २५.१/२)

"सर्व दृश्य ज्ञेय है। उसका ज्ञान मन है। ज्ञानसहित ज्ञेयके नाशके अतिरिक्त कल्याणका दूसरा मार्ग नहीं है। उसका प्रकार यह है कि ज्ञेय वस्तुके परित्यागसे ज्ञानरूप मन विलीन होता है। मनके विलीन होते ही ज्ञातृत्वविहीन आत्मा अखण्डविज्ञानस्वरूप कैवल्यमात्र होकर अवशिष्ट रहता है।।"

"हे मुनीश्वर! योग तथा ज्ञान - चित्तनाशके दो क्रम हैं। चित्तवृत्तिनिरोध **योग** है और सम्यक् अवेक्षण (दर्शन) **ज्ञान** है। निस्सन्देह चित्तवृत्तिके निरुद्ध होनेपर मन उपशान्त हो जाता है। मनःस्पन्दनके उपशान्त होते ही यह संसार उसी प्रकार प्रविलीन हो जाता है, जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशके उपशान्त होनेपर व्यवहार शान्त हो जाता है।"

इस सन्दर्भमें यह तथ्य ध्यान रखनेकी आवश्यकता है कि -

"**अङ्गुष्ठमात्रहृन्निष्ठः स्वप्रकाशः स सूर्यवत्।**
अहङ्कारोपाधिकः सन् सङ्कल्पान्कुरुते बहून्।।
बुद्धिवृत्त्यात्मचैतन्यसंयोगादेष चेतनः।

स सङ्कोचविकाशाभ्यां तैस्तैर्देहैः समो भवति।।"

(अनुभूतिप्रकाश १२. ८८,८९)

"आत्मा हृदयके परिमाणके अनुरूप मनुष्य शरीरमें अङ्गुष्ठमात्र कहा जाता है। वह सूर्यवत् स्वप्रकाश है। अहङ्काररूप उपाधिसे युक्त होकर वह विविध सङ्कल्पोंको किया करता है। चेतन और अचेतनका भेद चित्कर्तृक नहीं है। चिद्रूप आत्मा सर्वत्र सम है। साधिष्ठान सबुद्धि चिदाभासकी विद्यमानतासे चेतनता और अविद्यमानतासे अचेतनता मान्य है। संकोच और विकाशशील देहपरिमाणके अनुरूप ही चिदाभासकी अभिव्यक्ति मान्य है।।"
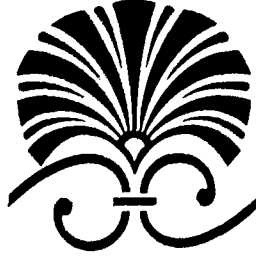
प्रबोधप्रकाश

**''भाववृत्त्या हि भावत्वं शून्यवृत्त्या हि शून्यता।
ब्रह्मवृत्त्या हि पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत्।।''
(तेजोबिन्दूपनिषत् १.४२)**

''भाववृत्तिसे भावत्वकी, शून्यवृत्तिसे शून्यत्वकी और ब्रह्मवृत्तिसे पूर्णत्वकी सिद्धि होती है। अतः पूर्णत्वका ही अभ्यास करे।।''

''**जीवेश्वरौ मायिकौ विज्ञाय सर्वविशेषं नेति नेतीति विहाय यदवशिष्यते तदद्वयं ब्रह्म**'' (**अद्वयतारकोपनिषत् १**)- ''विशुद्ध सत्त्वात्मिका माया और उसके मलिनसत्त्वगुणप्रधाना प्रकृतिरूप अवान्तरभेद अविद्याके कारण जीवेश्वर मायिक हैं। जीवेश्वरको मायिक जानकर सर्व विशेषोंका नेति -नेति - इस बुद्धिसे त्याग कर देनेपर जो अवशिष्ट रहता है, वह अद्वय ब्रह्म है।''

इस प्रकार श्रुति स्वयं ही शुद्धाद्वैतका श्रौतस्वरूप निर्धारित करती है। निरुपाधिक चित् सर्वथा शुद्ध ही है। उसके ईश्वर, जीव, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय और फल - संज्ञक अवान्तर औपाधिक छह प्रभेद क्रमशः माया, अविद्या, अन्तःकरण, अन्तःकरणवृत्ति, अज्ञान तथा ज्ञानके कारण हैं। अवान्तरभेदोंके सहित मायाका मिथ्यात्व सुनिश्चित है। शक्ति तथा उसके अवान्तर भेदों और कार्योंको लेकर शक्तिमान् सद्वितीय नहीं होता एवम् कार्योंके सहित शक्ति शक्तिमान्के सदृश ध्रुव सत्य नहीं होती। अतएव शक्तिमान् की सत्यता और अद्वितीयता अक्षुण्ण रहती है।

●

श्लोक : २१

सङ्गति: -आत्माकी स्वप्रकाश शिवरूपताका तथा आत्मज्योतिसे उद्भासित अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूतात्मक जगत् की ज्योतिर्मयताका प्रतिपादन -

श्लोक:- अन्तर्ज्योतिर्बहिर्ज्योति:
प्रत्यग्ज्योति: परात्पर:।
ज्योतिर्ज्योति: स्वयञ्ज्योति-
रात्मज्योति: शिवोऽस्म्यहम्।। २१।।

सरलार्थ: - मैं अन्त: ज्योति: - स्वरूप, बहि: ज्योति: - स्वरूप, प्रत्यक् ज्योति: - स्वरूप, ज्योतियोंकी भी ज्योति हूँ; मैं पर - से भी पर स्वयं आत्मज्योति: स्वरूप शिवरूप हूँ।।

सारार्थ: - **''स्वयमेव सदा भामि स्वयमेव सदात्मक:। स्वयमेवात्मनि स्वस्थ: स्वयमेव परा गति:।। स्वयमेव स्वयं भुञ्जे स्वयमेव स्वयं रमे। स्वयमेव स्वयञ्ज्योति: स्वयमेव स्वयं मह:।।'' (तेजोबिन्दूपनिषत् ३.२२,२३) , ''स्वयञ्ज्योति: प्रकाश: सर्ववेद्य: सर्वज्ञ: सर्वसिद्धिद: सर्वेश्वर: सोऽहमिति'' (नारदपरिव्राजकोपनिषत् ९.२०)** के अनुशीलनसे आत्माकी स्वप्रकाशता और सर्वरूपता सिद्ध है। क्रिया, कारक और फलकी स्वप्रकाश ब्रह्मात्मरूपताकी सिद्धिमें प्राप्त वचनका तात्पर्य सन्निहित है। रूपादि ज्योतियोंकी अपेक्षा नेत्रादि ज्योति अन्त: है। नेत्रादि ज्योतियोंकी अपेक्षा मनोज्योति अन्त: है। मनोज्योतिकी अपेक्षा बुद्धिर्ज्योति अन्त: है। बुद्धिर्ज्योतिकी अपेक्षा मायाज्योति अन्त: है। सर्वापेक्षा आत्मज्योति प्रत्यक् है। वह भाव और अभावसे विनिर्मुक्त है। वह भक्तिभावसमन्वित अखण्ड चिन्तनकी परिपक्वतासे गम्य है -

श्लोक : २१

''ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तम:पारे प्रतिष्ठितम्।
भावाभावविनिर्मुक्तं भावनामात्रगोचरम्।।''
(योगशिखोपनिषत् ३.२२)

''ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमस: परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।''
(श्रीमद्भगवद्गीता १३.१७)

जिस प्रकार, एक ही तेजोद्रव्य स्वशक्तियोगसे अधिदैव **सूर्य**, अध्यात्म **नेत्र**, अधिभूत **रूप** होकर विलसित है, उसी प्रकार एक ही आत्मज्योति मायाशक्ति के योगसे अधिदैव - अध्यात्म और अधिभूत होकर विलसित है। -

''दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथक् भवेत्।
एवं धी: खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात्।।''
(श्रीमद्भागवत १२.४.२४)

''जैसे दीपक, नेत्र तथा रूप - ये तीनों तेजसे भिन्न नहीं हैं; वैसे ही बुद्धि, इन्द्रिय और इनके विषय शब्दादि तन्मात्राएँ भी अपने अधिष्ठानस्वरूप ऋतसंज्ञक सर्वातीत सर्वनिरपेक्ष ब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं।।''

''ज्ञेयं सर्वप्रतीतं च तज्ज्ञानं मन उच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं समं नष्टं नान्य: पन्था द्वितीयक:।।
ज्ञेयवस्तुपरित्यागाद्विलयं याति मानसम्।
मानसे विलयं याते कैवल्यमवशिष्यते।।
द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं मुनीश्वर।
योगस्तवृत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्।।
तस्मिन्निरोधिते नूनमुपशान्तं मनो भवेत्।
मन:स्पन्दोपशान्त्याऽयं संसार: प्रविलीयते।।
सूर्यालोकपरिस्पन्दशान्तौ व्यवहृतिर्यथा।''
(शाण्डिल्योपनिषत् १.२२ - २५.१/२)

''दृष्टिगोचर सर्वप्रपञ्च ज्ञेय है। साधिष्ठान साभास ज्ञेयाकार मन उसका **ज्ञान** है। ज्ञेय और ज्ञानकी अपेक्षासे आत्माका नाम ज्ञाता है।

श्लोक : २१

ज्ञेयवर्गकी सत्ता, चित्ता और प्रियता स्वतः सिद्ध नहीं है, त्रिपुटीसे अतीत स्वतःसिद्ध आत्मसापेक्ष ही है, इस तथ्यका परिज्ञान हो जानेपर ज्ञेय -निरपेक्ष ज्ञानरूप मन विलयावस्थापन्न अमन हो जाता है। मनके विलीन होते ही, त्रिपुटीसे अतीत स्वतःसिद्ध आत्मदेव केवल ज्ञानस्वरूप ही अवशिष्ट रहता है। हे मुनीश्वर, चित्तनाशके दो क्रम हैं, योग और ज्ञान । उनमें चित्तवृत्तिका निरोध योग है और यथार्थ दर्शन ज्ञान है। **प्राण और मनका युग्मरूप चित्त है। प्राण और मनोगत वासना चित्तबीज हैं। इनका निरोध योग है।** प्रकारान्तरसे यह भी कहा जाता है कि **प्राण और मनोरूप चित्तवृत्तिका निरोध योग है। मनःस्पन्दन और प्राणस्पन्दनकी शान्ति तथा सच्चिदानन्दस्वरूप आत्माकी सर्वरूपताके बोधसे चित्तादिके मिथ्यात्वका विनिश्चय पूर्ण योग है। - 'हेतुद्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः। तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तद्द्वावपि विनश्यति।। (योगकुण्डल्युपनिषत् १), 'द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य वृत्तिव्रततिधारिणः। एकं प्राणपरिस्पन्दो द्वितीयं दृढभावना।। (मुक्तिकोपनिषत् २.४८)।'**
''चित्तवृत्तिके निरोधसे मन उपशान्त होता है। मनकी उपशाान्तिसे संसार वैसे ही उपशान्त होता है, जैसे कि सौरालोककी उपशान्तिसे व्यवहार उपशान्त होता है।।"

''चिच्चैत्यकलितो बन्धस्तन्मुक्तौ मुक्तिरुच्यते।
चिदचैत्या किलात्मेति सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहः।।
एतन्निश्चयमादाय विलोकय धियेद्धया।
स्वयमेवात्मनात्मानमानन्दं पदमाप्स्यसि।।
चिदहं चिदिमे लोकाश्चिदाशाश्चिदिमाः प्रजाः।
दृश्यदर्शननिर्मुक्तः केवलामलरूपवान्।।
नित्योदितो निराभासो द्रष्टा साक्षी चिदात्मकः।।
चैत्यनिर्मुक्तचिद्रूपं पूर्णज्योतिःस्वरूपकम्।
संशान्तसर्वसंवेद्यं संविन्मात्रमहं महत्।।
संशान्तसर्वसङ्कल्पः प्रशान्तसकलेषणः।

निर्विकल्पपदं गत्वा स्वस्थो भव मुनीश्वर।।"

(महोपनिषत् ६. ७७ - ८२)

"दृश्यसे कवलित चित् बन्ध है। दृश्यसंसर्गसे मुक्ति मुक्ति कही जाती है। चित् विषयाध्यास-युक्त चित्त तथा चित्तविलास चैत्यरूपताका त्याग करते ही जीवभावविहीन आत्मरूपसे शेष रहता है। बस, इतना ही सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह है।। इस निश्चयको आत्मसात् कर विवेकविज्ञानसे उद्दीप्त बुद्धिसे अवलोकन करो तो स्वयं ही स्वयंसे स्वयंको आनन्दस्वरूप परम पदके रूपमें प्राप्त कर लोगे।। मैं चित् हूँ; ये लोक चित् हैं; ये दिशाएँ चित् हैं; ये प्रजाएँ भी चित् हैं; निःसन्देह दृश्य और दर्शनसे निर्मुक्त केवल आत्मस्वरूप ही सर्वरूपोंमें स्थित है। चित् के विवर्तरूप जगत् से विरहित नित्य स्फुरणरूप आत्मदेव चित्स्वरूप द्रष्टा साक्षी है।। दृश्यसारूप्यविनिर्मुक्त चिद्रूप पूर्णज्योतिःस्वरूप सर्वसंवेद्यविरहित मैं केवल संवित्स्वरूप महान् हूँ। सर्व सङ्कल्पशून्य सर्वैषणा विनिर्मुक्त निर्विकल्पपदको प्राप्तकर हे मुनीश्वर, स्वस्थ रहो।।"

स्वयं श्रीभगवत्पाद शङ्कराचार्य - महाभागके शब्दोंमें इस तथ्यका प्रकाश इस प्रकार है। -

"चित्तं चिदिति जानीयात्तकाररहितं यदा।।
तकारो विषयाध्यासो जपारागो यथा मणौ।"

(सदाचारानुसन्धानम् ३१,३१.१/२२)

" 'चित्त' को चित्स्वरूप समझना चाहिए, जब वह तकार - रहित हो। तकार विषयाध्यास है। उसीके योगसे चित्स्वरूप आत्मदेव चित्तरूपसे स्फुरित होता है। जैसे कि जपाकुसुमनिष्ठ लालिमाके योगसे स्वच्छ स्फटिककी रक्त स्फटिकरूपसे प्रतीति होती है।। "

प्रार्थना

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी।।२।।
(श्रीमद्भागवत ५.१८.९)

"हे प्रभो ! विश्वका कल्याण हो। दुष्ट दुष्टतासे विनिर्मुक्त होकर प्रमुदित हो। सब एक-दूसरेका हित चिन्तन करें। हमारा मन शुभमार्गमें प्रवृत्त हो तथा हमारी बुद्धि निष्कामभावसे स्वप्रकाश सदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें निमग्न हो।।".

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य
ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ
शङ्कराचार्यमार्ग, पुरी, ७५२००१ (उड़ीसा),

ब्रह्मज्ञानावलीमाला
प्रकाशन
श्रीहरिः
श्रीगणेशाय नमः

पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ
स्वस्तिप्रकाशनसंस्थानसे प्रकाशित पुस्तकें

१.शुकसुधा
२.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय १-३ (व्याख्यासहित)
३.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय ३-६ (व्याख्यासहित)
४.नासदीयसूक्तम् (सायणभाष्यानुवाद तथा विस्तृत भूमिका औरव्याख्यासिहित)
५.कुन्तीस्तुतिः(विस्तृत व्याख्यासहित)
६श्रीराधारस और रसिकशेखर
७श्रीराधाररससुधा और श्रीकृष्णरसवैभव
८.पीठपरिषद् और उसके अन्तर्गत आदित्यवाहिनी और आनन्दवाहिनी
९.सुखमयजीवनका सनातनसिद्धान्त
१०.विश्वशान्तिका सनातनसिद्धान्त
११.स्वस्तिकगणित
१२.सार्वभौमसनातनसिद्धान्त
१३.सारार्थदीपिका
१४.शारीरकस्वाराज्यसिद्धिसारसमाख्या
१५.सनातनधर्मियोंका रसरहस्यमय बहुदेवादिवाद
१६.जीवनज्योति
१७.शिवावतार भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य
१८.गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति
१९.अनमोलवचन
२०.नीति और अध्यात्म
२१.नीतिसूक्तम्

ब्रह्मज्ञानावलीमाला प्रकाशन

२२.आयुर्विज्ञान
२३.अध्यात्मरहस्य
२४.श्रीमद्भगवद्गीतामें योगचतुष्टय✿
२५.सनातनसन्देश
२६.व्रतस्वरूपविमर्श
२७.बालजागरण
२८.श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्मतत्त्व
२९.श्रीमद्भगवद्गीतामें पुरुषार्थ चतुष्टय
३०.नीतिचालीसा
३१.श्रीजगन्नाथ और उनकी रथयात्रा
३२.व्यूहरचना
३३.अङ्कपदीयम्
३४.गणितदर्शन
३५.पावनसन्देश
३६.दिग्दर्शन
३७.राष्ट्ररक्षा
३८.परमार्थसार
३९.श्रीजगन्नाथाष्टकम् ✿
४०.करुणा, कठोरता और कर्त्तव्यनिष्ठा
41.The Eternal Principles Of Happy Life
४२.श्रीमद्भगवद्गीतामें ज्ञानतत्त्व ✿
४३.क्रान्तिबिन्दु
४४.दिव्यानुभूति (प्रथम भाग)
४५.अवतारमीमांसा
४६.विचित्र सम्वाद
४७.वैदिकार्षगणित (प्रथम भाग)
४८.प्रवचनपीयूष नीति
४९.नीति और अध्यात्म (अङ्ग्रेजी अनुवाद)

५०.नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्
५१.गणितचिन्तामणि
५२.चतुराम्नाय - चतुष्पीठ
53.The Philosophy of Mathcmatics
54.Swastik - Ganita
55.Nature of Numbers
56..Bhagawan Shree Krisna
५७.श्रीगीतासुधा
५८.श्रीराधासुधा
५९.जगदीश्वर, जीव और जगत् ६०.निर्वाणषट्क
६०.निर्वाणषट्कम्
६१.श्रीजगन्नाथाष्टकम् ❁
६२.श्रीसागर - गङ्गा - आरती
६३.वैदिकार्षगणित (द्वितीय भाग)
६४.पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठपरिचय ❁
६५.वैदिक बौद्धदर्शन (वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश)
६६.शून्यैकसिद्धि और द्व्यङ्कपद्धति
६७.सनातनधर्म
68.Sanatan - Dharma
69.Bhagawan Shree Ram
70. Ganita Chintamani
७१. उद्बोधन
७२. सनातनमीमांसा❁
७३. भावनोपनिषत् (भाष्यानुवादसहित)❁
७४. श्रीदक्षिणामूर्त्यष्टकम् (भाष्यानुवादसहित)❁
७५. योगमीमांसा (सूत्रानुवादसहित)❁

Website:- www. Govaradhan - Peetham.